बाँसुरी सम्राट्
हरिप्रसाद चौरसिया

सुरजीत सिंह

बाँसुरी सम्राट हरिप्रसाद चौरसिया

सुरजीत सिंह

संगीत के उस चमकते सितारे
की सरलता और विनम्रता
को समर्पित
जो सबसे सरल और विनयी
वाद्ययंत्र बाँसुरी
की मधुरतम तान छेड़ने
में सिद्धहस्त है।

लेखकीय

ताकि आप मुझे गलत न समझें।

'मैं उस समय शायद नौ या दस साल का था या शायद बारह या तेरह साल का था, मुझे ठीक से याद नहीं।' हरिप्रसाद कहते हैं।

'मैं या तो लॉस एंजिलिस में था या सैन फ्रांसिस्को में, मैं अभी कुछ नहीं कह सकता।'

'यह 1966 में हुआ या शायद 1968 में, मुझे पूरी तरह याद नहीं है।' हरिप्रसाद फिर से कहते हैं।

मैं शिकायत करता हूँ, 'पंडितजी, अगर आप मुझे सही तिथियाँ और जगहें नहीं बताएँगे तो मैं आपकी जीवनी कैसे लिख पाऊँगा? मेरा समय का अंदाजा गड़बड़ हो जाएगा।'

मेरी रुष्टता को भाँपते हुए वह स्कूली बच्चे जैसी शरारती मुसकराहट बिखेरते हैं और अपनी आँखों में उसी खास चमक के साथ नकली निराशा में अपने हाथ उठा देते हैं।

'सुरजीत बाबू, अगर मुझे पता होता कि पचास साल बाद आप मेरी जीवनी लिखेंगे तो कसम से, मैं एक डायरी रखता और उसमें सभी तिथियों व घटनाओं का ब्योरा होता। उस समय हर दिन एक संघर्ष भरा दिन होता था, इन तिथियों और घटनाओं के बारे में तो शायद ही कभी सोचा हो।'

इस तरह अपना बचाव करते हुए वह अपना पक्ष रखते हैं। मुझे पता है कि उनकी तीक्ष्ण बुद्धि के आगे मैं कुछ नहीं कर सकता; लेकिन यह भी सच है कि एक जीवनी लिखना अव्वल दर्जे की मूर्खता है, खासकर एक ऐसे संगीतकार की जीवनी, जो सत्तर वर्ष का होने जा रहा हो।

समस्याएँ कई हैं, हल बहुत कम। सबसे पहले आप संगीत की उन बारीकियों को शब्दों में कैसे अभिव्यक्त करेंगे, जो उन्होंने पचास सालों में सृजित की हैं?दूसरे, वह साक्षात्कारों में जो कहते हैं, उसे आप प्रमाणित कैसे करेंगे? उनके अधिकतर साथियों और लगभग सभी वरिष्ठ संगीतकारों का या तो निधन हो चुका है या उनसे संपर्क नहीं हो सकता। जिन लोगों से संपर्क हो सकता है, उन्हें दशकों पहले की घटनाएँ याद करने में परेशानी होती है। कई लोगों से साक्षात्कार लेने से एक ही घटना के कई विवरण सामने आते हैं। इस बात का निर्णय कौन करेगा कि कौन सी बात सही होने की अधिक संभावना है। इसके अलावा, हो सकता है कि सबसे संभव विवरण सही न हो।

हालाँकि हमारा प्रेस जिम्मेदार और सटीक होने का दावा करता है, पत्रकारों के विवरण के अनुसार उनकी (हरिप्रसाद चौरसिया) संगीत शिक्षा की शुरुआत की आयु पाँच से पंद्रह वर्ष के बीच कहीं थी। उनके कैरियर के संबंध में कई भाषाओं में प्रेस क्लिपिंग सवालों के जवाब देने की बजाय और सवाल पैदा करती हैं।

वकीलों की एक उक्ति है, 'कानून की अनुपस्थिति में सहज बुद्धि प्रबल होती है।'

ऐसा लगता है कि मुझे भी सिर्फ उसी का सहारा है। उपलब्ध जानकारी (प्रामाणिक और उतना संदिग्ध नहीं) के ढाँचे के भीतर हर अध्याय में कालावधि को यथासंभव सही रखा गया है। यह पुस्तक जून और दिसंबर 2007 के बीच लिखी गई है, इसलिए वर्तमान समय के सभी संदर्भ इस काल से संबंधित हैं। अधिकांश जीवनियों के विपरीत, सभी घटनाएँ कालक्रमानुसार नहीं हैं। अलग-अलग अध्याय पं. हरिप्रसाद चौरसिया के जीवन और कार्य के विभिन्न पहलुओं को दरशाते हैं। मुझे लगा कि इस पुस्तक को लिखने का यह सबसे सही और व्यावहारिक तरीका था।

इसमें मौजूद त्रुटियाँ अपरिहार्य हैं।

लेकिन क्या वे क्षमा योग्य हैं?

मुझे नहीं पता। आप बताइए।

—सुरजीत सिंह

कैसे और क्यों

स्टीफन हाउस, कलकत्ता (अब कोलकाता) के डलहौजी इलाके में एक विशाल छह मंजिला ब्रिटिश इमारत है। वह बीच के चौक में एक फव्वारे के साथ एक वर्गाकार ढाँचा है। इसके हर तल पर एक बालकनी है, जो वर्ग के भीतरी हिस्से के चारों ओर फैला हुआ है।

छठे तल पर एक बुजुर्ग दंपती रहते थे, डॉ. जसवंत सिंह और उनकी पत्नी शीला। शीला के भाई का बेटा, जो कलकत्ता में ही रहता था, अकसर सप्ताहांत में उनके साथ आकर रहता था। उसे कई कारणों से यह पसंद था। पहली बात, वह अपनी बुआ से बहुत प्यार करता था। दूसरे, सिर्फ बुआजी ही उसे डिनर में आमलेट और टोस्ट खाने को देती थीं, जो अधिकतर शहरी भारतीय नाश्ते में खाते हैं और नाश्ते में सूप व क्रूटन के लिए मना नहीं करती थी, जो बहुत से भारतीय रात के भोजन में लेते हैं। वह उसे चौक के फव्वारे में नहाने भी देती थी। उस बच्चे के लिए यह स्वर्ग था, क्योंकि उसकी बुआ उसके माता-पिता को बताए बिना यह सब करती थीं।

वर्गाकार ढाँचे के दूसरी ओर सार्जेंट मसूदुल हक रहते थे, एक पुलिसकर्मी, जो बाँसुरी बजाते थे। वह शास्त्रीय संगीत की शिक्षा प्राप्त संगीतकार थे। एक ऐसा मुसलमान जिसके बारे में माना जाता था कि वह शाकाहारी बन चुका है और जिसने स्वयं बताया था कि उन्हें कलकत्ता उच्च न्यायालय के पास की 'हलकी' बीट दी गई थी, क्योंकि वह अधिकांश पुलिसवालों के लिए आम मानी जानेवाली चीजों के लिए अनुपयुक्त थे, जैसे—घूस लेना, लोगों की पिटाई करना या उनके शब्दों में लाठीबाजी। कई सप्ताहांतों में वह छोटा लड़का बॉलकनी में बैठकर सम्मोहित-सा सार्जेंट हक की बाँसुरी की स्वर-लहरियों को रात के अँधेरे में गूँजते हुए सुनता था। वह एक खूबसूरत ध्वनि थी, जिसने उस बच्चे के हृदय में अनजानी भावनाओं को उद्वेलित किया और उसकी गूँज हमेशा के लिए उसके दिल में बस गई।

मोइरा स्ट्रीट पर हलवासिया मैंशन की ऊपरी मंजिल पर रंगास्वामी परिवार रहता था। वह एक ऐसा परिवार था, जहाँ हर कोई कुछ-न-कुछ करता रहता था। उस शोर-शराबे में सबकुछ था—रॉक रिकॉर्ड, गिटारों की झनकार, क्रॉसवर्ड पजल बुद्धिजीवी (कभी-कभार छद्म बुद्धिजीवी), शेखीबाजी, दोस्तों व रिश्तेदारों की निरंतर चटर-पटर, जो आराम से घर के अंदर-बाहर घूमते रहते थे और निश्चित रूप से सबसे स्वादिष्ट दक्षिण भारतीय कॉफी का आनंद लेते थे, जिसकी कल्पना की जा सकती है। बाँसुरी पर मुग्ध वह लड़का, जो अब किशोरावस्था में पहुँच चुका था, रविवार को इस प्यारी सी भीड़-भाड़ का नियमित हिस्सा बन गया था और इसलिए उसे 'संडे विजिटर' यानी 'रविवार का आगंतुक' नाम दिया गया था। वह अकसर अपने मित्र जयप्रकाश रंगास्वामी (उनके मित्रों के लिए सिर्फ जे.पी.) से अपने बाँसुरी प्रेम की चर्चा करता था। सन् 1974 के मध्य में एक दिन जे.पी. कहता है, 'नजदीक में एक बाँसुरी संगीत समारोह होने वाला है। तुम हमेशा बाँसुरी के बारे में बात करते रहते हो तो चलो, चलकर सुनते हैं। वहाँ दो बाँसुरीवादक साथ बजानेवाले हैं।'

एन.रमणी के साथ बाँसुरी सम्राट् हरिप्रसाद चौरसिया

वह समारोह एक जुगलबंदी था, जिसमें हरिप्रसाद चौरसिया उत्तर भारतीय या हिंदुस्तानी बाँसुरी बजा रहे थे और

डॉ.एन. रमणी दक्षिण भारतीय या कार्नाटिक बाँसुरी बजा रहे थे तथा क्रमश: तबला व मृदंगम वादक उनका साथ दे रहे थे। वह लड़का सम्मोहित होकर देख रहा था, जब दोनों संगीतकार सहजता से बाँसुरी की स्वर-लहरियाँ गुँजा रहे थे। दोनों संगीतकार भी मजे से हर ताल पर एक-दूसरे की संगत कर रहे थे। उसे भारतीय शास्त्रीय संगीत की पेचीदगियों की कोई जानकारी नहीं थी, लेकिन उसे हरिप्रसाद चौरसिया का बाँसुरीवादन अपने जीवन की सबसे जादुई चीज लगी।

वह बाँसुरी सीखने के लिए दृढ़ संकल्प था और उसने सीखा भी, बाईस की उम्र में शुरू करते हुए, जब अधिकतर युवा कैरियर शुरू करने के लिए नाच-गाने का त्याग करते हैं। व्यवसाय चलाना, परिवार का पालन-पोषण करना और माता-पिता की देखभाल करना जैसे अपने सांसारिक दायित्वों से समय निकालकर उसने कभी-कभार अपने घर आनेवाले एक पार्ट टाइम बाँसुरीवादक और जी.ई.सी. नामक एक बड़े कॉरपोरेट के कर्मचारी मास्टरजी (श्यामल नास्कर) और फिर कुछ समय के लिए पद्मभूषण पंडित वी.जी. जोग (जिन्होंने सभी निष्णात लोगों की तरह उन्हें कहा कि पिछला सीखा हुआ सब भूल जाएँ) और अंत में एक रवींद्र भारती के एक पूर्व फैकल्टी सदस्य तथा असाधारण बाँसुरीनिर्माता देवप्रसाद बनर्जी से सीखा। इन सबके दौरान हरिप्रसाद चौरसिया की बाँसुरी का प्रभाव उस पर से कभी नहीं गया और वह अपने इस आदर्श को सुनने का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देता था। कलकत्ता में जहाँ भी उनका आयोजन होता, वह वहाँ पहुँच जाता, चाहे वह कला मंदिर हो, साइंस सिटी, डोवर लेन म्यूजिक कॉन्फ्रेंस, रामकृष्ण मिशन और संगीत रिसर्च अकादमी।

रॉक संगीत उसका दूसरा प्यार था और वह महान् बाँसुरीवादक इयान एंडरसन का बड़ा प्रशंसक था, जो ब्रिटिश रॉक बैंड जेथरो टल्ल के सदस्य थे। उसे पता चला कि इयान एंडरसन बंबई में हरिप्रसाद चौरसिया के साथ कार्यक्रम पेश करने वाले हैं। उसे शो का टिकट लेना ही था। इसलिए उसने अपने दोस्त शालीन खेमानी को कुछ करने को कहा। शालीन पं. विजय किचलू के साथ मिलकर संगीत आश्रम का प्रबंधन करते हैं। यह संगठन भारतीय शास्त्रीय संगीत को प्रोत्साहित करता है और कोलकाता में संगीत गोष्ठियाँ आयोजित करता है और देखिए, उनके अगले ही कार्यक्रम में हरिप्रसाद चौरसिया थे। कार्यक्रम के बाद पं. विजय किचलू उसे मंच के पीछे ले गए और उसका परिचय 'हरिजी' से यह कहते हुए करवाया, ''यह आपका महान् भक्त है और जानना चाहता है कि क्या इसे कार्यक्रम का एक टिकट मिल सकता है?'' हरिप्रसाद चौरसिया उदारता के मूर्त रूप थे। ''आप विजय भाई के मित्र हैं और टिकट के लिए कह रहे हैं। प्लीज मेरे अतिथि बनिए।'' यह वास्तव में उसका भाग्यशाली दिन था। अभी-अभी उसका उस व्यक्ति से परिचय हुआ था, जिसने उसे बाँसुरी सीखने के लिए प्रेरित किया था। अभी-अभी उसने जीवित महानता के पैर छुए थे और दुनिया के दो महानतम बाँसुरीवादकों की जुगलबंदी सुनने का न्यौता मिला था। उसने बहुत विनम्रता से पूछा, ''मैं कार्यक्रम के लिए बंबई जाऊँगा, लेकिन जब मैं वहाँ आऊँगा तो क्या आप मुझे पहचान लेंगे?'' प्रश्न की सच्चाई को महसूस करते हुए पं. हरिप्रसाद चौरसिया मुसकराए, ''विजय भाई के पास मेरा फोन नंबर है। मैं बिलकुल आपको पहचान लूँगा।''

क्या यह सच हो सकता है?क्या यह वास्तव में उसके साथ हो रहा है? चौवालीस वर्ष की उम्र में भी वह अंदर से एक बच्चे की तरह महसूस कर रहा था। वह उत्साहित था, लेकिन अब भी मान नहीं पा रहा था कि यह सच हो सकता है, इसलिए 'प्लान बी' के रूप में उसने अपनी पत्नी के संबंधी विजय कुमार धर को फोन किया और पासों की व्यवस्था करने को कहा। श्री धर एक अत्यंत प्रभावशाली और संपर्कवाले व्यक्ति हैं और नई दिल्ली में रहते हैं। वह कार्यक्रम से कुछ दिन पहले मुंबई पहुँचा। पत्नी के संबंधी की बदौलत उसके पास 'पास' पहुँच गए, लेकिन चौरसियाजी को दुबई से अभी आना था। उस कार्यक्रम के दिन 31 जनवरी, 2004 को उसे सूचित किया गया कि

पंडितजी प्रेसीडेंट होटल में हैं। कृपया उनसे बात कर लें। पंडितजी वैसे ही उदार थे, ''हाँ, मुझे आपकी याद है। आप विजय किचलू के मित्र हैं। कृपया इस दोपहर को 3 बजे आकर मेरे कमरे से अपना टिकट ले लें।''

वह सिर्फ टिकट नहीं था। वह एक ऑटोग्राफ युक्त पास था। उस ऑटोग्राफ ने उसकी पहुँच ग्रीनरूम तक बना दी और उसे इयान एंडरसन तथा बैंड के बाकी लोगों से बात करने तथा अपना मन भरने तक तसवीरें खींचने का अवसर दिया। इस तरह एक अनौपचारिक संबंध शुरू हुआ। वह हरिजी को उनके जन्मदिन पर बधाई देता और कहता कि वह किसी दिन बाँसुरी सीखने के लिए मुंबई आएगा और हरिजी हमेशा कहते, ''आपका स्वागत है।'' जैसा कि आप अब तक अनुमान लगा चुके होंगे, वह लड़का था, सुरजीत सिंह, इस पुस्तक का लेखक।

इयान एंडरसन के साथ लेखक

एक दिन उसे लगा कि वह तीन दशकों से हरिप्रसाद का कैरियर देख रहा है। वह उनके अधिकांश संगीत से परिचित है और इसलिए उनकी जीवनी लिखने में सक्षम है। उसने 23 जनवरी, 2007 को डोवर लेन संगीत सम्मेलन में हरिप्रसाद के प्रदर्शन के तुरंत बाद हरिप्रसाद को अपनी यह इच्छा बताई। उनका जवाब त्वरित और निर्णायक था, ''तो लिखिए ना। हम आपके साथ हैं।''

राटरडम कंजर्वेटरी में इंटरव्यू रिकॉर्ड करते हुए।

साजो-सामान और समय अगली मुश्किलें थीं। सुरजीत सिंह कोलकाता में रहते हैं। हरिप्रसाद चौरसिया मुंबई में रहते हैं, हमेशा कार्यक्रमों के लिए दौरों पर रहते हैं और मुंबई में उन्हें अपने गुरुकुल एवं दूसरी जिम्मेदारियों का ध्यान रखना पड़ता है। इसलिए हरिप्रसाद चौरसिया ने सुरजीत सिंह को रॉटरडम (हॉलैंड) में आमंत्रित किया, जहाँ वह संगीत विद्यालय में पढ़ाते हैं। टिकट खरीदने की मुश्किलों और वीजा समस्याओं के बाद सुरजीत सिंह हरिप्रसाद चौरसिया, उनके विद्यार्थियों और संगीत विद्यालय के शिक्षकों के साथ बातचीत करने के लिए रॉटरडम पहुँचे। यह बातचीत इस जीवनी का एक बड़ा हिस्सा है।

❑

हसनी हॉलैंड

कहावत है कि जिस नगरी पर आपका दिल आ जाए, वही आपका घर है।

भारत सरकार का मैरून जैकेटवाला डिप्लोमेटिक पासपोर्ट, अमेरिकी सरकार द्वारा दिया गया ग्रीन कार्ड, नीदरलैंड्स सरकार द्वारा दिया गया 'निवासी' का दर्जा, सैन फ्रांसिस्को शहर में मनाया जानेवाला 'चौरसिया दिवस' और बाल्टीमोर शहर की मानद नागरिकता ये कुछ ऐसी चीजें हैं, जो सुनिश्चित करती हैं कि पद्मविभूषण पं. हरिप्रसाद चौरसिया दुनिया में कहीं भी अपने धर्म बाँसुरी का प्रदर्शन, अभ्यास और प्रचार-प्रसार कर सकते हैं। वह भारतीय शास्त्रीय संगीतकारों की उस विरल प्रजाति के सदस्य भी हैं, जिन्होंने दुनिया की लगभग सभी सरकारों को कर का भुगतान किया है।

रॉटरडम वह नगरी है, जिस पर हरिप्रसाद का दिल आ गया।

सन् 1992 से वह घर से दूर उनका घर रहा है। ऐसी जगह, जहाँ वह गण्यमान्य लोगों के साथ उठते-बैठते हैं, छात्र उन्हें सम्मान और श्रद्धा की नजर से देखते हैं, सहकर्मी उनकी प्रशंसा करते हैं और दोस्त उनके प्रति बहुत अच्छा भाव रखते हैं।

वह अपनी मातृभूमि से इतने अलग देश में इतना प्रभाव कैसे छोड़ सकते हैं?क्या चीज उन्हें कामयाब बनाती है? वह क्यों हॉलैंड से प्यार करते हैं और बदले में हॉलैंड भी उन्हें प्यार देता है? जिन कुछ सप्ताह मैं उनके साथ वहाँ रहा, मुझे कई प्रश्नों के उत्तर मिल गए।

नीदरलैंड्स एक छोटा, लेकिन बहुत ही खूबसूरत देश है। आप अपने आपको वहाँ की नदियों, नहरों, जल-मार्गों, फूलों, मछली पकड़ने की नावों और दोस्ताना लोगों के साथ प्यार में पड़ने से नहीं रोक सकते। आप एक्सीलरेटर पर दबाव बढ़ाए बिना पाँच घंटों से कम समय में देश के आर-पार जा सकते हैं। सबकुछ बगल में है। इस धरती पर पं. हरिप्रसाद चौरसिया की सबसे पसंदीदा जगहों में से है क्यूकेनहॉफ गार्डन, जो अपने अंतहीन ट्यूलिप की पंक्तियों से दुनिया भर के पर्यटकों को आकृष्ट करता है। एम्सटरडम देश की राजधानी है, हेग उसका प्रशासनिक केंद्र और राजसी परिवार का घर तथा रॉटरडम व्यावसायिक केंद्र।

डच जीवन में रॉटरडम का एक अद्वितीय स्थान है। यहाँ 162 राष्ट्रीयताओं के साथ विविध संस्कृतियों का मेल देखने को मिलता है। यह हॉलैंड का सबसे आधुनिक शहर है, जिसे सन् 1940 में लुफ्तवाफ द्वारा बम विस्फोट का शिकार बनने के बाद पुनर्निर्मित किया गया था। इसकी पाँच तेल रिफाइनरियों में 120 मिलियन टन पेट्रोलियम पदार्थों का उत्पादन होता है। तैरती सूखी गोदियों और 280 क्रेनों में 370 मिलियन टन जहाजी माल इसे दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा बंदरगाह बनाता है। मास नदी शहर को उत्तर और दक्षिण दो भागों में बाँटती है। नदी के नीचे शहर के दोनों भागों को जोड़नेवाली मास सुरंग है, जिसका मोटर चालक और साइकिल सवार उपयोग करते हैं। इरासमस पुल, जिसे प्यार से 'द स्वान' कहते हैं और जिसे बनाने में 365 मिलियन गिल्डर्स (यह यूरो से पहले बना था) की लागत आई थी, का वास्तुशिल्प अद्वितीय सौंदर्य का एक नमूना है। यूरोमस्ट, क्यूबिक मकान और पेंसिल बिल्डिंग भविष्यवादी डच वास्तुशिल्प के दूसरे उदाहरण हैं। अमेरिकी शैली का 'व्हाइट हाउस' सन् 1898 में अपने निर्माण के समय यूरोप की पहली गगनचुंबी इमारत थी।

बहुमंजिली इमारतें और सेंट्रल स्टेशन के पास वाहनों की कतार एक चहल-पहलवाले महानगर का प्रभाव देता है, लेकिन शहर में अन्य जगह का ट्रैफिक रविवार की सुबह-सुबह कोलकाता, मुंबई या नई दिल्ली के ट्रैफिक के बराबर है। उसकी बसें, ट्राम, ट्रेन और हवाई जहाज उसे पूरे यूरोप से जोड़ते हैं। निश्चित रूप से दुनिया के इस

सबसे अधिक साइकिलोंवाले देश में बाइकवालों के लिए रास्ते रिजर्व हैं। एशियाई शहरों के विपरीत, जहाँ साइकिल चलाने से प्रतिष्ठा कम होती है, यहाँ पर अमीर और शिक्षित लोग उसे ऑटोमोबाइल के प्रदूषण के एक इको फ्रैंडली विकल्प के रूप में देखते हैं।

एक नाव की सवारी या 'फास्ट फेरी' से डॉरड्रेख्त पहुँचा जा सकता है, जहाँ हॉफक्वार्टर इतिहास, कला और विज्ञान का मिलन बिंदु है। हॉफ का स्टेटन हॉल आकस्मिक रूप से देश का पालना और नीदरलैंड्स के वर्तमान राज्य का जन्मस्थान बन गया, जब सन् 1572 में प्रिंस विलियम ऑफ ऑरेंज को हॉलैंड और जीलैंड के वाइसराय के रूप में मान्यता दी गई थी। यह अलोकप्रिय स्पेनिश शासन के खिलाफ जारी संघर्ष में एक महत्त्वपूर्ण वर्ष था, जब बहुसंख्यक प्रोटेस्टेंट डच अपने कैथोलिक शासकों के दमन के शिकार थे।

एक पुराने डच शहर शीडम तक पंद्रह मिनट की ट्राम यात्रा के बाद पहुँचा जा सकता है, जो आधुनिक रॉटरडम में खो गया लगता है। अगर आप इनमें से किसी शहर के निवासी हैं, तभी आप इन दोनों के बीच का अंतर बता सकते हैं, हालाँकि शीडम को ध्यान से देखने पर रॉटरडम से बिलकुल भिन्न उसकी पहचान और चरित्र का पता चलता है। दुनिया की पाँच सबसे बड़ी पवन चक्कियाँ शीडम में हैं, साथ ही यहाँ एक चॉकलेट फैक्टरी और एक जेनेवर संग्रहालय है (जिन को डच में 'जेनेवर' कहते हैं)। यहीं पर इस राष्ट्रीय डिस्टिल्ड उत्पाद का जन्म हुआ और यह पूरे देश का गौरव बन गया।

कला में रुचि रखनेवालों के लिए यहाँ करने को बहुत कुछ है। अंतरराष्ट्रीय काव्य उत्सव दुनिया भर के कवियों को रॉटरडम ले आता है। अपनी कविताओं को पढ़ने के लिए आपको कम-से-कम छह महीने पहले आमंत्रित किया जाना होता है। अगर आपने अपनी कृति का पाठ यहाँ पर किया है तो आप निश्चित रूप से कविता की दुनिया में एक अहम स्थान रखते हैं।

नॉर्थ सी जाज उत्सव यूरोप का सबसे बड़ा समारोह है। जुलाई 2007 में आयोजित समारोह में दर्जनों कलाकार शामिल हुए, जिनमें कुछ सुपर स्टार हैं, जैसे—मैके टाइनर, जॉन स्कोफील्ड, रॉन कार्टर, लैरी कार्लटन, स्टीले डैन, पॉल अंका और चिक कोरिया। पश्चिमी शास्त्रीय संगीत के प्रेमियों के लिए रोमांटिक म्यूजिक फेस्टिवल पसंदीदा समारोह है, जिसमें विभिन्न स्थानों पर विविध आयोजन होते हैं।

अपनी मातृभूमि से ज्यादा जुड़ाव महसूस करनेवाले भारतीय के लिए भी यहाँ बहुत कुछ है। मिलान मेला भारतीय भोजन और संगीत का उत्सव है, जहाँ भारतीय कपड़ों और कलाकृतियों के स्टॉल लगते हैं। दीवाली में लोगों के घरों में मिट्टी के दीये जलते हैं और रोशनी के जुलूस निकाले जाते हैं। रंगों के त्योहार होली के एक दिन पहले होलिका-दहन होता है। रामलीला और रथ-यात्रा को भी उत्साह से मनाया जाता है।

यह वह स्थान है, जिसे हरिप्रसाद अपना दूसरा घर कहते हैं। अब इस पुस्तक के पर्यटक सूचना सहायता केंद्र या वी.वी.वी. (जिसका उच्चारण डच फे.फे.फे. करते हैं) बनने से पहले हरिप्रसाद चौरसिया पर वापस लौटते हैं।

वह पहली बार सन् 1971 में हॉलैंड गए थे और तब से उनकी प्रतिष्ठा लगातार बढ़ती गई, जिसके कारण कंजर्वेटरी में उनकी नियुक्ति कर दी गई। ऐसा भी लगता है कि वह अपने रास्ते पर हमेशा सही लोगों से मिले हैं। उन्हें वहाँ सबसे अधिक पानी और फूलों ने आकृष्ट किया। उन्हें इस बात से सबसे अधिक सहजता महसूस हुई कि हर कोई अंग्रेजी बोलता, या कम-से-कम समझता था। वहाँ की जलवायु बहुत बढ़िया थी, लोगों का व्यवहार दोस्ताना था और विदेशियों का स्वागत होता था। वह दु:खी होकर कहते हैं, ''अब स्थिति बहुत अलग है। 9/11 और एशियाई लोगों द्वारा ऐसे आतंकवाद के बाद हमें (भारतीयों को) अब उतना सम्मान नहीं मिलता।''

वहाँ उनके शुरुआती संपर्कों में सितार वादक दर्शन कुमारी थीं, जो कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की स्नातक और

पंजाब विश्वविद्यालय से कला में स्नातकोत्तर थीं। उन्हें सन् 1971 में एक ग्रीक दंपती द्वारा भारतीय शास्त्रीय संगीत सिखाने के लिए एथेंस आमंत्रित किया गया था। उन्होंने पाया कि स्थानीय लोगों को भारतीय शास्त्रीय संगीत की अवधारणा को समझने में मुश्किल होती है। संगीत-प्रेमी होने के बावजूद उन्हें शास्त्रीय संगीत का आलाप वाला हिस्सा पसंद नहीं था और जैसे ही लय शुरू होती थी, वे उठकर नाचना शुरू कर देते थे। एथेंस में अमेरिकन एक्सप्रेस के लोगों द्वारा बताए जाने पर वह एम्सटर्डम पहुँचीं जहाँ उन्हें तुरंत रॉयल ट्रॉपिकल, इंस्टीट्यूट में संगीत की शिक्षा देने का काम मिल गया। जल्द ही उनके सितार गुरु जमालुद्दीन भरतिया भी वहाँ पहुँच गए।

भारतीय संगीत के तार जोड़ते हुए, (बाएँ से दाएँ) जान आइलर्स, जॉन आइलर्स, हरिप्रसाद चौरसिया, मैटी स्पाइंडर तथा दर्शन कुमारी।

वह पहली बार सन् 1972 में हॉलैंड के टी.वी. एंड रेडियो रिकॉर्डिंग सेंटर हिलवर्सम में हरिप्रसाद चौरसिया से मिलीं। वह और शिवकुमार शर्मा डच रेडियो के लिए रिकॉर्डिंग कर रहे थे और उन्हें एक तानपुरा वादक की जरूरत थी। दर्शन कुमारी वहाँ अपने गुरु की एक रिकॉर्डिंग के लिए तानपुरा बजा रही थीं। हरिप्रसाद ने स्वयं उनसे बात की और तानपुरा पर उनका साथ देने का अनुरोध किया। स्वाभाविक रूप से वह रोमांचित हो उठीं। उस दिन संयोग से हुआ परिचय समय के साथ एक गहरी मित्रता में बदल गया।

सन् 1973 से उन्होंने त्रितंत्री विद्यापीठ के ध्वज के तहत हरिप्रसाद, शिवकुमार शर्मा और दूसरे संगीतकारों को हॉलैंड व यूरोप के दूसरे भागों में कॉन्सर्ट टूर्स के लिए आमंत्रित करना शुरू किया। यह संस्थान उन्होंने व जमालुद्दीन भरतिया ने शुरू किया था और संस्थापक अध्यक्ष पं. रवि शंकर ने उसका नामकरण किया था। सन् 1974 में जॉन आइलर्स भी उनके साथ शामिल हो गए और नवगठित स्तिकतिंग इंडिया म्यूजिक तथा त्रितंत्री विद्यापीठ द्वारा हॉलैंड में कॉन्सर्ट का आयोजन किया जाता था।

उन्होंने ढाई दशकों तक पूरे हॉलैंड, बेल्जियम, जर्मनी, स्विट्जरलैंड और इटली में संगीत आयोजन किए। हरिप्रसाद के कॉन्सर्ट खूब लोकप्रिय थे और उनकी सफलता ने उन सभी को सफल बना दिया। हालाँकि हरिप्रसाद, शिवकुमार और जाकिर हुसैन के कॉन्सर्ट अब भी खचाखच भरे होते हैं, परंतु सन् 1990 के दशक के अंत तक संख्या में थोड़ी गिरावट आई। इसके अलावा सरकार द्वारा कॉन्सर्ट सब्सिडियों में कटौतियों की वजह से अब वह आयोजकों के लिए उतना लाभदायक नहीं रहा। इस सबके अलावा कैंसर के बाद अवसाद की वजह से जॉन आइलर्स ने सन् 1999 में यह संस्थान छोड़ दिया। आखिरकार 17 सितंबर, 2004 को कैंसर ने उनकी जान ले ली।

'70 से '80 के दशक तक हरिप्रसाद की प्रसिद्धि खूब बढ़ी। वह अन्य स्थानों के अलावा नियमित रूप से रॉयल ट्रॉपिकल इंस्टीट्यूट और मोज़ेज़ एन ऐरन कर्क (चर्च को डच में 'कर्क' कहते हैं) में प्रस्तुति देते रहे। उनके प्रशंसकों की संख्या विशाल थी। उन्हें नियमित सुननेवालों में प्रिंस क्लाउस थे, जो नीदरलैंड्स में गैर-पाश्चात्य या 'विश्व' संगीत के सबसे महान् संरक्षकों में एक थे। उनको पहली पंक्ति में बैठकर चौरसिया के कॉन्सर्ट का आनंद उठाते देखा जा सकता था।

हरिप्रसाद को बड़ा अवसर सन् 1990 में जापान के एक टूर के दौरान मिला। उनके होटल के कमरे में उनके लिए एक फोन आया कि क्वीन बीऐटक्स चाहती हैं कि वह अगले सप्ताह हॉलैंड में अपना बाँसुरी वादन प्रस्तुत

करें। अधिकारियों को वह फोन करने में काफी समस्या आई थी। उन्होंने पहले द हेग में भारतीय दूतावास से संपर्क किया, फिर बंबई और आखिरकार टोक्यो में अधिकारियों से उनके होटल का नंबर लिया। निश्चित रूप से वह राजसी निमंत्रण नहीं ठुकरा सकते थे। उन्होंने तबला बजाने के लिए यू.एस.ए. से जाकिर हुसैन को बुलवाने की माँग की। बाँसुरी के साथ रूपक कुलकर्णी उनका साथ देनेवाले थे। तानपुरा पर उनका साथ देने के लिए दर्शन कुमारी और डॉ. इंदु श्रीवास्तव से अनुरोध किया गया। 18 अप्रैल, 1990 को उन्होंने द हेग में राजमहल में अपनी कला का प्रदर्शन करनेवाला पहला भारतीय बनते हुए इतिहास रच दिया। साथ ही वह महल से अपनी तरह का पहला लाइव टी.वी. ब्रॉडकास्ट था।

वह कॉन्सर्ट क्वीन बीऐटक्स द्वारा अपने पति प्रिंस क्लाउस को एक तोहफा था (डच परंपरा के अनुसार, अगर 'हाउस ऑफ ऑरेंज' की प्रत्यक्ष वंशज एक महिला है तो उसे 'क्वीन' कहा जाता है, लेकिन चूँकि उसका पति एक भिन्न वंश का होता है, उसे 'किंग' न कहते हुए 'प्रिंस' कहा जाता है)। वह कॉन्सर्ट बहुत सफल रहा। हरिप्रसाद ने राग चंद्रकौंस से शुरू किया, फिर जोग प्रस्तुत किया और अपनी प्रसिद्ध पहाड़ी धुन के साथ समाप्त किया। उस संध्या की एक वीडियो रिकॉर्डिंग स्वयं क्वीन द्वारा हरिप्रसाद को उनके व्यक्तिगत संग्रह के लिए दी गई। दुर्भाग्यवश वह वीडियो टेप अब काम नहीं करता और उस शाम कौन से तीन राग बजाए गए थे, यह बताने के लिए हरिप्रसाद, दर्शन कुमारी और रूपक कुलकर्णी को अपनी याददाश्त पर जोर देना पड़ा। कॉन्सर्ट के बाद वे तीनों इतने उत्साहित थे कि सो नहीं पाए और वैसे भी उन्हें सुबह-सुबह की फ्लाइट पकड़नी थी। हरिप्रसाद और जाकिर हुसैन ने मैटी स्पींडर (स्तिकतिंग इंडिया म्यूजिक के एक सदस्य) के साथ एम्सटर्डम में दर्शन कुमारी के घर पर रात गुजारी और पूरी रात चुटकुलों व हँसी का दौर चलता रहा।

''वह एक सपने जैसा था।'' हरिप्रसाद याद करते हैं, ''इतना काल्पनिक-सा कि मुझे अब भी यकीन नहीं होता कि वैसा हुआ था। मैं जापान से वहाँ पहुँचा, रूपक भारत से और जाकिर अमेरिका से। हमने कुछ समय के लिए बजाया और अगले दिन हम सभी वापस अपनी-अपनी जगह थे।''

उस कॉन्सर्ट ने उन्हें भारतीय संगीत-प्रेमियों के बीच एक जाना-पहचाना नाम बना दिया। हॉलैंड की अपनी यात्राओं के दौरान मैंने जब भी बाँसुरी की बात की, मुझे सिर्फ एक नाम सुनाई दिया—चौ-रा-जी-या।

भारतीय संगीतकारों के आकाश में हरिप्रसाद की उपस्थिति इतनी महत्त्वपूर्ण है कि ओम टी.वी. ने (OHM T.V.) उनके ऊपर एक पचपन मिनट की डॉक्यूमेंट्री बनाई। उस डाक्यूमेंट्री को 28 दिसंबर, 1997 और 4 जनवरी, 1998 को दो भागों में प्रसारित किया गया। बाँसुरी और हरिप्रसाद के संगीत के प्रदर्शन के लिए वह एक चमत्कार ही था। गिटार, पियानो और वायलिन वाले देश में बाँस की बाँसुरी अपने आप में एक नई चीज है। फ्रैंक कृष्णा द्वारा शोध करके एक साथ जोड़ी गई उस डॉक्यूमेंट्री में स्टुडियो में मेकअप करवाते हुए हरिप्रसाद के कुछ सरल शॉट हैं। हरिप्रसाद ने भारतीय शास्त्रीय संगीत के 'समय सिद्धांत' को स्पष्ट किया (इस सिद्धांत के अनुसार रागों में दिन के सभी आठ प्रहर शामिल होते हैं), जबकि रॉब मुअल ने बाँसुरी के निर्माण की पेचीदगियाँ समझाईं। ओम टी.वी. मुख्य रूप से भारतीय मूल के सूरीनामियों, खासकर हिंदुओं द्वारा और उनके लिए चलाया जाता है। अत: हर कार्यक्रम की शुरुआत में 'ओम' का चिह्न आता है। हरिप्रसाद ने आरंभ में ही यह घोषणा करते हुए उनका दिल जीत लिया कि ''हॉलैंड में अपने सूरीनामी भाइयों से मिलने के बाद मुझे लग रहा है कि मैं उत्तर प्रदेश में हूँ।'' उन्होंने उत्तर भारत की विभिन्न लोक-धुनें बजाते हुए भी उन्हें मुग्ध कर दिया। इसका सबसे सम्मोहक हिस्सा वह है, जब हरिप्रसाद 'अग्नि' और 'जल' तत्त्वों की संगीतमय व्याख्या करते हैं। अग्नि पर उनकी उँगलियाँ अदृश्य हैं, जबकि जल के विभिन्न पहलुओं पर उनके विचार सुनकर आप उनकी दार्शनिक प्रकृति पर चकित रह जाते हैं

—''जब आप एक फव्वारे को देखते हैं तो उसके सौंदर्य की सराहना करते हैं, लेकिन आप उससे पानी नहीं पीते। जब आप एक बड़ी नदी देखते हैं तो उसकी विशालता पर विस्मित हो जाते हैं और हो सकता है कि आप उसमें नहाना चाहें।'' यह डॉक्यूमेंट्री लोकप्रिय भजन 'ओम जय जगदीश हरे' की बाँसुरी पर प्रस्तुति से खत्म होती है, जिसकी खूबसूरती पर यकीन करने के लिए उसे सुनना जरूरी है। वह निश्चित रूप से सूरीनामियों के लिए एक महत्त्वपूर्ण दिन रहा होगा।

हरिप्रसाद के अन्य साथियों में महर्षि महेश योगी भी हैं। हरिप्रसाद ने महर्षि महेश योगी के संगठन के लिए सोलह सी.डी. का एक सेट रिकॉर्ड किया है। महर्षि ने दशकों पहले हॉलैंड को अपना आधार बनाया और अब आश्रम से बाहर नहीं निकलते हैं। वह भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रेमी और हरिप्रसाद के प्रशंसक हैं। उन्होंने यह तक कहा है कि उनकी गाय-भैंसें हरिप्रसाद का संगीत सुनकर अधिक दूध देती हैं।

सन् 1991 में किसी समय हरिप्रसाद लंदन में थे, जब उनके पास एक फोन आया। हॉलैंड के दो सज्जन व्यक्ति जॉन फ्लोर और यूप बोर उनसे मिलना चाहते थे। अगली सुबह के लिए समय तय किया गया और वे समय पर उनके होटल पहुँच गए। जॉन रॉटरडम कंजर्वेटरी के निदेशक और एक निष्णात तूर्य (तुरही) वादक थे, जो रॉटरडम फिलहारमोनिक ऑर्केस्ट्रा के एक सदस्य रहे थे। वह उस समय रॉटरडम में रहते थे, लेकिन अब मैस्तैक्त के निकट रहते हैं और लिंबर्ग सिंफोनी ऑर्केस्ट्रा के प्रभारी हैं। उनके मित्रों और सहयोगियों के अनुसार, वह एक खुले दिमागवाले व्यक्ति हैं, जो कट्टरता और इस प्रकार की पूर्व कल्पित धारणाओं से पूरी तरह दूर हैं कि कंजर्वेटरी में किस तरह का संगीत पढ़ाया जाना सही है और क्या गलत। वह सिर्फ दो प्रकार के संगीत के बारे में जानते हैं, संगीत, जिसे अच्छी तरह बजाया जाता है और संगीत जिसे अच्छी तरह नहीं बजाया जाता। निर्देशक का उनका कार्यकाल कंजर्वेटरी के लिए बहुत उपयोगी माना जाता है।

यूप बोरे अत्यंत संगीतमय डच परिवार के हैं। उनके पिता वायलिन वादक और पेंटर थे तथा उनके दोनों भाई प्रसिद्ध वायलिन वादक हैं। उन्होंने संगीत की बजाय वनस्पति-विज्ञान पढ़ने का फैसला किया और एम्सटर्डम विश्वविद्यालय से उसमें स्नातकोत्तर की डिग्री हासिल की, लेकिन संगीत से दूरी बना पाने में असमर्थ रहने पर वह सारंगी सीखने के लिए भारत आए। इस वाद्य-यंत्र से मुग्ध होकर उन्होंने पहले पं. रामनारायण की रिकॉर्डिंग सुनी। उन्होंने पहला सबक सन् 1968 में उसी उस्ताद से सीखा।

उन्होंने गुरु नानक के अनुयायी और भास्कर राव भाखले के विद्यार्थी तथा शास्त्रीय गायक पं.दिलीप चंद्र वेदी, फैयाज खान और अल्लादिया खान से भी सबक सीखा। तब से उन्होंने यूर्तैक्त विश्वविद्यालय से इंडोलॉजी/म्यूजिकोलॉजी में पी-एच.डी. किया, 'वॉयस ऑफ द सारंगी' नामक पुस्तक लिखी और सन् 1989 में भोपाल में हुए सारंगी मेला सहित भारत में आयोजित कई शास्त्रीय संगीत सम्मेलनों में भाषण दिया है। वह अपनी किताब 'राग गाइड' में भारतीय संगीत को पश्चिमी स्वरलिपि में ढालनेवाले पहले डच वासी हैं। उनकी पुस्तक के साथ चार सी.डी. का एक सेट भी है। उन सी.डी. में हरिप्रसाद, बुद्धादित्य मुखर्जी और श्रुति साडोलीकर जैसे संगीतकारों द्वारा चौहत्तर रागों में बंदिशें हैं। यूप बोर रॉटरडम कंजर्वेटरी में भारतीय संगीत विभाग के पीछे की प्रेरक शक्ति, संगीतविद् और दूरद्रष्टा हैं। विश्व संगीत अकादमी के वर्तमान प्रमुख लियो वर्वेल्ड के अनुसार, ''यूप की ब्लूप्रिंट इतनी पूर्ण है कि उसे और बेहतर नहीं किया जा सकता।'' हर कार्यक्रम के लिए एक अतिथि अंतरराष्ट्रीय उस्ताद है हॉलैंड में रहनेवाला एक स्टडी लीडर, जो संगीत जानता हो (जो हरिप्रसाद के मामले में मारिएन स्वासेक हैं), साथ ही नियमित आधार पर सिखानेवाले शिक्षकों की एक टीम।

जॉन और यूप खासकर हरिप्रसाद से मिलने के लिए लंदन आए थे और उन्होंने उनसे कंजर्वेटरी में भारतीय संगीत

सिखाने का अनुरोध किया। इस प्रस्ताव पर अचंभित हरिप्रसाद ने कोई वायदा नहीं किया। उन्होंने उनसे दो सप्ताह बाद बात करने को कहा, जब वह मुंबई लौटकर आएँगे और उन्हें इस बारे में सोचने का मौका मिलेगा। इस बार जब उन्होंने फोन किया तो हरिप्रसाद ने उस पर अच्छी तरह सोच-विचार कर लिया था।

''मैंने उन्हें बताया कि मैं उस बारे में क्या सोचता हूँ और उनके साथ इस संबंध से मैं क्या उम्मीद करता हूँ।'' हरिप्रसाद कहते हैं, ''पहली बात, मैं सिर्फ मार्च से जून तक पढ़ाऊँगा, क्योंकि उन महीनों में भारत में कॉन्सर्ट कम होते हैं। दूसरे, मैं एक शिक्षक नहीं हूँ। मैं मौका मिलने पर अब भी अपने गुरु से सीखता हूँ और मैं हमेशा छात्र रहूँगा, इसलिए मुझे अपनी प्रैक्टिस के लिए समय चाहिए, ताकि मैं पुराने रागों का अभ्यास कर सकूँ और नए रागों में दक्षता प्राप्त कर सकूँ। तीसरे, मैं एक कलाकार हूँ। मुझे अपने परिवार का भरण-पोषण करने और संगीत की दुनिया में अपनी स्थिति बरकरार रखने के लिए प्रस्तुति देनी होती है, इसलिए मुझे यात्रा की सुविधा चाहिए। आर्थिक रूप से भी पैकेज पर्याप्त आकर्षक होना चाहिए और अंत में मुझे एक सहायक की जरूरत होगी, जो मेरी अनुपस्थिति में विद्यार्थियों की शिक्षा का ध्यान रखे।''

एक सहायक के अर्थशास्त्र को छोड़कर बाकी चीजों पर सहमति बनाना आसान था। हेनरी टोरनियर, थुअर्स, फ्रांस में जनमे एक खूबसूरत फ्रांसीसी थे, जो अब पेरिस के निवासी थे। उन्होंने पश्चिमी शास्त्रीय बाँसुरी सीखी थी और अधिकांशत: चैंबर संगीत बजाते थे। वह उससे और बेहतर बनाने की तकनीक सीखने के लिए एक जाज स्कूल में गए, लेकिन उन्हें जिस चीज की तलाश थी, वह नहीं मिली। उन्होंने पहली बार हरिप्रसाद और महान् बाँसुरीवादक टी.आर. महालिंगम के टेपों द्वारा भारतीय शास्त्रीय संगीत सुना। इसके बाद उन्होंने एक फ्रांसीसी सितार वादक से संगीत सुना, जिन्होंने उन्हें पेरिस के थिएटर दि ला विल में एक कॉन्सर्ट के बाद हरिप्रसाद से मिलवाया। हरिप्रसाद ने उन्हें यह कहते हुए बाँसुरी सीखने से हतोत्साहित किया कि ''यह एक मुश्किल वाद्य है। इसमें उँगलियों की स्थिति पाश्चात्य बाँसुरी से बहुत अलग होती है और इसे बजाने के लिए आपको बहुत अभ्यास करना होगा।'' यह उन्होंने खासकर उनकी निष्ठा और बाँसुरी वादन तथा भारतीय शैली सीखने की उनकी इच्छा जाँचने के लिए कहा। उन्होंने हेनरी को एक सबक सिखाया और उनसे इस बारे में सोचने को कहा। हेनरी को रीयूनियन आइलैंड्स के एक स्कूल में पश्चिमी संगीत सिखाने का काम मिल गया, लेकिन फ्रांसीसी संस्कृति मंत्रालय ने उन्हें फ्रांस में छुट्टियाँ बिताने की बजाय भारत जाने का विकल्प दिया। तब उनकी शिक्षा वास्तव में शुरू हुई। सन् 1989 से 1991 तक हर वर्ष दो महीनों के लिए वह हरिप्रसाद चौरसिया और मल्हार कुलकर्णी से गहन प्रशिक्षण के लिए मुंबई आते थे। उन्होंने कुलकर्णी परिवार के निकट रहने के लिए बोरीवली में एक मकान भी किराए पर लिया और मल्हारजी तथा उनके पुत्र रूपक के काफी निकट हो गए। रूपक तब तक हरिप्रसाद के एक वरिष्ठ छात्र और अपने आप में एक कलाकार के रूप में स्थापित हो चुके थे। सिर्फ पाठों के अलावा वह पूरी तरह पारंपरिक रूप में सीखने और एक संगीतमय परिवार से पूरी तरह से जुड़े होने का एक अच्छा अनुभव था।

जनवरी 1992 में भारत में उनके आखिरी दिन पर हरिप्रसाद ने दोपहर के भोजन के समय उनसे कहा, ''आपको पता है हेनरी, मैं रॉटरडम कंजर्वेटरी में पढ़ाने जा रहा हूँ और चाहता हूँ कि आप मेरे सहायक बनें। इस तरह आप भारतीय संगीत सीखना जारी रख सकते हैं।'' हेनरी टोरनियर कहते हैं, ''फ्रांस के लिए रवाना होने से पहले मैं गुरुजी से इससे बेहतर उपहार की उम्मीद नहीं कर सकता था।''

इससे बेहतर स्थिति नहीं हो सकती थी। कंजर्वेटरी ने उन्हें यात्रा करने के लिए पैसा, आवास उपलब्ध कराया और हरिप्रसाद से नि:शुल्क सीखने का अवसर दिया। बदले में उन्होंने हरिप्रसाद की अनुपस्थिति में दूसरे विद्यार्थियों को भारतीय संगीत का ज्ञान दिया। अब हरिप्रसाद द्वारा औपचारिक शिक्षा समाप्त होने के बाद वह पूर्ण रूप से

एक शिक्षक के रूप में काम कर रहे हैं। कंजर्वेटरी की आर्थिक मदद से वह वर्तमान में एक पुस्तक लिख रहे हैं, जिसका फिलहाल शीर्षक है 'हरिप्रसाद चौरसिया : दि आर्ट ऑफ इंप्रूवाइजेशन'।

कोडाट्र्स यूनिवर्सिटी फॉर प्रोफेशनल आट्र्स एजुकेशन द्वारा शासित रॉटरडेमस कंजर्वेटोरियम विभिन्न अकादमियों में बँटा हुआ है। वर्ल्ड म्यूजिक ऐंड डांस सेंटर में मौजूद वर्ल्ड म्यूजिक एकेडमी पीटर द हूचवेग 125, लियो वर्वेल्डे, हेल्म में स्थित है। उसके पाँच विभागों में एक भारतीय संगीत विभाग है, जिसके कला निदेशक पद्मविभूषण हरिप्रसाद चौरसिया हैं। उनकी नियुक्ति की तिथि है 1 मई, 1992।

कमरा संख्या 304 उनकी पसंदीदा कक्षा है। इस पंद्रह बटा पंद्रह फीट के नारंगी व मैजेंटा कमरे की एक दीवार पर उनके छात्रों द्वारा लगाई गई एक तसवीर है। यहीं पर सभी महाद्वीपों से आनेवाले सभी आयु, आकार-प्रकार और नस्लों के विद्यार्थी उनके चरणों में बैठकर भारतीय शास्त्रीय संगीत की उत्कृष्ट क्षमता का अनुभव करते हैं। तीसरे तल के कॉरीडोर में आइए और आपको हर कमरे से आ रहा भारतीय शास्त्रीय संगीत का स्वर सुनाई देगा। वहाँ बाँसुरी सबसे अधिक प्रभावी है। बाँसुरी के विद्यार्थी बाकी सभी संगीत विधाओं वायलिन, सरोद, सितार, तबला, खयाल और धुरपद के कुल विद्यार्थियों से अधिक संख्या में हैं। जून का महीना परीक्षा का होता है और एक सूची के अठारह परीक्षार्थियों में से बारह बाँसुरीवादक थे।

पिछले पंद्रह वर्षों में उन्होंने लगभग हर देश के सौ से अधिक विद्यार्थियों को शिक्षा दी है। अन्य कंजर्वेटरियों के विद्यार्थी अपनी शिक्षा पूर्ण करके अपने आप को नए सिरे से खोजने के लिए यहाँ आते हैं। इसका कारण निश्चित रूप से हरिप्रसाद की सम्मोहक उपस्थिति, उनकी शिक्षण कला और सम्मान तथा श्रद्धा हासिल करने की उनकी क्षमता है।

हालाँकि हमेशा से ऐसा नहीं था। जब उन्होंने भारतीय संगीत विभाग के निर्देशक का पद सँभाला था तो उसमें बहुत से बदलावों की जरूरत थी, खासकर दृष्टिकोण में। आम भावना यह थी कि यहाँ पर भारतीय शास्त्रीय संगीत सीखने आनेवाले लोग मजे के लिए आते थे और उनके वादन या गायन में भारत की असली रंगत नहीं आ पाती थी। कक्षाओं और कॉरीडोरों में धूम्रपान आम बात थी। दोपहर के भोजन के समय शिक्षकों का कमरा पार्टी कक्ष में बदल जाता था और बीयर व स्नैक्स की नदी बहती थी। विद्यार्थी अपने जूतों के साथ ही कक्षाओं में घूमते थे और यहाँ तक कि अपने पैरों से ही वाद्य-यंत्र और अन्य उपकरणों को इधर-उधर करते थे। हरिप्रसाद को 'हरिजी' या 'टीचर' या ज्यादा-से-ज्यादा 'सर' कहकर बुलाया जाता था।

वह सब बदल चुका है। भक्ति पर जोर दिया जाता है। जैसा कि हरिप्रसाद स्पष्ट करते हैं, ''मुझे उनकी भावना में परिवर्तन लाना पड़ा और उन्हें इस जगह को मंदिर और अपने आपको भक्त मानने के लिए प्रेरित करना पड़ा। गुरु के रूप में भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रति उनकी भक्ति जगाना हमारा काम है। तभी हम असली गुरु होंगे, अन्यथा हम सिर्फ व्यवसायी बने रहेंगे, जो यह काम सिर्फ पैसों के लिए करते हैं। अगर हम उन्हें संगीतकार नहीं बना सकते तो हमारा यहाँ रहने का कोई अधिकार नहीं है।'' आज बीयर और सिगरेट अतीत की बात हो गई है। हरिप्रसाद को 'गुरुजी' कहा जाता है और सभी विद्यार्थी उनके पैर छूते हैं, थ्री पीस सूट पहननेवाले भी। सभी जूते-चप्पल उतार दिए जाते हैं और कक्षा के एक कोने में रखे जाते हैं। किसी को कालीनवाली बैठने की जगह पर जूतों के साथ नहीं जाने दिया जाता है। हरिप्रसाद कहते हैं, ''ये सब असली भक्ति की पूर्व शर्त हैं। इन सब के पूर्ण होने के बाद ही संगीत शुरू होता है।''

धीरे-धीरे, लेकिन विद्यार्थी यहाँ पर पूरी दुनिया से आने शुरू हो गए। कभी-कभी लोग कक्षा चलते हुए देखने के लिए अपने पूरे परिवार को साथ लाते हैं। यहाँ तक कि क्वीन बीऐटक्स भी हरिप्रसाद की एक कक्षा में आई थीं,

लगभग पंद्रह मिनट तक वहाँ चुपचाप खड़ी रहीं और बिना किसी शोर-शराबे के वहाँ से चली गईं। वह नीचे हरिप्रसाद से मिलीं, उनके साथ शैंपेन लिया, कुशल-क्षेम पूछा और तब गईं। हरिप्रसाद कहते हैं, ''यहाँ पर भारतीय संगीत विभाग को सभी विभागों में बेहतरीन बनाने का प्रयास किया जाता है, ताकि विद्यार्थी इससे जुड़े रहकर गर्व महसूस कर सकें और मुझे यहाँ पर लानेवाले जॉन फ्लोर और यूप बोर खुश हों कि उन्होंने सही चयन किया। यहाँ के विद्यार्थियों को यदि भारत के विद्यार्थियों से बेहतर नहीं तो कम-से-कम उतना ही अच्छा होना चाहिए।''

इसके लिए वह अथक और व्यवस्थित प्रयास करते हैं। वह कभी थकान की शिकायत नहीं करते। हमेशा सफर के लिए तैयार रहते हैं। मुंबई से एम्सटर्डम की आठ घंटे लंबी यात्रा के बावजूद वह बिना झपकी लिए नहा-धोकर और नाश्ता करके कंजर्वेटरी में होते हैं। वह कहते हैं, ''मैं यहाँ विद्यार्थियों के लिए हूँ। वे दुनिया भर से यहाँ पर सीखने के लिए आए हैं। मैं कैसे सो सकता हूँ, जब वे मेरा इंतजार कर रहे होते हैं।''

यह लगाव संक्रामक है और लगता है कि उनके सहायक हेनरी टोरनियर पर भी इसका असर हो गया है। हेनरी तीन घंटे लंबी ट्रेन यात्रा के बाद पेरिस से अभी-अभी लौटे थे और उन्होंने हरिप्रसाद का दोपहर के भोजन का निमंत्रण अस्वीकार कर दिया, क्योंकि इजरायल की उनकी एक छात्रा की उस शाम फाइनल परीक्षा थी और साउंड चेक उनकी उम्मीदों के अनुसार नहीं था।

बाँसुरी के विद्यार्थियों को उनकी संगीत तथा लय की समझ बढ़ाने के लिए तबला और शास्त्रीय गायन सीखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। हरिप्रसाद बहुत गंभीरता से उन्हें स्टेज परफॉर्मर की बारीकियाँ सिखाते हैं। उन्हें सिखाया जाता है कि तबला तथा तानपुरा को कैसे साधा जाता है, ताकि वे प्रस्तुति के समय आत्मनिर्भर हों। इसके लिए एक अनिवार्य प्रवेश परीक्षा होती है, जिसके बिना किसी को विद्यार्थी के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है। जैसा कि हरिप्रसाद स्पष्ट करते हैं, ''अगर ईश्वर ने किसी को स्वर और ताल से नहीं नवाजा है, तो समय क्यों बरबाद करना?''

शिक्षण प्रणाली पारंपरिक और आधुनिक का मिश्रण है। जब हरिप्रसाद रॉटरडम में होते हैं, वह गुरुकुल प्रणाली अपनाते हैं, जहाँ हर समय विद्यार्थियों के लिए व्यक्तिगत रूप से उपलब्ध होते हैं। सामूहिक कक्षाएँ होती हैं, जिनका प्रयोग आलाप, जोर एवं तबले पर दक्षता बढ़ाने के लिए किया जाता है और व्यक्तिगत कक्षाएँ भी होती हैं, जहाँ विद्यार्थी हरिप्रसाद के मार्गदर्शन में अपने ही वादन को रिकॉर्ड करता है। साथ ही उनकी अनुपस्थिति में विद्यार्थियों के अभ्यास करने के लिए एक संगीतमय 'टेंपलेट' की एक अत्यंत आधुनिक तथा दिलचस्प प्रणाली भी है। यह एक चार चरणोंवाली विधि है, जो इस प्रकार काम करती है—

चरण 1 : हरिप्रसाद राग रिकॉर्ड करते हैं।

चरण 2 : हेनरी टोरनियर कागज पर नोट्स लिखते हैं।

चरण 3 : विद्यार्थी को अभ्यास करने के लिए रिकॉर्डिंग और प्रतिलिपि दी जाती है।

चरण 4 : एक बार मूल संरचना में प्रवीणता प्राप्त करने के बाद हरिप्रसाद स्वयं उसे विभिन्न अलंकरण और संरचना में उन्हें ढालने के तरीके सिखाते हैं।

यह प्रणाली विद्यार्थी को रिकॉर्डिंग के द्वारा श्रवण प्रशिक्षण, लय चक्र 'ठेका' के संबंध में कागज पर उस रचना को दिखाते हुए और कुछ अलंकरणों की ग्राफिक प्रस्तुति द्वारा दृश्य मदद प्रदान करती है, जिससे उस रचना के संयोजन, प्रदर्शन और 'तिहाइयों' को समझने में मदद मिलती है। यह एक बेहतरीन प्रणाली है, जो मूलभूत समझ को सुगम बनाती है, लेकिन आखिरकार यह सिर्फ एक माध्यम ही है और सीधे गुरु से शिष्य को ज्ञान प्रदान करने की मौखिक परंपरा को अधिक-से-अधिक अनुपूरित कर सकती है, कभी उसकी जगह नहीं ले सकती।

रॉटरडम कंजर्वेटरी कई रूपों में अनूठी है। '70 के दशक के अंत तक यूरोप के किसी भी कंजर्वेटरी में सिर्फ पश्चिमी शास्त्रीय संगीत सिखाया जाता था। सन् 1979 में सबसे पहले रॉटरडम कंजर्वेटरी ने अपने दरवाजे जाज के अध्ययन के लिए खोले। यह ऐसा कदम था, जिसका यूरोप के कई कंजर्वेटरियों द्वारा अनुकरण किया गया। पहली बार इसी ने विभिन्न विभागोंवाली एक विश्व संगीत अकादमी खोली। सन् 1985 में महान् पाको पेना के अंतर्गत फ्लैमेंको के साथ इसकी शुरुआत की गई। सन् 1989 में जान लॉवेंस हार्टोंग के अंतर्गत लैटिन संगीत विभाग स्थापित किया गया। सन् 1992 में एक और महान् संगीतकार ओस्वाल्डो पुगलीज की अगुवाई में टैंगो विभाग स्थापित किया गया। उनकी मृत्यु के बाद उसकी कमान गुस्तावो बाइटलमैन के हाथों में आई। वर्ष 2002 में तुर्की लोक संगीत शुरू किया गया। सन् 1987 में एक जैसी मानसिकतावाले लोगों यूप बोर, विम वेन डेर मीर और टेड द जोंग की टीम के माध्यम से भारतीय संगीत विभाग स्थापित किया गया। उसमें शास्त्रीय संगीत, तबला, सितार और बाँसुरी में प्रशिक्षण प्रदान किया जाता था। पहले कला निर्देशक ध्रुपद गायक जिया मोहिउद्दीन डागर थे और प्रभा अत्रे तथा लतीफ अहमद खान अतिथि शिक्षक थे, जिसके बाद बुद्धादित्य मुखर्जी भी इसमें शामिल हो गए।

वास्तव में किसी कंजर्वेटरी में यह हरिप्रसाद की दूसरी पारी है। पहली बार वह बोस्टन में न्यू इंग्लैंड कंजर्वेटरी में थे। एब्बी रेबेनोवित्ज नामक उनके एक विद्यार्थी द्वारा भारतीय संगीत विभाग शुरू किया गया। हरिप्रसाद ने शुरू में वहाँ वर्ष में दो महीनों के लिए पढ़ाना स्वीकार किया, जब तक कि वहाँ इतने विद्यार्थी न हो जाएँ कि वह एक पूर्णकालिक रोजगार के रूप में उस पर विचार करें। कंजर्वेटरी ने उनकी बात मान ली, क्योंकि वे भी सरकारी अनुदान की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने वहाँ वर्ष 1991 और 1992 में दो वर्षों तक पढ़ाया, हालाँकि उन्हें वहाँ पढ़ाना पसंद नहीं आया। उन्हें वहाँ का मौसम अनुकूल नहीं लगा और भोजन की व्यवस्था भी उनके पसंद की नहीं थी। उन दिनों मुंबई से बोस्टन की सीधी उड़ानें नहीं थीं। दुबई, बहरीन या लंदन में रुकते हुए जाना लंबा और थकाऊ था। उन्हें दोनों ओर यात्रा करने की थकान से उबरने में दो दिन लगते थे। इन सबके बावजूद उन्होंने उस विभाग को जारी रखा। वहाँ लगभग एक दर्जन विद्यार्थी थे, जिन्हें वह अमेरिका में अल्पज्ञात भारतीय संगीत विभाग के लिए अच्छी संख्या मानते हैं। विद्यार्थी वहाँ रहनेवाले अमेरिकी या भारतीय थे। यह दिलचस्प था कि उनके पास आनेवाले विद्यार्थी पहले ही तुरही, सैक्सोफोन या शहनाई बजाना जानते थे और अपने वाद्य-यंत्र पर भारतीय संगीत बजाना चाहते थे। उन्हें पता था कि भारतीय संगीतकार सैक्सोफोन, वायलिन और मैंडोलिन जैसे पाश्चात्य वाद्य-यंत्रों का इस्तेमाल करते हैं।

एक बार रॉटरडम में अपनी नियुक्ति सुनिश्चित होने के बाद उन्होंने खुशी-खुशी बोस्टन को अलविदा कह दिया। हॉलैंड में बिलकुल भिन्न स्थिति थी। उन्हें वहाँ का मौसम पसंद है। मुंबई की उड़ान अधिक-से-अधिक आठ घंटे का समय लेती है। वह स्विस एयर की फ्लाइट लेते हैं, हालाँकि वह अधिक समय लेती है और ज्यूरिख में उसका एक ठहराव भी है। के.एल.एम. फ्लाइट सुबह बहुत जल्दी मुंबई पहुँचती है, जबकि स्विसएयर 9.30 बजे रात को पहुँचती है। इसलिए जो भी हवाई अड्डे पर उन्हें लेने आता है, उसे असुविधा नहीं होती। वह कहते हैं, ''चाहे ड्राइवर हो या मेरी फैमिली, इतनी रात को सब गालियाँ देते हुए आते हैं।''

हॉलैंड पहुँचने के कुछ सप्ताह बाद वह गीज़ला से मिले। वह भारतीय मूल की सूरीनामी हैं। उनसे परिचय एक इंडोनेशियाई छात्र रॉब मुआल ने कराया। हालाँकि रॉब एक इंडोनेशियाई हैं। उन्हें भारत के अधिकांश लोगों की बजाय एक बेहतर बाँसुरी निर्माता माना जाता है। उन्हें हरिप्रसाद से इस बारे में एक प्रशंसा-पत्र/प्रमाण-पत्र मिला हुआ है। उन्होंने भारतीय शास्त्रीय संगीत के साथ जाज में इस्तेमाल के लिए सुरीली ध्वनिवाली एक बाँसुरी बनाई। हरिप्रसाद ने प्यार से उस बाँसुरी को 'ब्रह्मनाद वेणु' का नाम दिया। गीज़ला रॉब से बाँसुरी बजाना सीख रही थीं।

इसलिए हरिप्रसाद उनके गुरु के गुरु थे। गीज़ला अब भी हॉलैंड में उनके निकटतम मित्रों में एक हैं। उनका असली नाम कृष्णा कुमारी सिवबालकसिंग है। सूरीनाम लैटिन अमेरिका में एक डच कॉलोनी थी, जहाँ सन् 1873 से 1916 के बीच कलकत्ता बंदरगाह से बहुत से भारतीयों को प्रत्यक्ष रूप में कर्मचारियों, लेकिन हकीकत में बँधुआ मजदूरों के रूप में ले जाया गया था। एक कहानी (जिसका कोई प्रमाण नहीं है) के अनुसार, वहाँ उन्हें श्रीराम नामक एक स्थान पर ले जाने के वायदे से लुभाकर ले जाया गया था। उन दिनों पारंपरिक सूरीनामी नाम ननकू, मोतीलाल, गजराज जैसे थे। आज तीन पीढ़ियों बाद उनमें से अधिकतर के डच नाम भी हैं, जैसे गीज़ला।

किसी भी महत्त्वाकांक्षी बाँसुरी वादक के लिए हरिप्रसाद चौरसिया से मिलना भगवान् कृष्ण से मिलने की तरह है। आप अपने आपको सम्मोहित होने से नहीं रोक सकते और गीज़ला कोई अपवाद नहीं थीं। वह स्वयं ऐसा कहती हैं। उन्होंने हरिप्रसाद से यह पूछते हुए रॉटरडम में उन्हें सहजता महसूस कराने की कोशिश की कि उन्हें वहाँ का स्थानीय भोजन कैसा लगता है। उन्होंने कहा कि वह दूध, ब्रेड, पनीर, फल और ऑमलेट खाते हैं। उन्हें किसी दूसरे सुपरमार्केट भोजन पर विश्वास नहीं है या गोमांस परोस दिए जाने के डर से बाहर खाने का जोखिम नहीं लेते। एक अच्छी कुक होने के बावजूद गीज़ला भी दूध और बिस्कुट के आहार पर थीं, क्योंकि उन्हें अकेले पकाना और खाना भारी लगता था। उन्होंने कहा कि अगर हरिप्रसाद उनके साथ खाना चाहें तो वह दोनों के लिए भोजन पका सकती है। यह हरिप्रसाद के लिए एक संकोच में डालनेवाली स्थिति थी, लेकिन घर में पका भारतीय भोजन खाने की संभावना ने उन्हें ना नहीं करने दिया। आज वह अस्पताल में अपना काम खत्म होने पर उन्हें कंजर्वेटरी से लेते हुए जाती हैं। वे रात का खाना साथ खाते हैं और वह अगले दिन दोपहर के भोजन के लिए थोड़ा सा खाना पैक कर देती हैं, फिर वह अपने घर चले जाते हैं। वह जी टी.वी. पर भारतीय खबरें भी देखते हैं, जिसका गीज़ला के लिए कोई अर्थ नहीं है।

''उसमें 50 फीसदी क्रिकेट और 50 फीसदी राजनीति होती है। मुझे इनमें से दोनों समझ में नहीं आते।'' वह कहती हैं। वह उनके कपड़े भी धोती हैं और हवाई अड्डे तक आने-जाने की उनकी यात्राओं की व्यवस्था करती हैं, जो उनके कठिन यात्रा-क्रम को देखते हुए असंख्य होती हैं। बदले में उन्हें हरिजी में एक जीवनपर्यंत मित्र मिला हुआ है। वह याद करती हैं, जब वह बीमार हुई थीं और उन्हें रात के भोजन के लिए नहीं बुला सकती थीं, ''मैंने हरिजी को फोन किया और उनसे कहा कि मेरे घर न आएँ, क्योंकि मुझे बुखार था और मैं दरवाजा खोलने की स्थिति में नहीं थी। उनका जवाब था कि मैं तुमसे मिलने आऊँगा, चाहे मुझे दरवाजा तोड़ना पड़े।'' कुछ देर बाद वह भारी बारिश में पूरी तरह भीगे हुए अपनी मित्र के लिए दूध और ब्रेड लेते हुए आए। गीज़ला कहती हैं, ''वह दिल को छूनेवाला था। इतना महान् उस्ताद, इतना प्रसिद्ध व्यक्ति दूध और ब्रेड लेकर मुझसे मिलने आया। आज भी जब मैं उस बारे में सोचती हूँ तो अभिभूत हो जाती हूँ।''

उनकी दोस्ती इतनी खूबसूरत और खास है कि एक बार उन्हें हरिप्रसाद के कुरते में बटन टाँकते देखकर हॉलैंड में छुट्टियाँ मनाने के दौरान उनकी पत्नी अनुराधा ने यह टिप्पणी की, ''आप दोनों का रिश्ता ऐसा है, जिसे कोई नाम नहीं दिया जा सकता।''

गीज़ला एक संकोची और अंतर्मुखी महिला हैं। वह इस पुस्तक में शामिल किया जाना नहीं चाहती थीं और उन्होंने हरिप्रसाद से भी ऐसा कहा। उन्होंने एक सरल तिकड़म से उन्हें मात कर दिया, ''मैं यह जीवनी नहीं लिख रहा हूँ। सिंह साहब लिख रहे हैं। तो मैं कैसे फैसला कर सकता हूँ कि किसे इसमें शामिल करना है और किसे बाहर रखना है?'' वह ऐसी ही नीति अपनाकर किसी परिस्थिति से बाहर निकल जाते हैं।

रॉटरडम आने के बाद उन्हें चार शयनकक्षोंवाले एक गेस्टहाउस में ठहराया गया था और उनके इस्तेमाल के लिए

एक साइकिल थी। गेस्टहाउस की बीच-बीच में सफाई के लिए एक सहायिका भी उपलब्ध कराई गई थी, लेकिन कई अवसरों पर जब वह किसी कॉन्सर्ट टूर से लौटते तो उन्होंने गेस्टहाउस में अन्य शिक्षकों को रहते पाया। इसलिए उन्हें एक होटल में रहना पड़ा, जब तक कि उनका 'घर' खाली नहीं हुआ। आज रॉटरडम में उनका अपना घर है। वह लालफीताशाही से निपटने में मदद करने के लिए कंजर्वेटरी और डच सरकार के आभारी हैं। उन्होंने सन् 1996 में जो पहला घर खरीदा, वह कंजर्वेटरी से कुछ दूर था। वहाँ पहुँचने के लिए लंबी सैर करनी पड़ती थी और तूफान, बारिश तथा बर्फबारी में वह बहुत असुविधाजनक था।

गीज़ला वह समय याद करती हैं, जब काम पर पहुँचने के लिए अपनी सफेद चप्पलों, सफेद कुरता-पाजामा और शॉल में डेढ़ घंटा चलते थे। ''लोगों को लगता था कि वह सफेद कपड़ों में, बर्फीली सड़कों पर चलनेवाला कोई आधुनिक गांधी है।'' उनके आग्रह पर ही उन्होंने 'पश्चिमी' गरम कपड़े पहनने शुरू किए। कुछ वर्ष बाद उन्होंने कंजर्वेटरी के कुछ पास एक घर लिया। मार्च से जून तक चार माह वहाँ बिताने के अलावा वह अपनी यूरोपीय यात्राओं के दौरान भी कभी-कभार वहाँ पहुँचते हैं, कुछ अपने विद्यार्थियों से मिलने के लिए, कुछ इसलिए कि उन्हें वह जगह पसंद है।

कंजर्वेटरी उनके जीवन का प्यार है। हरिप्रसाद एक विश्वस्तरीय प्रोफेशनल हैं और ऐसे स्थान पर काम करना उन्हें बहुत पसंद है, जहाँ वह अपने पेशे के अन्य लोगों द्वारा घिरे हों। मुझे लगता है कि उस अतुलनीय प्रतिभा भंडार के उल्लेख के बिना यह अध्याय अपूर्ण होगा, जो उनका सपोर्ट सिस्टम है। वह वहाँ का वातावरण अन्य स्थानों से बहुत भिन्न पाते हैं। प्रशासन में शामिल बहुत से लोग, निर्देशक हों या उससे नीचे के पदवाले, अपने आप में कलाकार हैं। वहाँ संगीतकारों का बहुत सम्मान होता है और अन्य कंजर्वेटरियों के मुकाबले यह भारतीय शास्त्रीय संगीत पर अधिक केंद्रित है। हरिप्रसाद मानते हैं कि हॉलैंड में भारतीय संगीत के प्रसार के कारण सभी भारतीय चीजों को वहाँ पसंद किया जाने लगा है, भारतीय फिल्में, कपड़े, सॉफ्टवेयर उत्पाद और सबसे अधिक भारतीय मूल्य।

किसी भी अन्य स्कूल की तरह यहाँ पर परीक्षाएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं। हरिप्रसाद अपने विद्यार्थियों को तैयार करने में काफी मेहनत करते हैं, चाहे वह मास्टर्स डिग्री की प्रथम वर्ष परीक्षा हो या फाइनल। मैं जून 2007 की परीक्षाओं के समय रॉटरडम में था। हरिप्रसाद के जीवनीकार के रूप में मुझे परीक्षाओं में बैठने का अवसर मिला। मैं जूरी के एक मूल्यांकन सत्र में भी हिस्सेदार था, जिसमें रहना बाहरी लोगों के लिए वर्जित है।

परीक्षा कॉन्सर्ट के रूप में ली जाती है, जहाँ विद्यार्थी को एक समय-सीमा दी जाती है, जिसमें उसे एक या अधिक राग बजाने होते हैं। परीक्षा या तो कंजर्वेटरी में होती है या इस उद्देश्य के लिए किराए पर लिये गए ऑडिटोरियम में। सभी का स्वागत है। पहली परीक्षा वेरेल्डम्यूजियम में थिएटर द एवेनार में हुई थी। 'एवेनार' इक्वेटर के लिए डच शब्द है और यह नाम उपयुक्त लगा, क्योंकि यह थिएटर अंतरराष्ट्रीय संगीत की प्रस्तुतियों के लिए खासतौर पर रखा गया है और पश्चिमी गोलादृर्ध को बाहर रखा गया है। यहाँ पर अरबी से लेकर जापानी संगीत तक की प्रस्तुतियाँ हुई हैं।

बहुत छोटे हाथोंवाली और 75 सें.मी. लंबी बाँसुरी बजानेवाली बॉन, जर्मनी की दुबली-पतली युवती स्टीफेनी बॉश इस परीक्षा में पास होने पर मास्टर्स की डिग्री प्राप्त करनेवाली थीं। पेशे से एक संगीत शिक्षिका स्टीफेनी पहले भी भारत, पाकिस्तान और जर्मनी में अपनी कला का प्रदर्शन कर चुकी थीं। वह छोटा सा प्रेक्षागृह खचाखच भरा हुआ था। मित्र, परिवार, शिक्षक वर्ग और साथी संगीतकार सब वहाँ थे। मैचिंग बिंदी के साथ एक नीली साड़ी में खूबसूरत लग रही स्टीफेनी ने पहले अपने रागों के चयन और फिर सस्वर प्रस्तुति से दर्शकों को मुग्ध कर दिया।

क्रमश: पंचतानी व सप्ततानी मालकौंस एवं भैरवी में सिर्फ फ्लैट या हाफ नोट्स होते हैं और भारत में भी बाँसुरीवादक इन रागों को बजाने से डरते हैं। बाँसुरी पर आधे छिद्रों को उँगलियों से बंद करते हुए और आधे छिद्रों को खुला छोड़ते हुए हाफ नोट उत्पन्न किया जाता है। यह उँगलियों के लिए अत्यंत मुश्किल (और शुरू में पीड़ादायक) अनुभव होता है, जब दो या अधिक हाफ लगातार बजाना होता है। कई भारतीय बाँसुरीवादक बाँसुरी के धा (छठे स्वर) को सा (पहले स्वर) के रूप में इस्तेमाल करते हुए राग भैरवी बजाते हैं, जहाँ सिर्फ दूसरा और छठा स्वर ही हाफ नोट्स होते हैं, लेकिन स्टीफेनी ने दोनों रागों को मूल-सा से बजाया। यह ऐसा साहस था, जो उनकी मेहनत एवं समर्पण और उनके गुरु हरिप्रसाद चौरसिया की देखरेख व मार्गदर्शन का सुबूत था।

मैंने हमेशा कहा है कि पश्चिम कभी एक रविशंकर उत्पन्न नहीं कर सकता और भारत कभी बी.बी.किंग नहीं उत्पन्न कर सकता, लेकिन उन्हें सुनते हुए मैं इस बात पर पुनर्विचार करने पर मजबूर हो गया। एक युवा यूरोपीय द्वारा इतनी गहराई से भारतीय संगीत बजाना—अविश्वसनीय! मुझे बाद में पता चला कि वह अपने प्रिय गुरुजी हरिप्रसाद चौरसिया से एक घंटे सीखने के लिए बॉन से रॉटरडम तक ड्राइव करती हैं, जो यूरोप के बदतर हाइवे ट्रैफिक से होते हुए एक तरफ से साढ़े तीन घंटे का रास्ता है। उस कॉन्सर्ट के बाद जब जूरी उनका परिणाम निर्धारित कर रही थी, तब वाइन और घर में बने समोसों का दौर चला, जो वह अपने साथ बॉन से लेकर आई थीं। परिणाम में हरिप्रसाद ने दस में से दस अंक दिए।

बाकी परीक्षा भी उतनी ही अद्भुत थी। एक सूरीनामी किशोर ने वायलिन पर शास्त्रीय अहीर भैरव बंदिश 'अलबेला सजन आयो रे' बजाया। एक स्वीड और एक ग्रीक ने बाँसुरी पर 'रसिया तू ना जा' बजाया, जो राग बिहाग की रचना है।

जूरी खुद में कम अद्भुत नहीं थी, दिलचस्प और त्रुटिहीन। पहले थे हरिप्रसाद, फिर उनके सहायक हेनरी टोरनियर। महान् संगीतकार पन्नालाल घोष के भतीजे और तबला वादक निखिल घोष के पुत्र, शास्त्रीय गायक और सारंगी वादक ध्रुव घोष। हॉलैंड में जनमी आधी चेकोस्लोवाकियन मरियान स्वासेक थीं, जिन्होंने चौबीस वर्ष की आयु में नेपाल में वायलिन पर भारतीय शास्त्रीय संगीत सीखना शुरू किया था। उन्होंने फिर यूप बोर और पं. रामनारायण से सारंगी सीखना शुरू किया और अंत में जिया मोहिउद्दीन डागर, फरीदुद्दीन डागर और उदय भवालकर से ध्रुपद गायन सीखा। उनकी एक ध्रुपद शिष्या सेलिन वेडियर अब लंदन और पेरिस में नाम कमा रही हैं। अंत में थे लियो वेरवेल्ड, जो विश्व संगीत अकादमी के प्रमुख थे। वह शास्त्रीय संगीत में प्रशिक्षित अकॉर्डियन वादक थे, जो दावा करते थे कि ''दुनिया का सबसे बेहतरीन काम संगीत की विभिन्न विधाओं से परिचित रहना और लगातार विश्व में फैलाना है।''

हरिप्रसाद और उनकी जूरी किसी विद्यार्थी को सिर्फ उस दिन के प्रदर्शन के आधार पर अंक नहीं देते। वह मूल्यांकन की अद्भुत प्रक्रिया है, जहाँ वह विद्यार्थी के अंतर्मन में जाने और पिछली परीक्षा तथा इस परीक्षा के बीच प्रगति का मूल्यांकन करने की कोशिश करते हैं। क्या उसने पर्याप्त मेहनत की है? क्या वह अकेले रहता है या अपने परिवार के साथ?उसका संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास कैसा रहा है?क्या उसे किशोरावस्था के आरंभ और साथियों के दबाव की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है?क्या उसकी अन्य गतिविधियाँ, जैसे किसी रॉक बैंड में बजाना, एक भारतीय शास्त्रीय संगीतकार के रूप में उसकी क्षमताओं को और बढ़ाती हैं या घटाती हैं? दिए गए अंकों से विद्यार्थी को प्रोत्साहन मिलना चाहिए तथा साथ ही उसे यह भी याद दिलानेवाला होना चाहिए कि और भी मेहनत करने की जरूरत है।

हरिप्रसाद युवाओं को पसंद करते हैं। वह उन्हें पढ़ाना, उन्हें ऊपर बढ़ाना और उनके साथ काम करना पसंद

करते हैं। शायद इससे वह अपने आपको युवा महसूस करते हैं या शायद उन्हें उनकी युवा ऊर्जा अच्छी लगती है। वह किसी जूनियर कलाकार या एक युवा संगीतकार को अपने साथ बजाने के लिए कहने में कोई अहंकार नहीं महसूस करते, उनकी सीधी-सादी प्रकृति उनका सबसे बड़ा गुण है। उस्ताद जाकिर हुसैन के शब्दों में, ''वह एक सरल व्यक्ति हैं। उनमें कुछ भी तड़क-भड़क नहीं है। वह हमेशा अपना भार स्वयं उठाते थे और युवा संगीतकारों को महसूस कराते हैं कि वह हममें से एक हैं।'' रॉटरडम में उनके दो तबला वादक इसके सटीक उदाहरण हैं। दोनों में से छोटे नीति रंजन बिश्वास बँगलादेश के गौरव हैं—खासकर बँगलादेश के हिंदुओं के। उनकी माँ का सपना अपने बेटे को तबला वादक बनाना था। बचपन से ही उन्हें हरिप्रसाद, निखिल बनर्जी, रवि शंकर जैसे लोगों के रेडियो कार्यक्रम सुनाए जाते थे। उन्होंने बड़ौदा विश्वविद्यालय से सुरेश कुमार सक्सेना के सान्निध्य में तबला में मास्टर्स डिग्री प्राप्त की। बँगलादेश में डच राजदूत ने सुझाव दिया कि वह एम्सटर्डम जाएँ, जहाँ कंजर्वेटरी ने उन्हें जाज कला के छात्र और भारतीय कला के शिक्षक के रूप में प्रवेश दिया। वहाँ वह एक मीडियाकर्मी ओम टी.वी. के फ्रैंक कृष्णा से मिले, जिन्होंने उनसे एक कॉन्सर्ट में तबला पर हरिप्रसाद को संगत देने को कहा।

''पहली बार मैं इतने महान् उस्ताद के साथ बजा रहा था और मैं बुरी तरह घबराया हुआ था।'' नीति कहते हैं। ''बाद में हरिप्रसादजी कैफेटेरिया में आकर मुझसे मिले और पूछा कि क्या मैं जर्मनी में उनके साथ बजाना चाहूँगा? वह मेरे जीवन का सबसे बड़ा पल था। हमने डसेलडॉर्फ में प्रस्तुति दी। उसके बाद लंबे समय तक कुछ नहीं हुआ, फिर अचानक एक दिन मेरे सेल फोन पर उनका फोन आया। ''हैलो नीति, मैं हरिप्रसाद चौरसिया बोल रहा हूँ।'' उनकी आवाज को सुनकर मैं अवाक् रह गया। उन्होंने मुझे तीन और कॉन्सर्ट में बजाने को कहा और कंजर्वेटरी में बजाने का प्रस्ताव दिया। हरिप्रसाद कभी इस तरह उनका परिचय देने से नहीं चूकते, ''नीति रंजन बिश्वास, बँगलादेश के युवा तबला वादक।''

दूसरे तबलची हैं पं. सुरेश तलवलकर के छात्र विजय घाटे। उन्होंने दुनिया भर में कई कॉन्सर्ट साथ किए हैं, जिनमें एक मुंबई में बाँसुरीवादक इयान एंडरसन के साथ कॉन्सर्ट शामिल है। पिछले कुछ वर्षों से वह कंजर्वेटरी के नियमित तबला वादक हैं और हरिप्रसाद का अत्यंत सम्मान करते हैं, ''जब मैं छोटा था तो वह (हरिप्रसाद) मुझसे इतने दूर लगते थे कि मैंने कभी नहीं सोचा था कि मैं उनके नजदीकी लोगों में शामिल हो पाऊँगा। बारह वर्ष पहले मैंने जब पहली बार उनके साथ बजाया था, तब से लेकर आज तक मैं हर कॉन्सर्ट में उतना ही उत्साह महसूस करता हूँ।'' विजय घाटे कहते हैं, ''पंडितजी तबला वादकों को सिर्फ संगत देनेवालों की बजाय परिवार की तरह अधिक मानते हैं।''

हरिप्रसाद बहुत प्यार से उनका जिक्र करते हैं, ''हमारे बच्चे हैं। बहुत प्यार करते हैं।''

हरिप्रसाद के जन्मदिवस समारोह में हमारे लिए एक बड़ा सरप्राइज था। चूँकि वह 28 जून को भारत लौटने वाले थे, उनके विद्यार्थियों ने 21 जून को उनके लिए एक छोटी सी पार्टी रखने का फैसला किया। वह एक संगीतकार का जन्मदिन मनाने के लिए अच्छा दिन था, क्योंकि उस दिन विश्व संगीत दिवस था; ऐसा नहीं था कि हर किसी को इस बारे में पता था। इंडियन पैराडाइज, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, एडमिरल डि रॉयटर्सवेग पर स्थित एक भारतीय रेस्तराँ है। वहाँ हमारा स्वागत माइक पर बजती राग बिहाग की एक सी.डी. ने किया, जो हरिप्रसाद चौरसिया द्वारा ही बजाया गया था। हरिप्रसाद कुछ मिनट बाद वहाँ आए और रेस्तराँ के एक कर्मी प्यारा पंजाबी ने सम्मान के साथ झुकते हुए कहा, ''पंडितजी, मुझे विश्वास नहीं हो रहा कि यह आप हैं! मैं हरवल्लभ म्यूजिकल फेस्टिवल में आपको सुना करता था। आपके यहाँ आने से बहुत धन्य महसूस कर रहा हूँ।''

रॉटरडम में हरिप्रसादजी का जन्मदिन मनाते उनके छात्र।

मित्रों और साथियों के लिए वह 'हरिजी' हैं, विद्यार्थियों के लिए वह 'गुरुजी' हैं और हरिप्रसाद बहुत सहजता व गरिमा के साथ दोनों भूमिकाओं में अंदर-बाहर होते रहते हैं। मुझे हैरत हो रही थी कि इतना सम्मान और श्रद्धा कहाँ से उत्पन्न होती है। माइक्रोफोन के साथ मैंने कंजर्वेटरी के अंदर और बाहर बहुत से लोगों से अनेक सवाल किए। उत्तर बहुत व्यक्तिपरक थे और फिर भी बहुत कुछ मिलते-जुलते थे। मैं उन जवाबों को लगभग पूरी तरह उसके मूल असंपादित रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ—

हरिजी हैं

''...एक महान् गुरु हैं। शुरू में मैं उन्हें गुरु के रूप में नहीं, सिर्फ एक मित्र और एक परफॉर्मर के रूप में देखती थी। एक दिन मैंने उन्हें कहा कि मुझे राग भैरवी सिखाएँ और मैं शिक्षक के रूप में उनकी क्षमता पर दंग थी। भारत से यहाँ की उनकी एक यात्रा के दौरान मैं शिपोल हवाई अड्डे से उनके साथ हो ली और एम्सटर्डम से रॉटरडम तक की ट्रेन यात्रा में ही सबक शुरू हो गया। थकान या जेट लेग का कोई सवाल नहीं था। इस बार वह पूरे रास्ते राग भैरवी सिखाते रहे।'' दर्शन कुमारी, सितार वादक, शास्त्रीय गायिका और कॉन्सर्ट आयोजक।

''...वह बहुत मितव्ययी हैं। चूँकि वह बहुत मेहनत से ऊपर आए हैं, वह अपने ऊपर पैसे खर्च नहीं करना चाहते। उन्हें एक जर्मन छात्र ने मर्सिडीज बेंज उपहार में देने का प्रस्ताव किया, जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया, क्योंकि हॉलैंड में उसे मेंटेन करना बहुत महँगा था और वर्ष में आठ महीने वह बेकार पड़ी रहती। वह अपनी साइकिल से बहुत खुश हैं। एक महान् शिक्षक भी हैं, इसी वजह से बाँसुरी के विद्यार्थी कंजर्वेटरी के अन्य विद्यार्थियों से बेहतर परिणाम प्राप्त करते हैं।'' गीज़ला, मित्र, बाँसुरी वादक और सितार वादक।

''...एक संगीतमय प्रतिभा। यह हमारे लिए किस्मत की बात थी कि उन्होंने कंजर्वेटरी में पढ़ाने के लिए अपनी सहमति दे दी।'' यूप बोर, सारंगी वादक, संगीत विशेषज्ञ।

''...वह अपना ज्ञान, समय और प्रोत्साहन देने में बहुत उदार हैं। आपके स्तर पर शुरुआत करते हैं और आपको ऊपर की ओर ले जाते हैं। छोटे कदमों से आप उनके अथाह ज्ञान तक पहुँच सकते हैं। कितना और कितनी जल्दी, यह विद्यार्थी की क्षमता पर निर्भर करता है... बहुत चतुर और अनुभवी। वह आपको देखकर बढ़ावा दे सकते हैं। उनका व्यक्तित्व बहुत जटिल है। उनके जीवन के कुछ पहलू खुली किताब हैं, जबकि दूसरे पक्षों को बहुत गोपनीय रखा गया है।'' हेनरी टोरनियर, बाँसुरी वादक, कंजर्वेटरी में हरिप्रसाद के सहयोगी।

''...बहुत प्रोत्साहन देनेवाले। मुझे एक बार स्लिप्ड डिस्क की समस्या थी। उन्होंने मुझे प्रेरित और प्रोत्साहित किया कि मैं अपनी पीड़ा को भूलकर बजाऊँ, बिलकुल उसी तरह जैसे वह अपने बच्चे को प्रोत्साहित करते।'' विजय घाटे, तबला वादक।

''...बहुत धैर्यवान् और प्रोत्साहक। उन्होंने मेरी सारंगी तथा गायन की परीक्षाओं के लिए मेरा मार्गदर्शन किया।'' मरियान स्वासेक—सारंगी वादक, ध्रुपद गायिका और संगीत शिक्षिका।

''...एक खुले दिमागवाला व्यक्ति। बिलकुल जैसे कि हमें जरूरत थी। अगर उदार और संगीत की दूसरी विधाओं में काम करने के इच्छुक किसी महान् उस्ताद का कोई उदाहरण हो सकता है तो वह हरिप्रसाद हैं। दिसंबर 2006 में जब नवीनीकरण के बाद हमने फिर से खोला तो उन्होंने दक्षिण अमेरिकी संगीतकार पाब्लो क्युएको द्वारा लिखी एक बाँसुरी कॉन्सर्ट की। हमने बाकी कंजर्वेटरी को दिखाया कि क्रॉसओवर से हमारा क्या मतलब है। वह अद्भुत था!'' लियो वर्वेल्ड, अकॉर्डियन वादक। विश्व संगीत अकादमी के प्रमुख।

गुरुजी हैं

''...भारतीय शास्त्रीय संगीत के जॉन कोल्ट्रेन। इंप्रूवाइजेशन के उस्ताद। हम जाज संगीतकार भारतीय शास्त्रीय संगीत के अथाह समुद्र को समझे बिना समूहों में बैठकर उनकी सीडियों को सुनते थे। उनकी टाइमिंग, मुहावरे, रचनात्मकता और मौलिकता विलक्षण हैं। जब कोई विद्यार्थी अपना पहला गमक या मींद बजाता है तो उनके चेहरे की खुशी मुझे चकित करती है। किसी को लग सकता है कि उनके जैसा महान् उस्ताद उस प्रकार की चीजों से ऊब जाएगा, लेकिन वह विद्यार्थी जितने ही उत्साहित होते हैं।'' रिचर्ड एक्रे-सुजी; स्टॉकहोम, स्वीडन। जाज पियानिस्ट, पश्चिमी शास्त्रीय संगीतकार और फ्यूजन बैंड मिश्रा के सदस्य।

''...एक अत्यंत प्रिय और उन्मुक्त व्यक्ति। उनका संगीत अत्यंत सुगठित है। हर स्वर वहाँ किसी उद्देश्य से रखा गया है। उसमें कोई बदलाव करना ताजमहल में कुछ बदलने जैसा है, आप ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि वह बस पूर्ण है। उनके वादन में बहुत विविधता है। वह दुहराव के बिना दुहराव जैसा है।'' प्रेमदास सत्संगी, रसायनशास्त्र के प्रोफेसर, पेंसिल्वेनिया स्टेट यूनिवर्सिटी। सन् 1953 से इलाहाबाद के हरिप्रसाद के पुराने मित्र।

''...एक महान् गुरु और उनसे मुलाकात ने मेरा जीवन बदल दिया है। वह आपको आपकी क्षमताएँ दिखाते हैं और बताते हैं कि आप अपनी क्षमताओं को कैसे विस्तृत कर सकते हैं। वह आपको संगीत से कहीं अधिक देते हैं। जब आप उनसे सीखते हैं तो हर तरीके से विकसित होते हैं। एक बार मैंने असावधानी में एक खूबसूरत पीस उड़ा दिया, जिसे उन्होंने मेरे लिए रिकॉर्ड किया था, लेकिन वह न तो उदास हुए, न निराश। उन्होंने बस कहा, 'कभी पीछे मत देखना। कभी अतीत की किसी बात के लिए दु:खी मत होना'।'' ओफ्रा अवनी, इजरायल।

''...हमेशा पहुँच के अंदर, सहयोग और प्रोत्साहन देनेवाले। मैं उनसे ऐसे समय पर मिली, जब मैं संगीत छोड़ रही थी, क्योंकि मैं पाश्चात्य संगीत शिक्षकों द्वारा बार-बार ठेलने से परेशान हो गई थी। उन्होंने मुझे सिल्वर फ्लूट पर अपनी कोई मनपसंद धुन बजाने को कहा और उस वाद्य पर मुझे कंजर्वेटरी प्रवेश परीक्षा देने की भी अनुमति दी, क्योंकि उस समय मेरे पास बाँसुरी नहीं थी। वह आपको संगीत का आनंद उठाने, महसूस करने, उसमें घुसने और उसे अपनी तरह बजाने के लिए प्रेरित करते हैं। वह संगीत को प्रार्थना की तरह लेते हैं। एक दिन एक सामूहिक सबक के समय उन्होंने कहा, हमें यह रोज करना चाहिए, फिर हम रोज प्रार्थना करेंगे और सरस्वती खुश होंगी। वह आपको बताते हैं कि किस पर मेहनत करनी चाहिए। वह आपसे झूठ नहीं कहेंगे, लेकिन उनके कथन में कोई दबाव या आलोचना नहीं होती।'' औरा रास्कन, मेक्सिको, महेंद्र कॉलेज, पुणे से स्नातक, सोफिया, बुल्गारिया में पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत सीखा।

''...विश्वास करनेवाले और उदार। वह अपने सभी विद्यार्थियों को मंच पर अपने साथ बजाने का मौका देते हैं। उन्होंने शिक्षण का एक अत्यंत विशेष तरीका ईजाद किया है, जो पश्चिमी शिक्षकों से काफी अलग है। उसमें अनुकरण, इंप्रूवाइजेशन, स्मरण, अनुशासन, एकाग्रता और गुरु तथा संगीत के लिए सम्मान होता है। तीस से चालीस मिनट तक बजाना और ध्वनि, साँस, तनाव एवं व्याख्या को मिश्रित करना चुनौतीपूर्ण है। सभी संगीत कौशल मँजे जाते हैं।'' जूलिया ओहर्मेन जर्मनी, शास्त्रीय पियानो वादक, बाँसुरी वादक, मंडली की गायिका और

संगीत विद्या की छात्रा।

''...एक विनोदप्रिय और अत्यंत सरल व्यक्ति। वह किसी के साथ भी सहज हो सकते हैं, चाहे वह भिखारी हो या रानी। वह कभी किसी कॉन्सर्ट को रद नहीं करते, चाहे वह बीमार हों। उनकी शिक्षण-शैली बहुत सहज है। वह ज्यादा बात नहीं करते, बस बजाते हैं। वह पश्चिमी शिक्षकों की तरह समय नहीं देखते। मुक्त और खुले रूप से अपना संगीत ज्ञान हमें देते हैं, लेकिन छोटे चरणों में। ज्ञान उनकी ओर से मेरी ओर बहता है और अचानक मैं विस्मित होता हूँ कि मैं यह ध्वनि निकाल सकता हूँ। वह ऐसी अदृश्य चीजें भी सिखाते हैं, जो संगीत के मनोरंजन के परे होता है। मैंने उनसे मिलने के बाद धूम्रपान छोड़ दिया।'' जीन क्रिस्टोफ बोनाफोस, फ्रांस।

❑

एक सितारे का जन्म

इलाहाबाद, भारत, 1 जुलाई, 1938। संगीत के इतिहास के एक अध्याय का जन्म बिलकुल अलग माता-पिता के घर और अलग माहौल में हुआ। हरिप्रसाद श्रीलाल चौरसिया एवं उनकी पत्नी के पुत्र और बन्नो एवं शिवप्रसाद के भाई के रूप में दुनिया में आए। कुछ साल बाद हरिप्रसाद खुद बड़े भाई बन गए, जब चौरसिया दंपती का एक और पुत्र हुआ, गणेशप्रसाद।

जन्मतिथि संदिग्ध है, क्योंकि जैसा कि हरिप्रसाद स्वयं बताते हैं, ''उन दिनों जन्म प्रमाण-पत्र नहीं होते थे और माता-पिता बच्चों की जन्म तिथियों को महत्त्वपूर्ण घटनाओं से जोड़ देते थे। असली जन्मतिथि को गोपनीय रखा जाता था, ताकि बच्चे को बुरी नजर न लगे और माता-पिता स्कूल के रजिस्टर में अपनी मरजी से कोई भी तिथि लिख देते थे।'' जो भी हो, यही तिथि उनके पासपोर्ट और वैधानिक दस्तावेजों पर है, इसलिए अधिक सटीक जानकारी और एक बेहतर तिथि के अभाव में वह इसे अपनी आधिकारिक जन्मतिथि मानते हैं। उनके पिता के पास कहीं उनकी जन्म कुंडली भी रखी हुई थी, लेकिन न तो वह और न ही उनके पिता पंडितों के आडंबरों में अधिक भरोसा करते थे।

उनके दूसरे भाई-बहनों की जन्मतिथि के बारे में भी कोई सटीक जानकारी नहीं है। बन्नो हरिप्रसाद से लगभग छह वर्ष बड़ी हैं और शिवप्रसाद बन्नो से लगभग छह वर्ष बड़े थे। गणेशप्रसाद हरिप्रसाद से लगभग तीन साल छोटे हैं।

उनके पिता एक पहलवान थे, जिनकी प्रतिष्ठा हर दंगल में जीतने के साथ बढ़ती थी और वह आस-पड़ोस में छेदीलाल पहलवान या पहलवान साहब के नाम से मशहूर थे। उनका वास्तविक नाम श्रीलाल चौरसिया शायद ही कभी इस्तेमाल होता था और बहुत से लोगों को इसका पता भी नहीं था। उनकी माँ एक विनम्र, समर्पित और पारंपरिक भारतीय गृहिणी थीं। हर तरीके से वह एक खूबसूरत महिला थीं, जो क्वेटा, बलूचिस्तान के सूखे मेवों के व्यापारी परिवार से आई थीं। उनके माता-पिता और एक भाई की सन् 1935 के भयानक भूकंप में मृत्यु हो गई। उनकी शारीरिक संरचना पठान की थी, हालाँकि वह पठान नहीं थीं और वह हर तरीके से एक पहलवान की पत्नी लगती थीं। किसी को याद नहीं है कि उनका नाम क्या था, लेकिन बन्नो को याद आता है कि उनके भाई उन्हें 'राम दुलारी' या सिर्फ 'दुलारी' कहकर बुलाते थे। बन्नो का भी असली नाम कोई नहीं जानता, बन्नो भी नहीं। उनके पिता और मामा कभी-कभी उन्हें 'लक्ष्मी' कहते और कभी 'देवी'। पारंपरिक रूप से उत्तर भारत में सभी लड़कियों को लक्ष्मी, यानी धन और सौभाग्य की देवी कहा जाता है और 'देवी' सभी महिलाओं के लिए आमतौर पर इस्तेमाल किया जानेवाला शब्द है, तो यह उनका असली नाम हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है, फिर भी इससे हमें चौरसिया परिवार की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का कुछ परिचय मिलता है।

अपने छोटे भाई गणेश प्रसाद तथा बहन बन्नो के साथ।

उनका आदर्श हिंदू परिवार था, जहाँ सबकुछ स्वच्छ और पवित्र होता था। उनकी माँ घर की चक्की में गेहूँ पीसकर आटा बनाती थीं। मलाई और घी भी घर में ही बनाया जाता था। खाना पकाने और कुश्ती से पहले शरीर पर लगाया जाने वाला सरसों का तेल परिवार का कोई सदस्य स्थानीय कोल्हू से निकलवाकर लाता था। पवित्र सफेद कपड़े पहने माता-पिता आमतौर पर मंत्रोच्चारण करते हुए भोजन पकाते थे, ताकि उसकी पवित्रता बरकरार रहे। भोजन पकाने की जगह के दूषित होने के डर से बच्चों का रसोईघर में आना वर्जित था। दिन का पहला भोजन परोसे जाने से पहले नहाना भी अनिवार्य था।

हरिप्रसाद की बहुत शुरुआती स्मृतियों में से एक या शायद जो उनकी बहन की स्मृति हो, जिसे लगातार दुहराने की वजह से उन्होंने भी ग्रहण कर लिया हो, उनके बड़े भाई शिवप्रसाद की मृत्यु थी। कई साल बड़े शिवप्रसाद ने अपना मैट्रिकुलेशन पूरा करने के लिए अभी-अभी अग्रवाल कॉलेज जाना शुरू किया था। कॉलेज के इस छात्र का विवाह किसी शांति देवी से कर दिया गया। लगभग चार महीने बाद कॉलेज में एक लेक्चर सुनते समय उन्हें पेट में भयंकर पीड़ा हुई। उनका दर्द इतना भीषण था कि उनके एक प्रोफेसर रिक्शे पर उन्हें घर लेकर आए। एक डॉक्टर बुलाया गया, लेकिन दवाइयाँ देने के बावजूद उन्हें कोई आराम नहीं मिला। एक-एक करके वहाँ के सभी डॉक्टरों ने उनका उपचार किया। आखिरकार छेदीलाल पहलवान एक प्रसिद्ध पहलवान थे और उस समय मोहल्ले में किसी व्यक्ति की इज्जत उसकी आर्थिक स्थिति से अधिक महत्त्वपूर्ण होती थी। बन्नो को उनमें से दो डॉक्टरों, एक डॉ. दास और एक डॉ. झा की याद है। उस दोपहर दो बजे से शिवप्रसाद पीड़ा में कराहते रहे। उनकी बीमारी का कोई पता नहीं चला और अगली शाम आठ बजे उन्होंने डॉक्टरों की उपस्थिति में अपनी आखिरी साँस ली। वह कार्तिक पूर्णिमा का दिन था। हरिप्रसाद की माँ सदमे में थीं। वह बिना वहाँ से हिले और कुछ भी बोले बस बैठी रहीं। बच्चों ने उनसे बात करने की कोशिश की, उन्होंने उन्हें फल और चावल-दाल खिलाने की कोशिश की, लेकिन वह मूरत बनी बैठी रहीं।

बन्नो कहती हैं, ''आप उस महिला से क्या उम्मीद करते हैं, जो अपने सामने अपने जवान बेटे की लाश देखती है और उस पुत्रवधू के आँसू देखती है, जिसने अभी ठीक से यौवन में भी पैर नहीं रखे हैं और शादी के सिर्फ चार महीने बाद विधवा हो गई है?''

कम-से-कम कहें तो यह दु:खदायक था। हरि के पिता भी उतने ही व्यथित थे। उन्होंने शिवप्रसाद के लिए एक पहलवान के रूप में बहुत अच्छे भविष्य की कल्पना की थी। उनकी असमय मौत ने पहलवान के सबसे बड़े सपने को चूर-चूर कर दिया था। उन्होंने कहा, ''हमारा दाहिना हाथ चला गया।''

नन्हा हरि उस समय सिर्फ पाँच साल का था और उसे अपनी माँ की गोद की गरमाई की याद है, जहाँ वह आराम करता या दूध पीता हुआ लेटता था। उनकी लोरियों के स्वरों में अपने ऊपर बरसाई जाती मातृत्व-ऊर्जा को महसूस करता था। ठीक अट्ठाईस दिन बाद अगली पूर्णिमा के दिन दुर्भाग्य ने फिर से हमला किया और निर्दयता से उनके शांत व सुरक्षित जीवन को तहस-नहस कर दिया। अपनी आयु के तीसरे दशक के मध्य में मौजूद उनकी माँ बिस्तर पर बैठी हुई थीं, जब वह सीधी गिरीं और बिना किसी वजह या चेतावनी के तुरंत मृत्यु को प्राप्त हो गईं।

बच्चों को समझ में नहीं आया कि हुआ क्या। उन्होंने अपने पड़ोसी नवल चाचा को यह देखने के लिए बुलाया कि उनकी माँ को क्या हो गया है? उन्होंने तत्काल हरिप्रसाद को अपने पिता को बुलाने के लिए कहा। छेदीलाल पहलवान को नजदीक के मंदिर से बुलाया गया, जहाँ वह पूजा कर रहे थे। वह बिना एक पल की देरी किए घर भागे, लेकिन देर हो चुकी थी। उनकी पत्नी अब इस दुनिया में नहीं थीं।

आज अपनी मधुमेह की बीमारी को देखते हुए हरिप्रसाद को लगता है कि हो सकता है कि उनकी माँ को मधुमेह रहा हो। इस बीमारी को आनुवंशिक माना जाता है और चूँकि उनके परिवार में उन्हें छोड़कर किसी को यह बीमारी नहीं है, हो सकता है कि उनकी मृत्यु मधुमेह से उत्पन्न किसी वजह से हुई हो। आजादी से पहले के भारत में चिकित्सा-शास्त्र में उतनी विशेषज्ञता या परिष्कृत रोग निदान तकनीकें नहीं थीं।

लेकिन हरिप्रसाद के भाई-बहन मानते हैं कि बेटे को खोने का सदमा उनकी मृत्यु की असली वजह थी। नन्हे हरि के लिए मौत एक बहुत बड़ी और गूढ़ चीज थी, जिसे समझना उनके लिए आसान नहीं था, लेकिन माँ के अभाव ने ऐसा खालीपन ला दिया, जो उनके किशोरावस्था के दिनों में भी हावी रहा।

छेदीलाल ने एक पड़ोसी से हरि को अपने घर ले जाने और कुछ बिस्किट व मिठाई खिलाकर उसे व्यस्त रखने को कहा, ताकि वह दाह-संस्कार की व्यवस्था कर सकें। हरि को याद है कि लोग धीरे-धीरे 'शव' और 'जलाने' जैसी चीजों की चर्चा कर रहे थे, जिससे उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या चल रहा है? वैसे भी वह परिवार पर टूटी विपत्ति से बेखबर पड़ोसी की दी हुई चीजों को खाने में व्यस्त थे। काफी देर बाद, जब उनकी माँ के शव को ले जाया गया और भीड़ छँट गई तो पड़ोसी हरि को वापस घर ले गया। दरवाजा ठेला हुआ था और घर पर कोई नहीं था। हरि अपने घर के बाहर बैठा रोने लगा।

उधर से गुजरते एक पड़ोसी ने पूछा, ''तुम क्यों रो रहे हो?''

''मेरा घर खाली है। सब लोग चले गए हैं और मुझे नहीं पता कि वे कहाँ गए हैं।'' हरि ने सुबकते हुए बताया।

राहगीर ने बताया, ''बेटे, वे जलाने ले जा रहे हैं।''

''लेकिन वे कहाँ जा रहे हैं?'' हरि ने पूछा।

''जानस्टोनगंज होते हुए गंगा नदी के तट तक।'' पड़ोसी ने जवाब दिया।

रात हो रही थी और सिर्फ गंजी व चड्डी पहने नन्हा हरि अपने परिवार को खोजने के लिए निकल पड़ा, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। उसे कहीं कोई नहीं मिला। वह डरा और घबराया सड़क के किनारे खड़ा होकर फिर से रोने लगा। वहाँ से गुजर रही एक महिला ने उसे पहचान लिया और पूछा कि वह क्यों रो रहा है? जब उसने बताया कि वह अपने परिवार को खोजने की कोशिश कर रहा है, तो वह समझ गई और कहा कि ''दारागंज के पास गंगा के तट पर जाओ। वहीं तुम्हें परिवारवाले मिलेंगे।'' वह रिक्शावालों और पैदल चलनेवालों से रास्ता पूछता हुआ अपने नन्हे कदमों से जितनी तेज दौड़ सकता था, उतनी तेज दौड़ता हुआ ढाई मील दूर दारागंज पहुँचा। अँधेरा हो रहा था और दूर से उसे कुछ लालटेनों या पेट्रोमैक्स की धीमी रोशनी में कुछ लोग खड़े दिखाई दिए।

वह रोशनी की ओर दौड़ा; लेकिन थोड़ी दूर दौड़ते ही गीली मिट्टी की एक परत पर उसका पैर पड़ गया और वह उसमें धँसने लगा। वह गीली मिट्टी या गाद गंगा के मैदानों में किसानों के लिए गंगा नदी का वरदान है और उसका संबंध कृषि संबंधी संपन्नता से है, लेकिन गलत स्थितियों में वह बालु दलदल की तरह खतरनाक हो सकता है। हरि ने बाहर निकलने के लिए संघर्ष किया, लेकिन वह जितना हाथ-पैर मारता रहा और भी गहरा धँसता गया। सभी जीवन रूपों में आत्मरक्षा के लिए एक अंतर्निहित तंत्र होता है और उसकी वह प्रणाली अब मजबूत संकेत भेज रही थी। घुटनों तक धँसा हुआ और तेजी से धँसता हुआ वह बाहर निकलने के लिए हाथ-पैर मारता रहा, लेकिन उससे वह और गहरा धँसने लगा। अपने छोटे से जीवन में पहली बार उसने डर महसूस किया, असली डर, जो अनजाना और अनाम था। कुछ घंटे पहले माँ की मौत को वह अब तक महसूस नहीं कर पाया था तो अपनी मृत्यु उसके लिए मायने नहीं रखती थी, लेकिन वह एक जकड़नेवाला डर था, जिससे उन्हें आज पैंसठ साल बाद भी झुरझुरी हो आती है। अँधेरी और वीरान रात में कमर तक कीचड़ में धँसे और आतंकित होकर वह चिल्लाया,

''बचाओ! बचाओ!'' उसकी किस्मत अच्छी थी और उस दलदल में धँसने की बजाय उसके भाग्य में कुछ और था। वहाँ से गुजरते दो मल्लाहों ने उसकी चीखें सुनीं। असहाय, लेकिन चिंतित होकर उन्होंने एक सुरक्षित दूरी पर खड़े होकर उसे निर्देश दिए, जिन्होंने उसका जीवन बचाया।

''लेट जाओ बेटा, खड़े मत रहो।'' उन्होंने उससे कहा।

उन्होंने आगे उसे कीचड़ से बाहर की ओर 'तैरने' को कहा।

इंच-इंच करके हरि अपने पैरों को मुक्त करने में सफल हुआ, तब तक सिर्फ उसके पैर ही डूबे थे।

''अब खड़े होने की कोशिश मत करो, नहीं तो तुम फिर से फँस जाओगे।'' उन्होंने चेतावनी दी।

उनके निर्देशों पर वह पलटता हुआ उनकी ओर जाने लगा और आखिरकार सिर से पैर तक कीचड़ में लिपटा हुआ खड़े होने में सफल हुआ।

''तुम इतनी देर रात यहाँ क्या कर रहे हो?'' उन्होंने पूछा।

''वहाँ जा रहा था।'' हरि ने अपना नन्हा सा हाथ रोशनियों और चल रहे दाह-संस्कार की दिशा में उठाते हुए कहा। लालटेन दूर में जुगनुओं की तरह चमक रही थी और वह आतुरता से अपने पिता के पास पहुँचना चाहता था।

''वह बच्चों के जाने की जगह नहीं है। तुम कहाँ रहते हो?''

''भारती भवन लाइब्रेरी के पास, लेकिन घर पर कोई नहीं है।''

''वह यहाँ से तीन मील दूर है और अब लगभग आधी रात हो चुकी है। मेरे साथ आओ।'' उनमें से एक ने कहा।

उस रात उस दयालु मछुआरे ने हरि को नहलाया, खिलाया और सोने की जगह दी। वह गरमियों की एक रात थी, इसलिए उसके लिए बरामदे में एक चटाई बिछाई गई, लेकिन उसे नींद नहीं आई। वह सोचता रहा कि वे उसकी माँ को कहाँ ले गए हैं उसके साथ क्या कर रहे हैं और अगर मछुआरे समय पर नहीं पहुँचे होते या उससे भी बदतर अगर वे भी उसकी तरह उस दलदल के बारे में अनजान होते तो उसकी किस्मत क्या होती? वह सोच रहा था कि उसके भाई-बहन कहाँ पर हैं। शायद उन्हें भी किसी पड़ोसी के घर पर भेज दिया गया।

दिन निकलने पर हरि अपने घर पहुँचा, जहाँ घबराए हुए पिता उसका इंतजार कर रहे थे। दोनों के पास एक-दूसरे के लिए सवाल थे। छेदीलाल पहलवान यह जानना चाहते थे कि उनका बेटा पूरी रात कहाँ था और नन्हा हरि यह जानना चाहता था कि उसकी माँ कहाँ है? जबकि हरि के लिए रात में अपनी अनुपस्थिति का स्पष्टीकरण देना आसान था, उसकी माँ की अनुपस्थिति ने उस ताकतवर पहलवान को हकलाने के लिए मजबूर कर दिया। उसने समझाया, ''उसकी मौत हो गई है और वह वापस नहीं आएगी।''

हरि के तेज रुदन ने उसे फिर से घबरा दिया, ''ठीक है, ठीक है। हम उसे वापस ले आएँगे। अब जाकर कुछ खा लो।'' भ्रमित और उदास हरि ने वही किया, जो उसे कहा गया। उसे लगा कि कुछ गड़बड़ है। उसकी माँ के साथ कुछ भयानक हुआ है। वह नहीं समझता था कि मरना क्या है और लंबे समय बाद उसे समझ में आया कि माँ अब कभी वापस नहीं आएगी।

उनका हँसता-खेलता सुखी परिवार अचानक अँधेरे में डूब गया। हरिप्रसाद के पिता टूट चुके थे। तीनों भाई-बहनों में बड़ी बन्नो को इसका अहसास था। उसके लिए महान् पहलवान को अपनी भावनाओं के साथ जूझते और मशीन की तरह दैनिक कार्य निपटाते देखना बहुत पीड़ादायक था। खुशी उनके जीवन से गायब हो चुकी थी।

शिवप्रसाद की किशोरी विधवा शांति देवी पर अब अपने दो नन्हे देवरों हरिप्रसाद और गणेशप्रसाद को बड़ा करने का भार था, जब तक कि वे अपनी देखभाल करने के लायक न हो जाएँ। उसका भविष्य यही था, लेकिन मानवता,

अपनी पुत्रवधू के लिए पिता-तुल्य प्रेम के तहत सामाजिक नियमों को बहादुरी से ठेंगा दिखाते हुए छेदीलाल पहलवान ने उसका मेरठ के एक लड़के से पुनर्विवाह कर दिया। उन्हें लगा कि सिर्फ अपने बेटों की तात्कालिक जरूरतों को पूरा करने के लिए उसके जीवन को स्थायी रूप से नष्ट कर देना स्वार्थपूर्ण होगा। परंपरा के अनुसार, लड़की के जीवन में कन्यादान एक ही बार किया जाता है, इसलिए इस बार विवाह एक सरल समारोह में हुआ, जिसमें चौरसिया खानदान और लड़की के अपने माता-पिता शामिल हुए। उस काल, स्थान और सामाजिक पृष्ठभूमि को देखते हुए वह करुणा का एक अतुलनीय कृत्य था, जो अपने समय से काफी आगे था। इस कार्य को और अधिक असाधारण इस बात ने बनाया कि आमतौर पर श्रीलाल एक सख्त व्यक्ति थे, जो अपने बेटों को कुछ अनुचित करते पाने पर उन्हें पीटने में भी नहीं हिचकते। जिन लोगों ने अखाड़े में उनसे दो-दो हाथ किए थे, वे जानते थे कि वह एक हठी प्रतिद्वंद्वी हैं।

श्रीलाल चौरसिया उर्फ छेदीलाल पहलवान या सिर्फ पहलवान साहब सबसे पहले एक पहलवान थे। वह व्यापारियों के परिवार से आते थे, लेकिन उन्होंने परिवार के व्यवसाय को अपनाने की बजाय पहलवानी करना पसंद किया। ऐसा लगता है कि हरिप्रसाद ने यह विद्रोही तेवर अपने पिता से सीखे और अपने उनके प्रभुत्व के तहत सशक्त विरोध के बावजूद या शायद उसी की वजह से, पहलवान की बजाय संगीतकार बनना पसंद किया।

छेदीलाल पहलवान की पहलवानी क्षमता न सिर्फ इलाहाबाद में, बल्कि पूरे उत्तर प्रदेश में भी प्रसिद्ध थी। वह उत्तर भारत का लोकप्रिय खेल था और उनकी व्यायामशाला में प्रसिद्ध राजनेता, स्वतंत्रता सेनानी और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के संस्थापक पं. मदन मोहन मालवीय भी आते थे। पहलवान अत्यंत अनुशासित जीवन जीते थे, पौ फटते ही उठकर भजन गाते थे। सुबह पाँच बजे वह बादाम पीसते थे। इस प्रक्रिया में इतना शोर होता था, जो पूरे परिवार को उठाने के लिए पर्याप्त था। इसके बाद वह मंदिर जाते थे और वापस लौटते हुए घर का जरूरी सामान लेते आते थे। आमतौर पर बच्चों के लिए नाश्ता वह खुद तैयार करते थे, जिसके बाद व्यायामशाला जाते थे। वह दोपहर दो बजे तक भोजन और गायों का दूध निकालने के लिए घर आते थे। सामान्यत: अपने आप में मगन रहते थे और अपने भाई-बहनों से उनका शायद ही कोई संपर्क था। हरिप्रसाद को याद नहीं आता कि वह कभी अपने दादा-दादी से मिले हों। उन्हें अपने पिता के बड़े भाई, जो एक व्यवसायी थे, से कभी-कभार उनसे मिलना होता था और पिता के छोटे भाई मेवालाल चौरसिया की याद है, जो भगवान् शिव के भक्त थे और अपना सारा समय मंदिर में पूजा-ध्यान करते, भजन गाते, मूर्तियों को धोते-नहलाते एवं भगवान् को भोग लगाते बिताते थे। वह बिना नमक का भोजन करते थे, इसलिए उनके बारे में ऐसी अफवाहें फैल गई थीं कि वह जहरीले हो गए थे और उनके काटने से कोई आदमी मर भी सकता है। खुशकिस्मती से (उनके लिए या पड़ोसियों के लिए, पता नहीं) मेवालाल काटनेवाली प्रवृत्ति के नहीं थे, इसलिए वह अफवाह कभी सच साबित नहीं हो पाई।

शिवप्रसाद एक महान् पहलवान बनने की ओर अग्रसर थे, इसलिए उनकी मौत छेदीलाल पहलवान के लिए एक आघात की तरह आई, क्योंकि वह न केवल सिर्फ एक बेटा, बल्कि अपनी पहलवानी की कुरसी के उत्तराधिकारी को भी खो बैठे थे। स्वाभाविक रूप से उनका ध्यान अब हरिप्रसाद पर केंद्रित हो गया, जो पंक्ति में अगले नंबर पर थे। उन्हें पहलवान बनाना अब पहलवान के जीवन का ध्येय हो गया। हरिप्रसाद को पहलवानी पसंद नहीं थी। वह उनकी कोमल संवेदनाओं पर एक आघात था। किसी दूसरे व्यक्ति पर हावी होने के इरादे से उस पर झपटना, उसे जमीन पर गिराना और फिर गिरे हुए शिकार पर एक शेर की तरह खड़े होना उनके लिए एक बर्बर कार्य था। दंगल में जीत का विचार उन्हें और बुरा लगता था, क्योंकि उसका मतलब था कि चीखती उन्मादी भीड़ द्वारा जिंदाबाद कहते हुए ढोया जाना, लेकिन मैदान छोड़कर भागने का तो सवाल ही नहीं उठता था। वह जानते थे कि अगर

उन्होंने कभी अपने मत व्यक्त किए तो उनके पिता का कोप और पिटाई कैसी होगी, तो कुछ दिनों तक उन्होंने यह बात अपने मन में ही रखी, हालाँकि उनका दिल कभी पहलवानी में नहीं लगा।

उन्हें सिर्फ पहलवानी के साथ होनेवाले बॉडी बिल्डिंग और अन्य कार्यकलापों में आनंद आता था। वह हर सुबह साढ़े पाँच बजे उठते और नहा-धोकर लगभग एक घंटे बाद अखाड़ा पहुँच जाते। वह अपने शरीर पर सरसों के तेल की मालिश करते और फिर उन्हें एक फावड़ा दिया जाता, जिससे कुश्ती के अखाड़े पर मिट्टी को ढीला करते। रात भर गिरी ओस ढीली जमीन को जमाकर सख्त कर देती, इसलिए उस पर कुश्ती लड़ने के लिए उसे पर्याप्त नरम बनाना जरूरी था? वह एक अच्छा व्यायाम और वार्मअप का बढ़िया तरीका था। इसके बाद पहलवान एक-दूसरे की मालिश करते और कुश्ती लड़ते। उनके तेल चुपड़े, पसीने से तर-बतर शरीर पर ढीली मिट्टी लग जाती, जिससे वे गीली मिट्टी में लिपटे मवेशियों के समूह की तरह लगते। इस स्थिति में घर नहीं जा सकते थे। अपने पिता के सख्त निर्देशों पर हरिप्रसाद सिर्फ अपने लँगोट में यमुना नदी में जाते और जितनी दूर तक तैर सकते, तैरते। लंबी दूरी तक तैरना होता, ताकि नदी की धार शरीर से तेल, पसीने और मिट्टी को साफ कर दे। उनके युवा शरीर में इस व्यायाम से चुस्ती आ जाती थी, जिससे उनका शरीर गठीला और सुंदर हो गया। बाद में वह आराम से पूरे रास्ते नदी में तैरते जाते। कुछ दिनों बाद तैरना उनकी आदत हो गई, क्योंकि दूसरी ओर खीरे और तरबूज के खेत थे। हरिप्रसाद और अखाड़े के उनके साथी तैरकर नदी के पार जाते, घंटे से अधिक समय किनारे पर धूप सेंकते फल खाते हुए बिताते और तैरकर वापस घर जाते। उन तरबूजों या खीरों में कोई खास बात नहीं थी, लेकिन जो भी हो, सभी चोरी के फलों की तरह वे अधिक मीठे लगते थे। छेदीलाल अपने बेटे की ताकत से बहुत खुश थे। यहाँ तक कि पड़ोसी भी तारीफ की नजर से देखते थे और मानते थे कि छेदीलाल की विरासत सक्षम हाथों में है। किसी को इस बात का पता नहीं था कि स्थितियाँ कितनी जल्दी बदल जाएँगी।

सिर्फ चार सप्ताह के भीतर शिवप्रसाद और उनकी माँ की मौतों ने बाकी तीनों बहन-भाइयों को एक-दूसरे के करीब ला दिया। अब बन्नो दीदी स्वाभाविक माँ थी और वह खाना पकाने का अधिकांश काम और दूसरे घरेलू काम करती थी, जबकि हरिप्रसाद बाजार से सामान लाने या भोजन के बाद बरतनों की सफाई में मदद करने का काम करते थे। उनके पिता अकसर भोजन पकाने में मदद करते थे। एक पहलवान होने के कारण वह हर चीज में घी डालना पसंद करते थे। वह शुद्ध घी में खाना पकाते थे, पानी की बजाय घी से आटा गूँधते थे और बच्चों के दूध में काफी मात्रा में घी डालते थे। हरिप्रसाद को अपने कपड़े भी धोने पड़ते थे। उनके पास बस दो जोड़ी आधी बाजू के कुरते और निकर थे, इसलिए रोज कपड़े धोना अनिवार्य था।

अपने बचपन से हरिप्रसाद में पीड़ा सहने की बहुत क्षमता थी। एक बार दीवाली पर वह अपने मित्रों के साथ पटाखा जला रहे थे, तब एक 'चॉकलेट बम' उनके चेहरे पर फट गया। उनकी त्वचा बुरी तरह जल गई और जलने के साथ पटाखे में मौजूद रसायनों से उनका चेहरा सफेद हो गया, लेकिन उनके मुँह से एक चीख नहीं निकली। वह अपने पिता से पिटाई के डर से किसी को भी यह बात नहीं बता पाए। वह चुपचाप पीड़ा सहते रहे और पड़ोस की दवाई की दुकान से मरहम की एक ट्यूब लाकर अपने चेहरे पर लगा लिया। रात के भोजन के समय उनके पिता ने उस मरहम के बारे में पूछा, तब उन्होंने अपने परिवार को उस घटना के बारे में बताया। पहलवान साहब ने गुस्से की बजाय प्रशंसा से उसकी ओर देखा, अगर उनका बेटा बिना शिकायत के इतना दर्द सह सकता है तो, वह एक सच्चा पहलवान है।

बच्चों में आपस में जो सौहार्द और नजदीकी थी, वह लंबे समय तक नहीं रही। बन्नो उस समय चौदह साल की थी, जब उसकी शादी तय की गई। पीड़ा सहने की हरिप्रसाद की क्षमता दु:ख सहने में नहीं थी, यह तब स्पष्ट हुआ

जब उन्होंने यह खबर सुनी। चौरसिया जाति में अपने ही कुल में शादी करने की परंपरा है और बन्नो के लिए जो लड़का चुना गया था, उसका नाम था जगदीश नारायण चौरसिया। माँ के अभाव और पिता के सख्त अनुशासन के साथ सिर्फ बन्नो ही थी, जिससे हरिप्रसाद प्यार और दिलासे की उम्मीद कर सकते थे। उसे खोने का विचार उनके युवा हृदय के लिए असहनीय था। उनके पिता ने हरिप्रसाद को शांत करने का प्रयास किया, ''वह इलाहाबाद में ही रहेगी। तुम्हें जब भी उसकी याद आए, तुम जाकर उससे मिल सकते हो।'' लेकिन नन्हा हरि रोता ही रहा। अपने आपको अभिव्यक्त किए बगैर बरसों की माँ की कमी ने हरिप्रसाद के अंदर भावनाओं का तूफान भर दिया था। अब भावनाओं का बाँध टूट गया था और वह सारा गुबार निकलने तक रुक नहीं सकता था। बन्नो के लिए विवाह फीका उत्सव था। अपनी माँ के बिना अगर वह नाखुश नहीं तो एक उदासीन दुलहन थी।

बालक के रूप में हरिप्रसाद अपने स्कूल से प्यार करते थे। उन्हें वहाँ दिया जानेवाला दोपहर का भोजन खासकर पसंद था, ऑस्ट्रेलियाई पाउडर दूध, मठरी, चना और लस्सी। वह इलाहाबाद म्यूनिसिपल स्कूल में पढ़ते थे और वहाँ का प्रशासन यह सब नि:शुल्क देता था। ''वह सतयुग था और यह कलियुग है।'' हरिप्रसाद दु:खी होकर कहते हैं, ''ऐसे संपूर्ण पोषण आहार के बदले अब वेफर्स और शीतल पेयों जैसा रसायनोंवाला जंक फूड दिया जाता है, जिसका खर्च विद्यार्थियों को देना पड़ता है। वे छोटी-छोटी खुशियाँ अब चली गई हैं।'' उन्हें शिक्षकों का विद्यार्थियों के लिए प्यार और शिक्षण के पेशे के प्रति उनका समर्पण भी याद आता है। बदले में विद्यार्थियों में अपने शिक्षकों के लिए बहुत श्रद्धा और भक्ति होती थी। शिक्षक की एक सख्त नजर या भृकुटि ही बच्चे को कँपा देने के लिए काफी थी।

हरिप्रसाद कोई बहुत विलक्षण छात्र नहीं थे, फिर भी जब वह स्कूल में ही थे, तभी से बच्चों को पढ़ाकर कुछ पैसा कमा लेते थे, जिसका श्रेय भल्ला परिवार को जाता है। विशंभरनाथ भल्ला पारिवारिक मित्र थे, जिनकी पत्नी हरिप्रसाद से बहुत प्यार करती थीं। वह बहुत उदार थीं और हरिप्रसाद को अपने बेटे की तरह मानती थीं। जब भी वह कुछ अच्छा बनाती थीं तो हरिप्रसाद से खाने का आग्रह करती थीं। अगर उन्हें हरिप्रसाद की शर्ट अधिक गंदी लगती थी तो वह अपने बेटे की शर्ट उधार देती थीं और उनकी शर्ट धुलवा देती थीं। जब हरिप्रसाद कक्षा आठ में थे तो श्रीमती भल्ला को लगा कि हरिप्रसाद को कुछ पॉकेट मनी की जरूरत है, लेकिन वह उसे इस तरीके से पैसे देना चाहती थीं कि वह दया न लगे। उनके तीन बेटे कैलाशनाथ, शिवनाथ और विश्वनाथ और एक बेटी थी प्रभा, जिसे परिवारवाले 'बिब्बो' कहकर बुलाते थे। हरिप्रसाद को पाँच रुपए माहवार पर बिब्बो को पढ़ाने का काम दिया गया, जो उनसे दो साल छोटी थी। बिब्बो उनके द्वारा पढ़ाया जाना नहीं चाहती थी और कभी उन्हें शिक्षक की तरह नहीं देखती थी, लेकिन उसके पास कोई चारा नहीं था, क्योंकि उसकी माँ ने उसे इस काम के लिए चुना था। जल्दी ही उनकी ट्यूशन पढ़ाने की क्षमता की ख्याति मित्रों के बीच फैल गई और हरिप्रसाद के पास तीन या चार और प्राइवेट ट्यूशन के काम आ गए। '50 के दशक के शुरुआत में यह एक बच्चे के लिए बहुत बड़ी राशि थी और उनके पिता को हैरत होती थी कि हरिप्रसाद उनसे कभी पैसे क्यों नहीं माँगते?

जब उन्हें वजह का पता चला तो उनके गर्व की कोई सीमा नहीं थी। वह खुशी से मुसकराने लगे और कहा, ''अच्छा है कि तुम कमाने लगे हो। तुम्हें पैसे की कीमत पता चलेगी।'' उन्हें दोहरी खुशी थी, क्योंकि ट्यूशन पढ़ाने का यह भी अर्थ था कि उनकी अपनी पढ़ाई अच्छी चल रही है। हरिप्रसाद ने 35 प्रतिशत के औसत अंकों से अपना मैट्रिकुलेशन पास किया, जो उत्तीर्ण होने के लिए न्यूनतम अंक थे। आज जब 90 प्रतिशत से नीचे के अंकवाले विद्यार्थी को भी किसी अच्छे कॉलेज में दाखिला नहीं मिलता, उस हिसाब से यह दयनीय ग्रेड होता, लेकिन '50 के दशक में पास होना ही खुशी मनाने का पर्याप्त कारण था। उनके पिता की खुशी की कोई सीमा नहीं थी और

हनुमान मंदिर में लड्डू चढ़ाए गए तथा पड़ोसियों में बाँटे गए। पूरा पड़ोस उत्साहित था कि उनके बीच का लड़का हाई स्कूल पास कर गया है।

अपने पिता की खुशी को देखते हुए हरिप्रसाद ने नौकरी पाकर उन्हें और अधिक प्रसन्न करना चाहा। वह एक जरूरत भी थी, क्योंकि घर की आर्थिक हालत बहुत अच्छी नहीं थी। पहलवान साहब एक प्रतिष्ठित पहलवान थे, लेकिन कुश्ती बहुत अच्छे पैसे दिलानेवाला व्यवसाय नहीं था। नौकरी पाने के लिए मैट्रिकुलेशन की पढ़ाई पर्याप्त नहीं थी, इसलिए कुछ अतिरिक्त कौशल जरूरी था। क्लर्क के किसी भी पद के लिए जरूरी चीज टाइपिंग थी, लेकिन न तो हरिप्रसाद और न ही उनके पिता टाइपिंग सीखने का खर्च उठा सकते थे।

उनकी खुशकिस्मती से हरिप्रसाद के एक सहपाठी के पिता रामचंद्र जायसवाल एक राजनेता थे, जो प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के लिए काम करते थे। उनके पार्टी ऑफिस में एक टाइपराइटर था और उन्होंने हरिप्रसाद के लिए अपने सहायक से टाइपिंग सीखने की व्यवस्था कर दी। साथ ही इलाहाबाद के अब प्रख्यात नेता कल्याण चंद मोहीले उर्फ छुन्नन गुरु ने भी बहुत मदद की। वह श्रीलाल के मित्र थे और इलाहाबाद की राजनीति में एक महत्त्वपूर्ण शख्सियत थे, जिन्होंने सन् 1957 और 1962 में इलाहाबाद शहर दक्षिणी चुनाव क्षेत्र से उत्तर प्रदेश विधानसभा के आम चुनावों में जीत हासिल की। आज लोकनाथ गली के प्रवेश-द्वार पर उनकी मूर्ति लगी है।

अगले दो वर्षों तक हरिप्रसाद ने मेहनत से पी.एस.पी. के ऑफिस में काम किया, जिसमें उन्होंने पत्र, ज्ञापन, बैठकों के कार्यवृत्त और प्रेस रिलीज टाइप किए, जिससे उनकी टाइपिंग गति लगभग पैंतालीस शब्द प्रति मिनट हो गई। निश्चित रूप से उन्हें बिना किसी वेतन के काम करना था, क्योंकि वह वहाँ के कर्मचारी नहीं थे और मूल रूप से वहाँ टाइपिंग सीखने आए थे। हालाँकि हरिप्रसाद ने इंटरमीडिएट कोर्स करने के लिए अग्रवाल कॉलेज में दाखिला ले लिया था, लेकिन वह कॉलेज के बाद पी.एस.पी. के ऑफिस जाते और अकसर रात को ग्यारह बजे तक काम करते।

यह देखते हुए कि अब हरिप्रसाद एक अच्छे टाइपिस्ट बन चुके हैं और हमेशा के लिए मुफ्त में काम नहीं कर सकते, रामचंद्र जायसवाल ने सुझाव दिया कि वह इलाहाबाद मिलिंग कंपनी में टाइपिस्ट के पद के लिए आवेदन करें। वह उनके एक मित्र माधो प्रसाद कनोडिया का था। इलाहाबाद के लूकरगंज इलाके में स्थित वह एक विशाल आटा मिल थी, जिसके उत्पाद देश भर में बिकते थे, बल्कि मध्य-पूर्व में उनका निर्यात भी होता था। उस ऑफिस में लगभग 30 लोगों का स्टाफ था और मिल में लगभग 300 कर्मचारी थे। उसका मालिक एक युवा उत्साही टाइपिस्ट पाकर खुश था, जो इंटरमीडिएट का विद्यार्थी, एक ख्यात कुश्तीबाज का बेटा और खुद भी एक उभरता कुश्तीबाज था। इससे भी मदद मिली कि हरिप्रसाद थोड़ा-बहुत उर्दू और 'महाजनी' जानते थे। महाजनी पहले की एकाउंटिंग की भाषा थी, जिसके बदले अब कैलकुलेटर और कंप्यूटर आ चुके हैं, लेकिन उस समय वह छोटे, पारिवारिक व्यवसायों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण था। फर्म के एकाउंट बही खाता नामक एक लाल लेखा पुस्तिका में रखे जाते थे, जिसमें एकाउंटेंट गहरी काली स्याही में डुबोए गए एक तीखी नोंकवाले सरकंडे से लिखता था।

हरिप्रसाद को पचासी रुपए के बढ़िया शुरुआती वेतन पर टाइपिस्ट का काम सौंपा गया। यह खबर सुनकर पहलवान की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उनके पास इसके कारण मौजूद थे। ऐसे देश में, जहाँ बड़ी संख्या में शिक्षित युवा बेरोजगार थे, उनके बेटे के पास नौकरी थी, जिसकी कॉलेज शिक्षा तक पूरी नहीं हुई थी। उन्होंने कहा, ''वाह बेटा, वाह! तुम हमारा नाम रोशन करोगे।''

हरिप्रसाद निश्चित रूप से अपने पिता की इस भविष्यवाणी को पूरा करने वाले थे, लेकिन उस रूप में नहीं, जिसमें उनके पिता ने कल्पना की थी। नौकरी के साथ उन्हें वह रियायत मिली, जो उनके पिता उन्हें दे सकते थे,

कुश्तीबाजी नहीं, पहलवान को लगा कि उनके बेटे की दिनचर्या कुश्ती के लिए बहुत थकाऊ थी। मिल पर वेतनयुक्त नौकरी, पार्टी ऑफिस में अवैतनिक नौकरी और स्नातक डिग्री के लिए पढ़ाई के बीच कुश्ती के लिए समय नहीं था।

इलाहाबाद मिलिंग कंपनी में उनका काम बहुत अच्छा था। वह हाफ पैंट, बुशर्ट और चप्पलें पहने एक कमउम्र लड़का था, जो विनम्र, आज्ञाकारी और कोई भी काम करने के लिए तत्पर था। 'टाइप बाबू' या 'मि. टाइपिस्ट', जैसा कि उन्हें कहा जाता था, ने मिल में हर किसी का दिल जीत लिया था। उनके मालिक माधो प्रसाद कनोडिया खास तौर पर उन्हें पसंद करते थे और जब उन्हें पता चला कि हरिप्रसाद बिन माँ के बच्चे हैं तो उनका दिल हरि के लिए और भी पसीज गया। उनका बँगला मिल के बगल में था और उन्होंने हरिप्रसाद से कहा कि वह उनके परिवार के साथ दिन का भोजन किया करें। एक दिन उस परिवार के रसोइया या महाराज ने उनके पास आकर बताया कि 'सेठजी' ने कहा है कि हरिप्रसाद जब भी चाहें, भोजन के लिए रसोईघर में जा सकते हैं। युवा हरि कुछ संकोच में था, इसलिए पहले तीन-चार दिनों तक वह यह कहकर नहीं गया कि भोजन कर चुका है। एक दिन जब उसे पता चला कि माधो प्रसादजी शहर से बाहर गए हैं तो वह महाराज के पास गया और उनसे भोजन माँगा। बिलकुल उनके पिता की तरह शुद्ध घी में पकाया गया भोजन बहुत स्वादिष्ट था। मालिक की पत्नी कई बार रसोईघर के पास से गुजरीं और सबकुछ सुना व देखा, लेकिन हरि को संकोच न हो, इसलिए अंदर नहीं गईं। समय के साथ उन्होंने मालिक एवं उनके बच्चों के साथ भोजन करना शुरू कर दिया और न केवल मारवाड़ी व्यंजनों का, बल्कि उनके अतिशय स्नेह व प्यार का भी आनंद उठाया। उन्हें परिवार का सदस्य माना जाता था और माँ की मौत के बाद पहली बार उन्हें जुड़ाव की भावना का अनुभव हुआ।

हरिप्रसाद की मेज माधो प्रसाद के ठीक बगल में थी, ताकि मालिक आसानी से हरिप्रसाद को वह डिक्टेट करा सकें, जो टाइप कराना चाहते हैं। कभी-कभी दोपहर में हलवा-पूड़ी के भारी भोजन के बाद हरिप्रसाद को नींद आने लगती और वह टाइपराइटर पर सिर रखकर झपकी ले लेते। मालिक मुसकराते हुए इसे अनदेखा कर देते। बाद में सभी कर्मचारी भी इस बारे में हँसते या मजाक नहीं उड़ाते थे। कुछ देर बाद हरिप्रसाद झेंपा हुआ सा महसूस करते हुए जगते, लेकिन कोई एक शब्द नहीं कहता। दिन में स्वादिष्ट भोजन से पेट भरने के बाद हरिप्रसाद शाम को घर जाते और रात के भोजन के समय उन्हें भूख नहीं होती, जिससे उनके पिता को उनके स्वास्थ्य के बारे में चिंता होने लगी। वह एक आम पारंपरिक, चिंता करने वाले भारतीय पिता थे। हरिप्रसाद भी अपने आप में एक आम पारंपरिक भारतीय पुत्र थे। वह अपने वेतन से दस रुपए रखकर बाकी अपने पिता को दे देते। दस रुपए उन दिनों किसी किशोर के लिए बड़ी रकम थी और हरिप्रसाद के मामले में वह काफी था, क्योंकि उनकी आय के दूसरे स्रोत भी थे, जिन पर हम बाद में आएँगे और उनके दूसरे खर्च नहीं थे, जैसे सिनेमा और कपड़े। उनके परिवहन पर भी कोई खर्च नहीं था, क्योंकि काम पर जाने-आने के लिए उनके पास साइकिल थी।

हरिप्रसाद के स्वर्गीय भाई शिवप्रसाद के एक कुश्ती के मित्र लालजी साहू थे, जिनकी बाद में हरिप्रसाद से अच्छी दोस्ती हो गई थी। वह अतिरिक्त जिला योजना कार्यालय या ए.डी.पी.ओ. में काम करते थे। उन्होंने सुझाव दिया कि हरिप्रसाद शॉर्टहैंड सीख लें और अठारह वर्ष के होने पर वहाँ नौकरी के लिए आवेदन करें। सन् 1990 के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण से पहले लगभग हर भारतीय सरकारी नौकरी पाना चाहता था और हरिप्रसाद भी कोई अपवाद नहीं थे। समर्पित व मेहनती होने के कारण और चूँकि उन्होंने कुछ पैसों की बचत कर ली थी, उन्होंने स्टेनोग्राफी के कोर्स में दाखिला ले लिया और छह महीने के अंदर उन्होंने अस्सी से नब्बे शब्द प्रति मिनट की स्पीड हासिल कर ली। जैसे ही हरिप्रसाद अठारह वर्ष के हुए, उन्होंने उस नौकरी के लिए आवेदन किया और

पा लिया। इसका श्रेय कुछ लालजी साहू की उपस्थिति को जाता है, लेकिन काफी कुछ इसको कि वह एक दक्ष स्टेनोग्राफर थे और स्पष्ट रूप से इस कार्य के लिए योग्य थे। उनके पिता के लिए यह सदी की सबसे बड़ी खबर थी। उनका बेटा अब एक सरकारी कर्मचारी था और वह भी 100 रुपए के वेतन के साथ। माधो प्रसाद कनोडिया हरिप्रसाद के लिए खुश थे, लेकिन एक अच्छा कर्मचारी और ऐसा व्यक्ति जिसे वह परिवार का सदस्य समझते थे, के खोने पर उदास थे। उन्होंने नई नौकरी के बराबर उनका वेतन करने का भी प्रस्ताव दिया, लेकिन वापसी का कोई सवाल नहीं था, क्योंकि हरिप्रसाद ने पहले ही अपने नए नियोजकों को स्वीकृति दे दी थी। भारी हृदय के साथ मिल के सभी कर्मचारियों ने उन्हें शुभकामनाएँ दीं और विदाई दी।

हरिप्रसाद की संगीत सीखने की अत्यंत ज्वलंत इच्छा को पिता की संगीत के प्रति अस्वीकृति ने और भी बढ़ाया। वह सही समय पर सही स्थान पर थे और उनमें हर अवसर का लाभ उठाने और उसे अपने पक्ष में करने का साहस था। आज दुनिया के हर किसी व्यक्ति की तरह बन्नो मानती हैं कि उनका भाई संगीतकार बनने के लिए ही पैदा हुआ था, ''जैसे हरि माँ के पेट से सीख के निकला हो।'' उन्हें सबसे अधिक अफसोस उस प्रकार की प्रतिभा के साथ पैदा न होना है। हरिप्रसाद भी अपनी संगीत क्षमताओं का श्रेय अपनी माँ को देते हैं, लेकिन कुछ अलग तरह से। वह मानते हैं कि माँ उनकी पहली गुरु थी, ''जब मैं बच्चा था तो वह सबसे खूबसूरत लोरियाँ मेरे लिए गाती थीं। वह चाहती थीं कि मैं संगीत की दुनिया में जाऊँ, इसलिए उन्होंने वे धुनें मेरे कान में छोड़ दीं।'' यह है उनका तर्क, ''संगीतकार बनना कभी कोई विकल्प नहीं था। मुझे कभी वैसा माहौल नहीं मिला था,'' वह कहते हैं, ''और चौरसिया परिवार के किसी सदस्य के लिए संगीत में कैरियर बनाना कल्पनातीत था।''

हरिप्रसाद के पिता वैसे संगीत से नफरत नहीं करते थे, क्योंकि वह स्वयं भजन गाते थे, उन्हें बस कैरियर के रूप में यह पसंद नहीं था। वह इसमें अकेले नहीं थे। उन दिनों शास्त्रीय संगीत को राजा-महाराजाओं, जमींदारों और नवाबों के संरक्षण की जरूरत पड़ती थी। देश की आजादी के साथ राजा-महाराजाओं का समय खत्म हो रहा था। अब तक नियमित संगीत सम्मेलनों का युग शुरू नहीं हुआ था और रेडियो स्टेशन के लिए बजाने पर इतनी आय नहीं होती थी कि जीविका चल सके। स्थापित शास्त्रीय संगीतकारों के लिए अपनी जीविका चलाना कठिन हो रहा था, इसलिए किसी युवा के लिए संगीत में कैरियर बनाना वास्तव में एक खराब विकल्प था।

कैरियर के रूप में संगीत पर दूसरी और शायद अधिक सशक्त आपत्ति इस तथ्य से आती थी कि संगीत, खासकर शास्त्रीय गायन, कोठों पर फलता-फूलता था। जापान की गीशाओं की तरह कुछ तवायफें अत्यंत प्रशिक्षित नर्तकियाँ और गायिकाएँ थीं, जो ठुमरी तथा गजल जैसी अद्‌र्ध-शास्त्रीय विधाओं में दक्ष थीं। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि काफी कुछ महान् संगीत कोठों से बाहर आया है। यौन संबंधों से पहले नृत्य-संगीत की परंपरा अन्य संस्कृतियों में भी रही है। ये गीत श्रृंगार रस में सराबोर होते थे, जो नौ रसों में सबसे उत्तेजक या रूमानी है। ये नौ रस मानवीय भावनाओं को पूरी तरह से अपने में समेट लेते हैं। इन गीतों के विषय प्रेम, कामना, चाह, विरह और हृदय टूटने से संबंधित होते थे। बीसवीं सदी के किसी रूढ़िवादी भारतीय के लिए इतनी कलुषित चीज को स्वीकार करना असंभव था। प्रतिष्ठित घरों के सभ्य लोगों के लिए कोठों पर जाना बुरी बात थी और वे सिर्फ अमीर ऐय्याशों के लिए होते थे, जो ऐसा महँगा मनोरंजन कर सकते थे। एक व्यवसाय के रूप में संगीत को नीची नजर से देखा जाता था। हालाँकि बदलाव की बयार बहनी शुरू हो गई थी, लेकिन अभी बहुत कुछ नहीं बदला था।

हरिप्रसाद का संगीत प्रशिक्षण बहुत कम आयु से, उनकी माँ की मृत्यु के तुरंत बाद, शुरू हो गया था। एक दिन वह नजदीकी मंदिर में गए और वहाँ गाए जा रहे कीर्तन से मुग्ध होकर वहीं बैठ गए। किसी दूसरे मासूम बच्चे की तरह उन्होंने भी साथ में गाना शुरू कर दिया, धीरे-धीरे, दबे स्वर में, लेकिन आत्मविश्वास के साथ। उन्हें एक

प्रकार की शांति महसूस हुई। वह उसे आनंद का नाम देते हैं। वे लोकप्रिय भजन थे, जो उन्होंने पहले सुन रखे थे और अपने पिता की अस्वीकृति के कारण पहले कभी न गाने के बावजूद वह आश्चर्यजनक रूप से सुर में थे, ''यह ईश्वर की और मेरी माँ की इच्छा थी कि मुझे संगीतकार बनना चाहिए।'' हरिप्रसाद कहते हैं, ''वरना एक बच्चा अपने पहले प्रयास में इतने सुर में कैसे गाता?'' उन्हें एक सेकंड के लिए भी ऐसा नहीं लगा कि अगर उनके पिता को पता चल गया तो उनकी पिटाई हो जाएगी। वह बस उस पल की खूबसूरती में खो गए। उनकी खुशी पूरी हो गई, जब कीर्तन समाप्त हुआ और पुजारी ने उन्हें उदारता से प्रसाद दिया। उसके बाद वह अकसर मंदिर जाते, कुछ संगीत के लिए और कुछ प्रसाद के लिए; लेकिन हमेशा सँभलकर, ताकि उनके पिता को उनकी इस नई गतिविधि की भनक न लगे। समय के साथ उनका संकोच समाप्त हो गया, जिससे वह अधिक खुलकर गाने लगे।

एक दिन पुजारी ने उन्हें अकेले गाने को कहा। वह एक से अधिक रूपों में हरिप्रसाद के लिए एक बड़ी शुरुआत थी। पुजारी ने उनके पिता को एक भजन गायक के रूप में उनके पुत्र की क्षमता के बारे में बताया, ''आपका बेटा तो बहुत अच्छा भजन गाता है।'' संगीत के प्रति अपनी अरुचि के बावजूद पहलवान को खुशी थी कि उनका बेटा भक्ति गीत गा रहा है। अगर हरि को पुजारी की स्वीकृति मिली हुई थी, तो श्रीलाल, जो महज एक पहलवान थे, आपत्ति करनेवाले कौन होते थे? ''यह तो अच्छी बात है, मंदिर जाया करो।'' उन्होंने कहा। यह सामान्य कथन संगीत की दुनिया के लिए हरिप्रसाद का पासपोर्ट था।

संगीत के कैरियर में आगे बढ़ने में पहली प्रेरणा तब मिली, जब हरिप्रसाद लगभग नौ वर्ष के थे। पं. राजाराम उनके पड़ोस में आए। हरिप्रसाद के अनुसार, वह ठीक उनके बगल के घर में रहने आए। बन्नो के अनुसार, चौरसिया परिवार के पास विशाल परिसर था और उनकी माँ की मृत्यु के बाद छेदीलाल पहलवान ने बच्चों की सुरक्षा के लिए उसमें एक दीवार बना दी तथा खाली जगह पं. राजाराम को दे दी। क्या राजाराम पहलवान को किराया देते थे? इस बारे में किसी को पता नहीं है। अब न वह घर है, न राजाराम और न ही हरिप्रसाद के पिता, इसलिए यह जानने का कोई उपाय नहीं है।

पं. राजाराम एक शास्त्रीय गायक थे, जो ध्रुपद शैली में गाते थे। वह कलकत्ता के किसी व्यासजी के शागिर्द थे। बारिश के महीनों में (जो हिंदू कैलेंडर के सावन और भादों महीने होते हैं) व्यासजी अपने शागिर्द के साथ रहने के लिए आते थे। वह छत पर तबला बजाते थे और तीनों भाई-बहन अपनी छत से देखते थे। वह एक चुटिया रखते थे, जो लय में सिर घुमाने के समय हिलती थी, जिससे तीनों बच्चों को हैरत होती थी। पं. राजाराम और उनकी पत्नी एक सहृदय दंपती थे, जिनके अपने बच्चे नहीं थे। वह एक संगीत शिक्षक थे, जो लोगों के घर जाकर उनके बच्चों को शास्त्रीय संगीत सिखाते थे। आमतौर पर वह भजन सिखाते थे, क्योंकि ध्रुपद गायन बच्चों के बीच एक पसंदीदा विधा नहीं थी और अब भी नहीं है। पहली बात तो बहुत कम माता-पिता अपने बच्चों को संगीत शिक्षा दिलाने में दिलचस्पी रखते थे।

पंडित राजाराम के घर से उठनेवाली संगीत की यह स्वर-लहरी हरिप्रसाद को सम्मोहित करती थी। वह ध्वनि और टोनल क्वालिटी जैसी चीजों को नहीं समझते थे। एक चमत्कारक ध्वनि थी, जिसका वह अनुकरण करना चाहते थे। वह पंडित के घर के आस-पास उनके भजन या लोकप्रिय फिल्मी गीतों को गुनगुनाते हुए घूमते थे। एक दिन राजाराम ने उन्हें गाते हुए सुना तो उन्हें अंदर बुलाया और गाने को कहा। संकोच के साथ हिचकिचाते हुए हरिप्रसाद ने कुछ गाकर राजाराम को सुनाया, लेकिन उन्हें यह याद नहीं है कि क्या गाया था। पंडित ने अपना हारमोनियम निकाला और वह एवं उनकी पत्नी साथ गाने लगे, ''तुम अच्छा गाते हो। तुम्हें रोज अभ्यास करना चाहिए।'' राजाराम ने उनका उत्साह बढ़ाते हुए कहा।

''मैं घर पर अभ्यास नहीं कर सकता। अगर मेरे पिता को पता चल गया तो वह नाराज हो जाएँगे। मैं आपके घर में ही अभ्यास करूँगा।'' हरिप्रसाद ने जवाब दिया। निस्संतान होने के कारण दोनों ने उन पर अपना प्यार बरसाना शुरू कर दिया और पंडित की पत्नी द्वारा पकाया गया खाना उन्हें प्यार से खिलाया जाता था। व्यासजी के आग्रह पर बन्नो और गणेशप्रसाद को भी सिखाया गया। तीनों को भजन, बुनियादी सरगम और कुछ फिल्मी गीत सिखाए गए। निश्चित रूप से हरिप्रसाद सबसे प्रतिभावान् थे और साथ ही अधिक समर्पित भी। राजाराम ने बुनियादी स्वरों से शुरू करते हुए भोपाली जैसे सरल रागों के बुनियादी स्तर से मींद और गमक की ओर जाते हुए अंत में अस्थायी और अंतरा तक सिखाया। पश्चिमी वर्स/कोरस प्रणाली के विपरीत भारतीय शास्त्रीय संगीत में इस अस्थायी/अंतरा प्रणाली, जिसे कभी-कभी मुखड़ा/अंतरा कहा जाता है, का अनुकरण किया जाता है। राजाराम हरिप्रसाद को नृत्य प्रतियोगिताओं में भी ले जाते थे, ताकि वह नृत्य-नाटिकाओं के संगीत से परिचित हो सकें, जो आनेवाले समय में बहुत महत्त्वपूर्ण होने वाला था। हरिप्रसाद का गायन जल्दी ही स्कूल में प्रसिद्ध होने लगा और समारोहों के अवसर पर अकसर उनके शिक्षक उनसे गाने के लिए कहते। जब शास्त्रीय प्रशिक्षण आगे बढ़ा तो पंडित राजाराम के सामने यह स्पष्ट हो गया कि संगीत के अच्छे श्रोता होने के बावजूद हरिप्रसाद के पास गायक बनने के लायक पर्याप्त कंठ-क्षमता नहीं है।

इस समय हरिप्रसाद ने अपना ध्यान अपने दूसरे प्यार बाँसुरी की ओर लगाया। वह एक सीधी बाँसुरी थी, जिसे तकनीकी रूप से एक रिकॉर्डर कहा जाता था और पश्चिम में उसका 'पेनीव्हिसल' नाम लोकप्रिय है। एक बाँसुरी बेचनेवाला मोहल्ले में बाँसुरी बेचने आया और हरिप्रसाद ने उससे एक बाँसुरी खरीदी, कम-से-कम बन्नो को आज यही याद है। हरिप्रसाद को लगता है कि उन्होंने शायद वह बाँसुरी एक मेले में खरीदी थी। चाहे वह कहीं भी खरीदी गई हो, अब बरसों से उनकी संगिनी है। हर बार अपने पिता से झाड़ और डाँट खाने के बाद बाँसुरी के स्वर में उन्हें शांति मिलती थी। जब वह निराश होते थे तो वह उनका उत्साह बढ़ाती थी। जब भी उनके पिता उन्हें पहलवान बनाने पर जोर देते, उसकी प्रतिक्रिया में वह बाँसुरी बजाते थे। जब उन्हें अपनी माँ की याद सताती तो वह बाँसुरी की स्वर-लहरियों में अपना दिल निकालकर रख देते। बाँसुरी उनकी संगिनी थी। वह उनके सबसे करीब थी और वही करती थी, जो वह चाहते थे, इसलिए उन्होंने उससे और भी लाभ उठाने का फैसला किया।

वास्तव में उनके पास दो बाँसुरियाँ थीं। दूसरी बाँसुरी उन्होंने लगभग अपनी आयु के ही एक लड़के से चुराई थी, जब उनकी आयु पाँच या छह वर्ष की थी। उस लड़के की बाँसुरी इतनी सुरीली लगती थी कि हरि ने मोहल्ले भर में उसका पीछा किया। वह नन्हा लड़का पानी पीने के लिए एक नल के पास रुका। उसने बाँसुरी जमीन पर रखी और पानी पीने के लिए अपने हाथों की अँजुरी बनाई। एक झटके में हरि ने बाँसुरी झपट ली और अपनी नटखट मुसकराहट के साथ भागकर गलियों की भूलभुलैया में समा गए। वह लड़का रुकने के लिए चिल्लाते हुए उनके पीछे भागा, लेकिन हरि पहलवान का बेटा था। उसका शारीरिक गठन अच्छा था और वह उस इलाके को अच्छी तरह पहचानता था। उसे पकड़ना असंभव था।

हरिप्रसाद को लगता है कि लोग इस घटना का कुछ अधिक मतलब निकालते हैं। वह एक बचकानी शरारत से अधिक कुछ नहीं थी, जिसे अकसर उनके जीवन का टर्निंग पॉइंट बताते हुए अति नाटकीय रूप दिया जाता है, जो वास्तव में सही नहीं है।

''पंडितजी, आपको पकड़े जाने का डर नहीं था?'' मैं पूछता हूँ।

''नहीं,'' वह अपनी आँखों में शरारत लिये जवाब देते हैं, ''मुझे यकीन था कि वह नहीं पकड़ सकता। अगर वह ऐसा करता तो मैं आसानी से उसे पीट देता और अगर सबकुछ असफल रहता तो उसे बाँसुरी वापस दे देता।

बस।''

''लेकिन आपने उसे चुराया ही क्यों?''

''मुझे उसकी ध्वनि पसंद थी। अगर मैं आराम से माँगता तो वह कभी मुझे नहीं देता, इसलिए मैंने उसे चुरा लिया।''

सरल और बच्चों जैसे सरल, यही हैं हरिप्रसाद चौरसिया। कई रूपों में वह अब भी नहीं बदले हैं।

हरि की समस्या यह थी कि वह कहाँ और कब अभ्यास करें। वह निश्चित रूप से वहाँ पर अभ्यास नहीं कर सकते थे, जहाँ उनके पिता को सुनाई दे, क्योंकि उसका मतलब था पिटाई। वह किसी सार्वजनिक स्थान पर भी अभ्यास नहीं कर सकते थे, क्योंकि फिर उनके पिता को पता चल जाता और उन्हें फिर भी पिटाई खानी पड़ती। जब उनके पिता बाहर जाते तो वह अपने कमरे के अंदर बाँसुरी को छिपाने के गोपनीय स्थान से निकालते और मन भरने तक बजाते। वह बाँसुरी से जितने सुर निकाल पाते, हर उस सुर के साथ उनका उत्साह बढ़ता जाता। सुरीलापन उन्हें स्वाभाविक रूप से मिला था, सहज रूप से। वह संगीत के अच्छे श्रोता थे और उसे गहराई से महसूस करते थे। वह उनके रक्त में था। वह उनकी माँ का आशीर्वाद था और चाहे उनके पिता ने जितनी भी कोशिश की हो, यह वह चीज थी, जिसे वह कभी हरि से अलग नहीं कर पाए। कभी-कभी वह अपनी छत पर अभ्यास करते, कभी किसी पड़ोसी की छत पर। अगर छेदीलाल पहलवान का कोई मित्र उन्हें अभ्यास करते देख लेता तो वह अनुरोध करते, ''कृपया मेरे पिता को मत बताना।'' उनमें से अधिकतर लोग पहलवान के स्वभाव को जानते हुए यह बात मान लेते। एक बार उन्हें अपने स्कूल की छत पर बाँसुरी बजाते हुए पाया गया और स्कूल मास्टर ने उनके घर पर शिकायत भेज दी। उस शाम उन्हें अपने पिता से खूब डाँट पड़ी।

समय एवं स्थान की बाधाओं और एक पहलवान के स्थायी डर के बावजूद हरिप्रसाद ने संगीत के साथ बाँसुरी का अभ्यास जारी रखा। वह बाँसुरी बजाने से लोगों के मना करने के बावजूद बाँसुरी सीखने के बारे में दृढ़ थे। उस समय लोगों में यह अंधविश्वास प्रचलित था कि रात में बाँसुरी बजाने का अर्थ है कि परिवार के किसी सदस्य की असमय मृत्यु हो जाएगी। हरिप्रसाद के भाई और माँ दोनों की मृत्यु कम आयु में हुई थी, लेकिन यह उनके बाँसुरी बजाने से पहले की बात थी, इसलिए उन्हें इस विश्वास में कोई तर्क नजर नहीं आता था और उन्होंने इस बात को मानने से इनकार कर दिया। उस समय के डॉक्टर मानते थे कि बाँसुरी बजाने से टी.बी. या फेफड़ों की समस्या होती है। वह तर्क देते, ''अगर भगवान् कृष्ण बाँसुरी बजा सकते हैं तो मैं क्यों नहीं?''

यह जानते हुए कि कंठ संगीत उनका क्षेत्र नहीं है, वह बाँसुरी लेकर पं. राजाराम के पास गए और उनके सामने बजाया। पंडित को उनका बजाना पसंद आया, लेकिन चूँकि वह खुद बाँसुरी-वादक नहीं थे, उनके संगीत के सबक बंद हो गए।

होटल प्रयाग रामचंद्र जायसवाल का था, जहाँ हरिप्रसाद अकसर मालिक के बेटे के साथ बजाने जाते थे, जो उनका स्कूली सहपाठी भी था। वह रेलवे स्टेशन के नजदीक था, इसलिए बहुत से महान् संगीतकार जब रेडियो स्टेशन पर अपनी रिकॉर्डिंग कराने आते थे तो उस होटल में ठहरते थे। एक ऐसे ही अवसर पर उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब अपने होटल के कमरे में रियाज कर रहे थे। बाबा के रूप में प्रसिद्ध मइहर के महान् दरबारी संगीतकार थे। उनका दरवाजा खुला हुआ था और उनकी वायलिन की धुन स्पष्ट रूप से सुनी जा सकती थी। हरिप्रसाद गलियारे में उनके कमरे के बाहर बैठकर उन्हें बजाते सुनते रहे। वह दोपहर का समय था और उनकी छाया बाबा के दरवाजे के पार पड़ रही थी, इसलिए उस्ताद को महसूस हुआ कि कोई बाहर बैठा हुआ है। उन्होंने नन्हे हरि को अंदर बुलाया, फुरसत से एक बीड़ी जलाई और पूछा, ''तुम क्या करते हो?''

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब पर जारी डाक टिकट।

''मैं पढ़ता हूँ।''

''क्या तुम्हें संगीत पसंद है?''

''हाँ, मैं गाता हूँ; लेकिन मेरी आवाज अच्छी नहीं है, इसलिए मैं बाँसुरी बजाता हूँ।''

''बहुत अच्छे। क्या तुम्हारे पास बाँसुरी है?''

''नहीं, वह घर पर है।''

''अब जाओ और खेलो। कल अपनी बाँसुरी के साथ आना।''

हरिप्रसाद अगले दिन अपने साथ बाँसुरी लेकर गए और उस्ताद के लिए कुछ धुनें बजाईं। बाबा ने अपनी वायलिन निकाली।

''मेरे साथ बजाओ।''

हालाँकि बाँसुरी की स्केल अलग थी, हरिप्रसाद सही सुर बजाने में सफल रहे। बाबा प्रभावित हुए।

''तू तो बड़ा सुर में है। आ, मेरी गोद में बैठ।''

बाबा अलाउद्दीन खाँ साहब ने हरिप्रसाद को अपने घुटने पर बिठा लिया।

''मेरे साथ मइहर चलो, मैं तुम्हें संगीत सिखाऊँगा।''

''मुझे पढ़ना है, नहीं तो मेरे पिताजी मुझे मार डालेंगे।''

''ठीक है, जब तुम्हारी पढ़ाई खत्म हो जाए तो तुम मइहर आ सकते हो। अगर किसी वजह से मैं वहाँ नहीं मिला तो तुम मेरी बेटी अन्नपूर्णा से सीख सकते हो। वह एक अच्छी लड़की है। वह तुम्हें सिखा देगी।''

दोनों को यह पता नहीं था कि बाबा का यह वाक्य हरिप्रसाद के संगीत पर कितना गहरा असर डालेगा या वह बाँसुरी-वादन की अवधारणा को ही '50 के दशक की गायकी शैली से पूरी तरह बदलकर रख देगा। वह एक ऐसा वाक्य था, जो हरिप्रसाद की यादों में बसा रहा और लगभग दो दशक बाद उभरा।

हरिप्रसाद के लिए यह कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं थी कि इलाहाबाद ने देश के स्वतंत्रता आंदोलन में अहम भूमिका निभाई। वह सन् 1857-58 में विद्रोह के समय काफी हद तक संघर्ष की भूमि थी। वह सन् 1901 से लेकर 1949 तक संयुक्त प्रांत की राजधानी थी। नेहरू परिवार का घर आनंद भवन बाद के स्वतंत्रता संघर्ष का केंद्र था, जहाँ अतीत, वर्तमान और भविष्य के राजनेताओं तथा राजनीतिज्ञों ने आजाद भारत का भविष्य निर्धारित किया। जब सरकारी भवनों पर यूनियन जैक की जगह तिरंगा लहराया, उस समय हरिप्रसाद नौ वर्ष के थे। यह उनके लिए शायद ही कुछ महत्त्व रखता था कि ब्रिटिश राज चला गया है या भारत एक आजाद देश है। उन्हें तो अभी-अभी उस आजादी के अहसास का अनुभव होना शुरू हुआ था, जो संगीत ने उन्हें दी थी, कुश्ती और पढ़ाई जैसी लौकिक चीजों से, भले ही कुछ समय के लिए मुक्ति का अहसास था। उनके लिए आजादी रियाज के लिए एक एकांत स्थान से अधिक कुछ नहीं थी।

इलाहाबाद हमेशा से सांस्कृतिक रूप से समृद्ध शहर रहा है। यह गंगा, यमुना और सरस्वती नदियों के संगम,

जिसे त्रिवेणी कहा जाता है, पर स्थित है। तीनों नदियों के संगम के लिए 'प्रयाग' शब्द का इस्तेमाल भी किया जाता है। वैसे इस बारे में कई मत हैं। एक मत के अनुसार, इलाहाबाद प्राचीन शहर प्रयाग के ऊपर स्थित है। एक दूसरे मत के अनुसार, मानव शरीर एक मंदिर है, जिसमें हमारी आत्मा रहती है। इस मंदिर के केंद्र से होकर ज्ञान की गंगा बहती है। इस ज्ञान की गंगा में भक्ति और श्रद्धा की दो नदियाँ बहती हैं, जो क्रमश: यमुना और सरस्वती की प्रतीक हैं। इन तीनों के मिलन-बिंदु को प्रयाग कहा जाता है। चाहे इस शब्द की उत्पत्ति जहाँ से भी हुई हो, इस शहर ने संगीत की वह उपाधि दी है, जिसे संगीत की सबसे प्रतिष्ठित डिग्री माना जाता है, संगीत प्रभाकर।

बदलते सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य का भी देश के संगीत और संगीतकारों पर गंभीर प्रभाव पड़ा। कम और अधिक अंतराल पर होने के बावजूद संगीत सम्मेलनों में वृद्धि हो रही थी। अगर सुनी-सुनाई बातों और बुजुर्ग संगीतकारों की स्मृतियों पर यकीन किया जाए तो पहला संगीत सम्मेलन सन् 1867 में कलकत्ता में और उसके बाद 1890 में किसी समय हुआ था। बड़ौदा में सन् 1916 में एक सम्मेलन हुआ, जिसके बाद 1920 के दशक में इलाहाबाद एवं लखनऊ में दो और सम्मेलन हुए। सन् 1930 के दशक के बाद से उत्तरी भारत में राजाओं और नवाबों द्वारा नियमित रूप से ऐसे सम्मेलन आयोजित किए जाते रहे, जो अपने आप में दक्ष संगीतकार थे या संगीतविद् थे, जैसे विष्णु नारायण भातखंडे और विष्णु दिगंबर पालुस्कर। जानकी बाखले ने अपनी पुस्तक 'टू मेन एंड म्यूजिक' में लिखा है—'बड़े पैमाने पर उनके प्रयासों की वजह से छोटे प्रशिक्षण स्कूलों का एक व्यापक तंत्र है, जो मध्य वर्ग में संगीत के बुनियादी ज्ञान का प्रसार करता है।'

एक पूरी नई पीढ़ी की तरह संगीत में हरिप्रसाद की रुचि को इलाहाबाद में आयोजित संगीत समारोहों से और बढ़ावा मिला। शहर में प्रयाग संगीत समिति नामक एक संस्था है, जो गंधर्व महाविद्यालय के तत्त्वावधान में प्रयाग संगीत सम्मेलन आयोजित करता था। वह देश के मुख्य संगीत कार्यक्रमों में से एक था, जो कई रातों तक चलता था। यहीं पर हरिप्रसाद को उस समय के कुछ महान् संगीतकारों के संगीत का शुरुआती प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। पुरानी महान् हस्तियों में थे, उस्ताद बड़े गुलामअली खाँ, के.जी. गिंदे, सी.आर. भट्ट, बाबा अलाउद्दीन खाँ, हाफिज अली खाँ, तारापदा चक्रवर्ती, चिन्मय लाहिरी, कानन साहिब और अफगानिस्तान के एक गायक, जिनका नाम अब्दुल गफार खाँ था। नृत्य के क्षेत्र की मुख्य हस्तियाँ थीं, अपरेश लाहिरी (चिन्मय लाहिरी के भाई) और रोशन कुमारी, जिनके पिता अकसर पखावज पर उनके साथ देते थे। युवा पीढ़ी में रवि शंकर, अली अकबर खाँ और अब्दुल हलीम जफर खाँ थे। प्रयाग संगीत समिति के विद्यार्थियों को भी कलाकारी दिखाने का अवसर दिया जाता था। वह एक बड़ा समारोह होता था, जिसमें बनारस और मेरठ सहित राज्य भर से लोग आते थे। यहाँ प्रदर्शन करना रेडियो पर प्रस्तुति देने जैसा था। उससे काफी ख्याति प्राप्त होती थी।

युवा हरिप्रसाद रात को चुपचाप दबे पाँव अपने घर से निकल जाते थे, जब उनके पिता गहरी नींद में होते थे और सूर्योदय होने से पहले वापस आ जाते थे। उनके पिता बहुत जल्दी उठते थे और वह पूरी रात संगीत सुनने के बाद घर आते समय पकड़े नहीं जाना चाहते थे। वह जानते थे कि यह काम बहुत जोखिम भरा है; लेकिन उस दिव्य संगीत का सम्मोहन सबकुछ भुला देता था।

संगीत में हरिप्रसाद को कुछ समय तक अपने साधनों से काम चलाना पड़ा। उनके घर के पास दो मंदिर थे तो वह जब भी जल्दी उठ जाते या उनकी छुट्टी होती, वह किसी मंदिर में जाते और वहाँ बजाते। उनके छोटे होने, नियमित भक्त होने और बाँसुरी बजाने की वजह से उन्हें पहला और अकसर सबसे अधिक प्रसाद मिलता। उन्हें बाँसुरी से प्यार था और मीठा बहुत पसंद था, इसलिए एक चीज दूसरे को प्रेरित करती थी।

इसी समय एक पहलवान बनने का दबाव उन पर सबसे अधिक था। उन्हें कुश्ती पसंद नहीं थी, लेकिन यह पता

नहीं था कि इससे बाहर कैसे निकलें। एक दिन उन्हें इसका मौका मिल गया। जगन्नाथ उनके पास भागता हुआ आया। जगन्नाथ हरि का हमउम्र एक मारवाड़ी लड़का था, जो गायक बनने का सपना देखता था। पहलवान की तरह उनके पिता भी अपने बेटे को संगीत के क्षेत्र में नहीं भेजना चाहते थे। तंग आकर जगन्नाथ ने आजादी पाने की योजना बनाई।

''चलो, बंबई भाग चलें।''

''बंबई!''

''हाँ, मेरे पास कुछ पैसे हैं और जल्दी ही हमें वहाँ संगीतकार का काम मिल जाएगा।''

दोनों भावी संगीतकारों ने बंबई जानेवाली पहली रेलगाड़ी पकड़ी, तीसरे दर्जे के कंपार्टमेंट में बैठे और टिकट कलेक्टर को झाँसा देते हुए बे-टिकट बंबई के प्रसिद्ध विक्टोरिया टर्मिनस (अब भी उसका लोकप्रिय नाम वी.टी. है, हालाँकि सन् 1996 में उसका नाम बदलकर 'छत्रपति शिवाजी टर्मिनल' कर दिया गया) पहुँचे। स्टेशन पर उन्हें एक नजदीकी मंदिर के बारे में पता चला। वे लगभग एक घंटा चलकर मंदिर पहुँचे, जहाँ एक अत्यंत चिड़चिड़े पुजारी से उनका सामना हुआ। जब उसे उनकी असली पहचान पता चली कि वे कलाकार हैं तो उसका चिड़चिड़ापन कुछ कम हुआ। उनका परिचय था जगन्नाथ गायक और हरिप्रसाद बाँसुरी वादक।

पुजारी ने उन्हें भोजन और रहने की जगह दी। बदले में उन्हें मंगल आरती में गाना और बाँसुरी बजाना था। उस शाम उन दोनों ने भक्तों की एक भीड़ के सामने अपना पहला 'कॉन्सर्ट' दिया। हालाँकि इन दोनों भगोड़ों की पहली प्रस्तुति कोई भारी कामयाब प्रस्तुति नहीं रही थी, पुजारी इतने प्रभावित हुए कि उन्हें एक और दिन रहने तथा अगली शाम को फिर कला का प्रदर्शन करने दिया।

हरिप्रसाद को ठीक-ठीक याद नहीं है कि अगले पूरे दिन उन्होंने क्या-क्या किया, लेकिन वे काम माँगने कई फिल्म स्टुडियो के गेटों पर जरूर गए थे। कोई गेट उनके लिए नहीं खुला। उस रात उन्होंने फिर से अपने रात के भोजन के लिए गाया और फैसला किया कि अब बहुत हुआ। वह बड़ा शहर इन कस्बाई लड़कों के लिए बहुत रूखा एवं महँगा था और उनके पैसे उनके अनुमान से अधिक जल्दी खत्म हो रहे थे। इस दयनीय स्थिति के बदले वे अपने पिताओं से मार खाने को भी तैयार थे, फिर उन्होंने वापसी की ट्रेन पकड़ी, फिर से टिकट कलेक्टरों को झाँसा दिया और वापस इलाहाबाद अपने-अपने चिंतित पिताओं के पास पहुँचे।

''तुम कहाँ थे?'' चिंता से लगभग रोने को हो आए पहलवान ने पूछा। उन्हें नहीं पता था कि अपने बेटे की तलाश कहाँ से शुरू करें, क्योंकि किसी को हरिप्रसाद के बारे में कुछ पता नहीं था। हरिप्रसाद ने बुदबुदाते हुए जो जवाब दिया, वह किसी की समझ में नहीं आया।

''तुम भागे क्यों थे?''

हरिप्रसाद को अपने किए पर इतनी शर्मिंदगी हो रही थी कि उनकी दिलेरी गायब हो गई थी। इसलिए उन्होंने धीरे से जवाब दिया, ''मैं हर समय पिटाई नहीं खाना चाहता था। मुझे माफ कर दीजिए, मैं फिर नहीं भागूँगा।''

''मैं फिर कभी तुम्हारी पिटाई नहीं करूँगा। मैं वायदा करता हूँ।''

आखिरकार समझौता हुआ, लेकिन कीमत चुकानी पड़ी, दोनों को।

हरिप्रसाद ने किसी गुरु के अभाव और अभ्यास करने के लिए एक उपयुक्त स्थान के अभाव के बावजूद बाँसुरी से अपना संबंध बनाए रखा। वह बाँसुरी के स्वर के प्रेम में पड़ चुके थे और उसे छोड़ नहीं सकते थे। वह एक अनजान प्रतिभाशाली बालक थे और कई बार उन्हें ऑल इंडिया रेडियो पर बच्चों के कार्यक्रमों में बाँसुरी बजाने के अनुबंध भी मिले, जो एक खुद सीखे बाँसुरी-वादक के लिए एक बड़ी बात थी। उन्हें एक महीने में एक बुकिंग

मिलती और वह पं. राजाराम का सिखाया हुआ कोई फिल्मी गीत या कोई शास्त्रीय गीत बजाते। उससे मिलनेवाले पाँच रुपयों से उनके चना तथा गन्ने के रस का महीने भर का कोटा हो जाता।

धीरे-धीरे अभ्यास करने की जगह और समय की हरिप्रसाद की समस्या संगीत में रुचि रखनेवाले उनके कुछ मित्रों और परिचितों की मदद व प्रोत्साहन से हल हो गई, जो संगीत के बारे में उनके पिता के विचारों से परिचित थे। उनमें एक शास्त्रीय गायक बिशंभरनाथ यादव थे, जो वायलिन, हारमोनियम और बाँसुरी भी बजाते थे। वह संगीत से बहुत जुड़े हुए थे और कैलाशनाथ वैद्य तथा गुरुप्रसाद शर्मा जैसे लोगों के घर अकसर जाया करते थे, जहाँ हरिप्रसाद अभ्यास किया करते थे। उनकी मिठाई की एक दुकान थी, जिसमें रबड़ी, मलाई और इसी तरह की चीजें बिकती थीं। जब भी हरिप्रसाद उनकी दुकान के पास से गुजरते, वह उन्हें गरम दूध, रबड़ी या मलाई की खुरचन खिलाया करते। हरिप्रसाद कुछ खाने की उम्मीद में अकसर कुछ दिनों बाद उनसे मिलने के लिए वहाँ से गुजरते। अगर दुकान पर बिशंभरनाथ यादव के कर्मचारी होते, वह स्वयं नहीं तो हरिप्रसाद दूर से ही पलट जाते और अगले दिन फिर आते। उन्हें कभी निराशा नहीं होती, क्योंकि बिशंभरनाथ एक बड़े दिलवाले व्यक्ति थे, इतने कि वह अपने नुकसान की परवाह भी नहीं करते थे। अकसर वहाँ आनेवाले संगीतकार जैसे बड़े गुलाम अली खाँ, आमिर खाँ, अनोखे लाल और शांता प्रसाद खाने के लिए उनकी दुकान पर जाते। वह कभी उनसे पैसे नहीं लेते। इसकी बजाय वह उनसे एक बंदिश या तबले का 'टुकड़ा' गाने को कहते, जिसे वह बाद में पड़ोस के लोगों के सामने अपनी रचना बताकर पेश करते। वहाँ इतने कलाकार और मित्रों ने मुफ्त में खाया कि आखिरकार दिवालिया हो गए। वह अकसर हरिप्रसाद से उनकी संगीत की प्रगति के बारे में पूछते और उन्हें उन महान् उस्तादों की कुछ बंदिशें सुनाते, जो मिठाइयों के बदले मिलती थीं। चूँकि बिशंभरनाथ बाँसुरी भी बजाते थे, उन्होंने हरिप्रसाद को एक बाँसुरी-वादक बनाने का जिम्मा अपने ऊपर ले लिया था। वह अपने मित्रों और पड़ोसियों के सामने हरिप्रसाद को उन बंदिशों को बजाने के लिए कहते और अपने युवा 'विद्यार्थी' द्वारा प्रदर्शित क्षमता को देखकर उनके चेहरे पर संतुष्टि की चमक आ जाती। हरिप्रसाद को उनका विद्यार्थी कहलाए जाने में कोई आपत्ति नहीं थी, जब तक उनकी जीभ को संतुष्टि मिलती रहे। वह खासकर दुकान बंद होने के समय वहाँ जाना पसंद करते थे। बिशंभरनाथ बची चीजों का एक हिस्सा हरिप्रसाद को देते और बाकी स्वयं खाते। इस प्रक्रिया में हरिप्रसाद ने कई शास्त्रीय गीत सीखे, जिन्होंने शास्त्रीय संगीत की उनकी समझ को गहरा करने में मदद की।

बिशंभरनाथ यादव दोस्तों एवं पड़ोसियों में लोकप्रिय थे और अकसर शादियों तथा धार्मिक समारोहों में उन्हें भोजन तथा संगीत उपलब्ध कराने के लिए आमंत्रित किया जाता था। भोजन सामग्री उनकी दुकान से जाती थी, जो उनके व्यवसाय के लिए अच्छा था। संगीत के लिए वह लगभग हमेशा हरिप्रसाद चौरसिया को एक तबला-वादक के साथ भेज देते थे। दोनों एक छोटा राग और कुछ लोकप्रिय फिल्मी गीत पेश करते। वहाँ बस इतने ही मनोरंजन की जरूरत होती थी। आजादी के बाद के भारत में शादियाँ साधारण तरीके से होती थीं, जिनमें परिवार के लोग और नजदीकी लोग होते थे। आज की तरह तड़क-भड़कवाली शादियाँ उस समय नहीं होती थीं। बिशंभरनाथ यादव को इस चीज के लिए पैसा मिलता था या नहीं, हरिप्रसाद नहीं जानते, लेकिन उन्हें और तबला-वादक को रिक्शा भाड़े के अलावा किसी चीज का भुगतान नहीं किया जाता था।

दशकों बाद, जब हरिप्रसाद एक राष्ट्रीय शख्सियत बन गए, उन्होंने भारत सरकार के संस्कृति विभाग से बिशंभरनाथ यादव को उनके एक गुरु के रूप में पेंशन दिए जाने का अनुरोध किया। बिशंभरनाथ को खुशी हुई कि उनकी जरूरत के समय कोई उनकी मदद के लिए आया। सरकार द्वारा उन्हें भुगतान की जानेवाली छोटी सी राशि कुछ वर्ष पहले उनकी मृत्यु तक उन्हें मिलती रही।

हरिप्रसाद पर प्रभाव डालनेवाले एक और व्यक्ति गुरुप्रसाद शर्मा थे। वह बहुत बढ़िया वायलिन-वादक और अच्छे इनसान थे। उस समय इलाहाबाद में कुछ महान् संगीतकार थे, जैसे प्रदीप कुमार चटर्जी और प्रयाग संगीत समिति के रजिस्ट्रार जगदीश प्रसाद पाठक के पुत्र सुधाकर पाठक। तीनों की हमेशा एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा रहती थी। वे एक-दूसरे के मुकाबले अपनी श्रेष्ठता साबित करने की कोशिश करते रहते थे, जबकि बाकी दोनों हरिप्रसाद को अधिक भाव नहीं देते थे, गुरुप्रसाद शर्मा हरिप्रसाद को उनके संगीत के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे। वह जानते थे कि हरिप्रसाद को घर पर संगीत का अभ्यास करने में समस्या है, इसलिए उनकी बैठक के द्वार हरिप्रसाद के लिए हमेशा खुले रहते थे। न केवल इससे उन्हें रियाज के लिए एक अच्छी जगह मिली, बल्कि वह दूसरे संगीतकारों से मिलने और बातचीत करने के लिए एक बढ़िया जगह भी थी। वह वहाँ पर दिन या रात के किसी भी समय जा सकते थे और दोनों मिलकर अभ्यास करते। बैठक निचले तल पर थी और ऊपर के तल पर परिवार रहता था, इसलिए किसी को असुविधा भी नहीं होती थी। हरिप्रसाद अकसर वहाँ खाना खाते थे या दोनों अपने रियाज से थोड़ा समय निकालकर कुछ नाश्ता करने जाते।

गुरुप्रसाद शर्मा ऑल इंडिया रेडियो में गीतकार बन गए और अब सेवानिवृत्त हैं। अपने शुरुआती वर्षों में गुरुप्रसाद से मिले इस सारे प्यार, दोस्ती और संगीत परामर्श के बदले में हरिप्रसाद ने बंबई में स्थापित होने के बाद उन्हें फिल्म उद्योग में लाने की पूरी कोशिश की। किसी वजह से ऐसा न हो सका, क्योंकि गुरुप्रसाद शर्मा बंबई जैसे बड़े शहर में रहना पसंद नहीं करते थे। जब हरिप्रसाद ने हांगकांग में एक संगीत स्कूल खोला तो उन्होंने गुरुप्रसाद शर्मा को वहाँ प्रिंसिपल के रूप में भेजा, लेकिन यह प्रयास भी कामयाब नहीं हुआ, ''वह एक अच्छे दोस्त और बहुत अच्छे संगीतकार हैं, इसलिए मैंने मदद करने की पूरी कोशिश की।'' हरिप्रसाद पछतावे और संतुष्टि की मिली-जुली भावनाओं के साथ कहते हैं।

गुरुप्रसाद शर्मा के घर पर साथ बजानेवालों में बिशंभरनाथ यादव और हरिशंकर नामक एक तबला-वादक थे। नियमित रूप से वहाँ बजानेवालों में प्रेमदास सत्संगी थे, जो कमोबेश हरिप्रसाद के हमउम्र हैं और अब रॉटरडम कंजर्वेटरी में हरिप्रसाद से सीख रहे हैं। वह यूनियन टाउन, यू.एस.ए. में पेंसिल्वेनिया यूनिवर्सिटी में रसायन-शास्त्र के प्रोफेसर हैं।

जब मैं रॉटरडम में उनसे मिला तो हरिप्रसाद के साथ उनके संबंधों के बारे में और यह जानने के लिए उत्सुक था कि किस तरह बचपन का एक दोस्त और रसायन-शास्त्र का प्रोफेसर उनका विद्यार्थी बना और वह भी चार दशकों बाद। उनके पास कहने को यह था, ''मैं हरिप्रसाद के घर से एक ब्लॉक दूर रहता था और हम दोनों सन् 1953 में गुरुप्रसाद शर्मा के घर जाया करते थे। वहीं मैं पहली बार हरिप्रसाद से मिला। वह ग्रुप के अन्य लोगों जितने ही अच्छे संगीतकार थे। एक खूबसूरत, बेफिक्र एवं सहज युवक थे और उनके पान में स्पेशल मसाले की वजह से उनकी बाँसुरी से बड़ी अच्छी सुगंध आती थी। वह अपने मुँह में एक ओर पान भर लेते और अपने होंठों पर बाँसुरी लगा लेते। उनके बजाने का तरीका हम सबको पसंद था। मैं सिर्फ शौक से कभी-कभार लगभग पंद्रह या बीस मिनट बाँसुरी बजाता था। मैं एक नियमित कॉलेज में नियमित छात्र था और मेरे लिए पढ़ाई सबसे पहले थी। इसीलिए मैं रसायन-शास्त्र का प्रोफेसर बना, संगीतकार नहीं। हरिजी और मैं दोनों ने कुछ समय के लिए पंडित भोलानाथ से सीखा था। अमेरिका से अपने घर जाने के दौरान मैं गुरुप्रसाद शर्मा के पास जाता था, जो उस समय ऑल इंडिया रेडियो, वाराणसी में नौकरी करते थे। एक बार वहाँ जाने पर मैंने राग 'मंज खमाज' बजाया, जो हरिप्रसाद की एक सी.डी. से कॉपी किया था। गुरुप्रसाद शर्मा अपने बिस्तर पर लेटे हुए थे और हाथ के पंखे से हवा कर रहे थे, जब वह अचानक उठे और कहा कि मुझे अब हरिजी से सीखना शुरू कर देना चाहिए बस,

अगली बार जब हरिजी अमेरिका आएँ, बस उनके पैर छुओ और उनके शागिर्द बन जाओ। मैंने बिलकुल ऐसा ही किया। मैं सन् 1992 में उनसे मिला और उन्होंने मुझे सीखने के लिए रॉटरडम आने को कहा। वह मेरे लिए बहुत महँगा और समय खर्च करनेवाला काम था, इसलिए मैं नहीं गया, लेकिन सन् 1996 में मैंने अपनी अगली वेतन-वृद्धि एवं अगली पदोन्नति के बारे में चिंता करना छोड़ दिया और दो महीनों के लिए रॉटरडम चला गया। मैं तब से हर गरमियों में यहाँ आता हूँ।''

एक और घर, जहाँ हरिप्रसाद को परिवार के सदस्य की तरह समझा जाता था, वह था कैलाशनाथ वैद्य का। वह एक नाड़ी वैद्य थे। यह भारतीय चिकित्सक की एक दुर्लभ विधि होती है, जिससे किसी व्यक्ति की नाड़ी से उसकी बीमारियों का पता चल जाता है। वह इलाहाबाद के लोकनाथ इलाके में प्रसिद्ध थे और उनकी पत्नी हरिप्रसाद से बहुत स्नेह करती थीं। उनके तीन बेटे एवं एक बेटी, सभी संगीतकार थे और हरि को उनके साथ बजाने की आजादी थी तो उन्हें वहाँ तबला, हारमोनियम, सितार और गायन का साथ मिल जाता था। कभी-कभार वहाँ बिशंभरनाथ यादव भी उपस्थित होते थे और अपनी जानकारी साबित करने के लिए बजाने के सही तरीके के बारे में 'ज्ञान' देते थे।

हरिप्रसाद की पहली 'असली' एकल प्रस्तुति जीरो रोड पर नए खुले प्रभात टॉकीज में हुई। एक प्रतिष्ठित गायिका मानिक वर्मा, जिनका नाम हीराबाई बारोडेकर और सरस्वती राणे के साथ लिया जाता था, का गायन होना था और हरिप्रसाद को बाँसुरी के उनके एकल प्रदर्शन के लिए पंद्रह मिनट का समय दिया गया। विचार यह था कि वह कार्यक्रम के आरंभ में अपनी प्रस्तुति देंगे, जब दर्शक आकर बैठ ही रहे होंगे। उनसे बहुत उम्मीदें नहीं थीं। उन्हें बस मुख्य कलाकार से पहले एक बच्चे के प्रदर्शन जैसी नई चीज प्रस्तुत करने के लिए रखा गया था। वह एक 'उद्घाटन प्रक्रिया' का भारतीय संस्करण था। अपने निकर और आधी बाजू की कमीज पहने उन्होंने निर्धारित समय के लिए अपनी सीधी बाँसुरी बड़ी खूबसूरती से बजाई और तालियों के खत्म होने से पहले ही ऑडिटोरियम से भागकर बाहर आ गए। वह डरे हुए भी थे और उत्साहित भी। पहली बार उन्होंने असली दर्शकों का सामना किया था और उन्होंने तालियाँ बजाई थीं तथा कुछ और सुनने की माँग की थी। जब मानिक वर्मा मंच पर आईं तो दर्शक यह जानना चाहते थे कि इतना अच्छा बजाने वाले छोटे से बच्चे को और समय क्यों नहीं दिया गया। उन्हें नहीं पता था कि वह बच्चा कौन था, लेकिन वह सहमत थीं कि उसे अधिक समय तक बजाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। वैसे हरिप्रसाद को खुशी है कि वह पंद्रह मिनट बाद भाग गए। उन्हें यकीन है कि वह एक मिनट और नहीं टिक पाते। वह पत्ते की तरह काँप रहे थे और इतने घबराए हुए थे कि आगे जारी नहीं रख सकते थे।

इस प्रदर्शन से जो सकारात्मक बात बाहर आई, वह यह थी कि गुलाम जिलानी ने इस बारे में सुना। वह एक बैंजो वादक थे और उनकी संगीत यंत्रों की एक दुकान थी। इलाहाबाद में होनेवाली संगीत की गतिविधियों की खबरें उन तक छनकर पहुँचती थीं। उन्होंने लोगों को हरिप्रसाद के बाँसुरी-वादन की तारीफ करते सुना। हरिप्रसाद बस स्टॉप की ओर जा रहे थे, जब गुलाम जिलानी ने उन्हें रोककर प्रभात टॉकीज के उनके प्रदर्शन के बारे में पूछा। उनकी सराहना करते हुए उन्होंने हरिप्रसाद को एक बाँसुरी दी। वह एक 'एफ' स्केल की बाँसुरी और हरिप्रसाद की पहली बढ़िया बाँसुरी थी, जिस प्रकार की बाँसुरी को आड़ा पकड़ना पड़ता है, इस प्रकार की बाँसुरी उन्होंने तब से बजाई है।

बाँसुरी के गुरु की हरिप्रसाद की जरूरत तब पूरी हो गई, जब उन्हें इलाहाबाद मिलिंग कंपनी में नौकरी मिली। माधो प्रसाद कनोडिया को बाँसुरी में उनकी रुचि के बारे में पता चला और उन्होंने रामचंद्र जायसवाल को कहा कि उन्हें सीखने के लिए पं. भोलानाथ के पास जाना चाहिए। पं. भोलानाथ, जिनका पूरा नाम भोलानाथ प्रसन्ना था,

वाराणसी में संगीतकारों के एक बड़े परिवार से आते थे। वह स्वयं इलाहाबाद में रहते थे, क्योंकि वह ऑल इंडिया रेडियो, इलाहाबाद में नौकरी करते थे। वह तिपारा बाँसुरी बजाते थे, जो भारतीय बाँसुरी की अन्य किस्मों से अलग होती है। उसे लगभग ऊर्ध्वाधर स्थिति में एक कठिन कोण पर पकड़ा जाता है और बाँसुरी-वादक बाँस के खुले सिरे में फूँक मारकर बजाता है। उँगलियों द्वारा ढके जाने वाले छह छिद्रों के अलावा नीचे की ओर एक छोटा छिद्र होता है, जिसे अष्टक स्वर बदलने के लिए अँगूठे से ढका जाता है। किसी तिपारा बाँसुरी की ध्वनि किसी खाली बोतल में फूँक मारने से उत्पन्न ध्वनि की तरह होती है। हरिप्रसाद ने रेडियो पर भोलानाथ प्रसन्ना को सुना था और वह उनकी बाँसुरी के सुर से सम्मोहित थे। उन्हें विश्वास नहीं होता था कि बाँसुरी की ध्वनि इतनी सुरीली हो सकती है। अब तक वह इसे बाँसुरी के प्रति अपने आकर्षण का एकमात्र सबसे मजबूत कारण मानते हैं।

हरिप्रसाद के लिए भोलानाथजी से सीखना बहुत सुविधाजनक था, क्योंकि इलाहाबाद मिलिंग कंपनी लूकरगंज में स्थित थी और रेडियो स्टेशन पास के थॉर्न हिल रोड पर था। पं. भोलानाथ रेडियो स्टेशन के ठीक पीछे द्रौपदी घाट पर रहते थे। वह अविवाहित थे और हरिप्रसाद से अधिक बड़े नहीं थे। वह अकेले रहते थे और उन्हें हरिप्रसाद का साथ पसंद था। हरिप्रसाद अकसर उनके घर का सामान ला देते, उनके मसाले पीस देते और खाना पकाने के लिए बाकी तैयारियाँ कर देते। पं. भोलानाथ रेडियो स्टेशन पर अपना काम खत्म करते और दोनों के लिए खाना बनाते। वे साथ खाना खाते और फिर सबक शुरू हो जाता। समय लचीला था। अगर माधो प्रसाद कनोडिया वहाँ नहीं होते और हरिप्रसाद अपना काम जल्दी खत्म कर लेते तो वह साइकिल से अपने गुरु के घर चले जाते और उनकी प्रतीक्षा करते, या उनसे सीखने के लिए सीधे रेडियो स्टेशन चले जाते। कभी-कभी वह ऑफिस का समय समाप्त होने के बाद सीखने जाते। अगर उनके पिता कभी पूछते कि उन्हें घर लौटने में देर क्यों हुई, तो हरिप्रसाद कहते, ''आज ऑफिस में बहुत काम था।'' पहलवान उनकी 'कड़ी मेहनत' और काम के लंबे घंटों को देखते हुए संतोष की साँस लेते।

बच्चों के कार्यक्रमों में हरिप्रसाद के वादन ने युक्ति भद्र दीक्षित का ध्यान आकृष्ट किया। वह रेडियो स्टेशन के ड्रामा सेक्शन में थे; लेकिन उन्हें लोकगीत लिखना पसंद था। वह सप्ताह में एक या दो बार हरिप्रसाद और ननकू नामक एक ढोलक बजानेवाले को लेकर इलाहाबाद से कुछ किलोमीटर दूर स्थित एक कस्बे नैनी तक जाते। नैनी के एग्रीकल्चर कॉलेज में एक कमरे को अस्थायी रिकॉर्डिंग स्टुडियो में बदलकर उनके लोकगीत रिकॉर्ड किए जाते। हरिप्रसाद को न केवल इस बात का अनुभव हो गया कि माइक्रोफोन का सामना कैसे करना है, बल्कि उन्हें हर रिकॉर्डिंग के पाँच रुपए भी मिलते थे। जब भी नैनी में रिकॉर्डिंग की बात होती, वह अपने पिता से कहते कि वह एक विद्यार्थी को पढ़ाने जा रहे हैं और अपने विद्यार्थी को कहते कि वह उसे रविवार को दुगुने समय तक पढ़ा देंगे। उनके पिता को कभी सच्चाई का पता नहीं चला, इसलिए नैनी की उनकी यात्राओं में कभी बाधा नहीं पड़ी।

युक्ति भद्र दीक्षित सन् 1953 में राष्ट्रपति भवन में प्रदर्शन के लिए हरिप्रसाद को अपने साथ दिल्ली भी ले गए। हरिप्रसाद दर्शकों को देखकर विस्मित रह गए, जिनमें अधिकतर राजनेता और नौकरशाह थे, जिनमें राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद स्वयं भी शामिल थे। वहाँ कुछ महान् संगीतकारों ने अपनी प्रतिभा दिखाई। उस्ताद हाफिज अली खाँ ने सरोद-वादन किया, उनके पुत्र नन्हे अमजद अली मंच पर उनके पीछे बैठे थे और शेरवानी में बहुत प्यारे लग रहे थे। डागर भाइयों द्वारा ध्रुपद गायन हुआ। रेडियो स्टेशन में काम करने के कारण रविशंकर ने एक ऑर्केस्ट्रा आयोजित किया, जिसमें विजय राघव राव, गोपाल कृष्णा और प्रेम वल्लभजी जैसे कुछ दिग्गज नाम थे। हरिप्रसाद वहाँ गौड़ बहनों—प्रेमा और बिमला द्वारा पेश किए जानेवाले लोकगीत में साथ देने की हैसियत से वहाँ आए थे। उन्हें बिड़ला मंदिर के साथ लगे गेस्टहाउस में ठहराया गया। वह उस युवा संगीतकार के लिए एक अद्भुत अनुभव

था और जाने-माने लोगों की उनकी पहली झलक थी, जिनके साथ वह अपने जीवन के अधिकांश हिस्से में मिलने-जुलने वाले थे।

जब हरिप्रसाद थोड़े बड़े हुए और बच्चों के कार्यक्रम के लिए अधिक आयु के हो गए तो उन्हें नियमित स्टाफ कलाकार के रूप में ऑडिशन देने के लिए कहा गया। शांतिमय घोष नामक एक कार्यक्रम कार्यकारी (जिन्हें नामपट्टों पर संक्षिप्त रूप में P.Ex. लिखा जाता है और रेडियो वार्त्तालाप में 'पेक्स' (PEX) उच्चारण किया जाता है) ने इसका सुझाव दिया। रेडियो स्टेशन के गलियारों में हरिप्रसाद एक लोकप्रिय चेहरा बन गए थे। अधिकतर कर्मचारी उन्हें जानते और चाहते थे। अब वह और प्रसिद्ध हो गए थे, क्योंकि वह पं. भोलानाथ प्रसन्ना के शिष्य थे। ऑडिशन का विचार तब उभरा, जब हरिप्रसाद ने शांतिमय घोष से कहा कि वह एक टाइपिस्ट के रूप में काम कर रहे हैं, लेकिन वे ऐसी नौकरी करना चाहते हैं, जो किसी-न-किसी रूप में उन्हें संगीत से जोड़े रखे। नियत दिन हरिप्रसाद ने उसी बेफिक्री से अपनी बाँसुरी को अपनी बगल में दबाया और ऑडिशन के लिए स्टुडियो पहुँच गए। उन्हें पता नहीं था कि '50 के दशक में आकाशवाणी का ऑडिशन उभरते कलाकारों के लिए कितना महत्त्वपूर्ण था या वह उनके जीवन का मार्ग निर्धारित करने में कितना निर्णायक होगा। संगीत उनका शौक और उनकी दीवानगी थी, लेकिन संगीत में कैरियर बनाने का विकल्प अब भी नहीं था, इसलिए ऑडिशन के नतीजे उनके लिए उतने महत्त्वपूर्ण नहीं थे, जितने उसे पेशा बनाने के इच्छुक किसी व्यक्ति के लिए होते।

उस समय निजी रेडियो चैनल और टेलीविजन नहीं थे, इसलिए ऑल इंडिया रेडियो दर्शकों तक पहुँचने का एकमात्र माध्यम था। उसे पूरा देश सुनता था। अगर कोई संगीतकार बनना चाहता था तो वह एकमात्र माध्यम था, जो आपको ख्याति और मान्यता दिला सकता था। संगीत समारोह लोकप्रिय हो रहे थे, लेकिन कार्यक्रम की प्रस्तुति के लिए आमंत्रित किया जाना हमेशा संयोग की बात थी। रेडियो का माध्यम भिन्न था। ऑडिशन पास करने के बाद कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए नियमित बुकिंग सुनिश्चित हो जाती थी।

उन दिनों ऑडिशन रिकॉर्ड नहीं किए जाते थे। वे परीक्षार्थी और परीक्षा लेने वालों के बीच प्रत्यक्ष रूप से होते थे। हरिप्रसाद ने उनमें एक को पहचान लिया। वह प्रसिद्ध वायलिन-वादक पद्मभूषण पं. वी.जी.जोग के गुरुओं में से एक और अत्यंत विद्वान् संगीतकार प्रो.रतनझंकार थे। वह एक संक्षिप्त और सरल ऑडिशन था। उन्हें अपनी पसंद की कोई धुन बजाने के लिए कहा गया। दोपहर का समय था, इसलिए उन्होंने राग सारंग बजाया। चूँकि उन्हें पं. भोलानाथ प्रसन्ना के शिष्य के रूप में जाना जाता था, उन्हें अधिक सख्ती से नहीं जाँचा गया, लेकिन उन्हें 'बी' ग्रेड दिया गया। वह कोई अच्छा ग्रेड नहीं था, लेकिन बुरा भी नहीं था। वह उन्हें स्टाफ कलाकारों के पैनल में शामिल करवाने के लिए पर्याप्त था, वे संतुष्ट हो गए, साथ ही शांतिमय घोष और पं. भोलानाथ को भी संतुष्टि हो गई।

जब कोई संगीतकार प्रसिद्धि पा लेता है तो आलोचकों और प्रशंसकों के लिए उसके गुरुओं को 'महान्', 'प्रसिद्ध' और 'लीजेंडरी' बताना चलन हो जाता है। भोलानाथ प्रसन्ना इसका एक उदाहरण हैं। संभवत: उनकी ख्याति का एकमात्र कारण यह था कि वह हरिप्रसाद के गुरु थे और वह भी कुछ समय के लिए। हालाँकि उनकी संगीत क्षमताओं पर कभी प्रश्नचिह्न लगा नहीं था, उनकी संगीत उपलब्धियाँ स्थानीय रेडियो कार्यक्रमों के लिए बाँसुरी बजाने तक सीमित थीं। मैं जिन भी लोगों से मिला हूँ, उन्होंने आकाशवाणी के राष्ट्रीय संगीत कार्यक्रम पर भी उन्हें नहीं सुना। वह अपेक्षाकृत अनजान थे, जब तक कि हरिप्रसाद प्रसिद्ध नहीं हो गए। अब भी उनके विनम्र और समर्पित शिष्य हरिप्रसाद पं. भोलानाथ को अपनी सफलता का एक स्तंभ मानते हैं। 11 सितंबर, 2007 को हरिप्रसाद ने अपने स्वर्गीय गुरु को अनूठी श्रद्धांजलि अर्पित की। उन्होंने सरकारी अधिकारियों को तैयार किया कि

वे पं. भोलानाथ के गृह नगर वाराणसी में एक सड़क का नाम 'भोलानाथ प्रसन्ना, मार्ग रखें। यह हरिप्रसाद चौरसिया की विशेष शैली है। जब मैंने उनसे पूछा कि वह ऐसा कैसे कर पाए, तो उन्होंने एक खिलंदड़ी मुसकराहट के साथ जवाब दिया, ''वो हमारे गुरु थे। हमने प्यार से पूछा और वो लोग मान गए, बस।'' ये हैं हरिप्रसाद चौरसिया। वह हर किसी चीज को सरल और सहज बना देते हैं, बिलकुल अपने बाँसुरी-वादन की तरह।

ऑडिशन पास करने के बाद हरिप्रसाद ने शांतिमय घोष को संगीतकार के रूप में नौकरी दिलाने के वायदे की याद दिलाई। एक स्टाफ कलाकार की नौकरी में दो झंझट थे, एक तो सिर्फ एक वर्ष का अनुबंध और दूसरे शहरों में स्थानांतरण की संभावना। उस समय स्टाफ कलाकारों की दो रिक्तियाँ थीं, एक लखनऊ में और दूसरी कटक में। हरिप्रसाद ने लखनऊवाले के लिए अनुरोध किया, क्योंकि वह इलाहाबाद के नजदीक थे, जिससे जब चाहें, अपने पिता से मिलने जा सकते थे। वह जानते थे कि उनके पिता उनके बिना अकेले पड़ जाएँगे, इसलिए इलाहाबाद के पास रहना बहुत महत्त्वपूर्ण था, लेकिन शांतिमय घोष ने कटक की नौकरी हरिप्रसाद को दी और लखनऊ की नौकरी एक दूसरे बाँसुरी-वादक सुभाष राय को दी, शायद इसलिए, क्योंकि वह भी बंगाली थे। कम-से-कम हरिप्रसाद को उस समय तो यही महसूस हुआ।

पहलवान को संगीत में कैरियर बनाने के अपने पुत्र के प्रयासों के बारे में कुछ भी पता नहीं था। हरिप्रसाद ने इस बात का ध्यान रखा कि रेडियो स्टेशन के साथ सारा पत्राचार उनके ऑफिस के पते पर हो, घर पर नहीं। कटक रेडियो स्टेशन में नियुक्ति लेने का अनुबंध उनके ऑफिस पहुँचा, लेकिन हरिप्रसाद ने तब तक अपने पिता को न बताने का फैसला किया, जब तक जाने का समय पास नहीं आ जाता, ताकि उनके पिता इसमें कोई समस्या न उत्पन्न कर सकें। उनके पास एक महीने का समय था और हरिप्रसाद ने यह खबर सिर्फ लालजी साहू को दी। लालजी ने हरिप्रसाद को सलाह दी कि किसी प्रकार की समस्या से बचने के लिए वह अतिरिक्त जिला योजना कार्यालय को एक महीने का नोटिस दे दें।

हरिप्रसाद ने हमेशा एक शांत व छोटे शहर का जीवन जिया, इसलिए एक ओर अपने पिता, भाई, अपने दोस्तों और अपने शहर को छोड़ने का विचार उनके दिल को चुभ रहा था, जबकि दूसरी ओर 160 रुपए का वेतन और एक पूर्णकालिक संगीतकार बनने का सुनहरा मौका उन्हें लुभा रहा था, जिसकी उन्हें हमेशा से चाह थी, लेकिन उन्हें विश्वास नहीं था कि ऐसा हो सकता है। उनके दिमाग में कहीं पर यह आत्मविश्वास था कि अगर स्थितियाँ सही नहीं रहीं तो वह कभी भी इलाहाबाद लौट सकते हैं। उनके पिता और उनका शहर उन्हें इतना प्यार करता था कि खुली बाँहों से वापस उनका स्वागत करता। वह इतना सुनहरा अवसर था कि हरिप्रसाद उसे खो नहीं सकते थे, इसलिए उन्हें जिस दिन कटक पहुँचना था, उससे दो दिन पहले तूफान मेल में तीसरे दर्जे के कंपार्टमेंट में रेल आरक्षण करवाया। इलाहाबाद से कटक के लिए कोई सीधी रेल सेवा नहीं थी, इसलिए उन्हें पहले कलकत्ता जाकर वहाँ से कटक के लिए जगन्नाथ पुरी एक्सप्रेस पकड़नी पड़ी।

अपने प्रस्थान से दो दिन पहले उन्होंने अपने पिता को कैरियर के इस बड़े बदलाव के बारे में बताया।

''मुझे कटक में नई नौकरी मिल गई है, इसलिए मैं जल्दी ही जा रहा हूँ।''

''क्यों?तुम्हें यहाँ की नौकरी पसंद नहीं है?''

''नहीं, यह अलग नौकरी है। मुझे एक कलाकार, एक संगीतकार की नौकरी मिली है।''

''संगीतकार!तुमने संगीत कब सीखा?''

''ओह, वो कोई बड़ी बात नहीं थी। मेरे कुछ दोस्तों ने मुझे सिखा दिया।''

''यहाँ की स्टेनोग्राफर की नौकरी का क्या होगा?''

''मैंने उन्हें एक महीने का नोटिस दिया है, लेकिन अगर मुझे कटक की नौकरी पसंद न आई तो मैं कभी भी इस नौकरी पर लौट सकता हूँ। इसके अलावा, इस नौकरी में 160 रुपए मिलेंगे।''

हरिप्रसाद ने पहली बार अपने पिता की आँखों में आँसू देखे। यह सामान्य बात नहीं थी, क्योंकि पहलवान की भावनाएँ आसानी से दूसरों के सामने नहीं आती थीं।

''तुम सिर्फ ज्यादा पैसों के लिए मुझे छोड़कर जा रहे हो?तुम्हारी माँ की मृत्यु हो गई, तुम्हारी बहन की शादी हो गई और वह चली गई और अब तुम मुझे छोड़कर जा रहे हो, जबकि मैंने एक पिता और माँ बनकर तुम्हें पाला है!''

''मैंने उस नौकरी के लिए 'हाँ' कर दी है।''

''फिर तुम जितनी जल्दी-जल्दी हो सके, यहाँ आते रहना।''

पहलवान ने इस स्थिति पर अपने पहलवान मित्रों से बात की कि किसी ने उनके बेटे के दिमाग में संगीतकार बनने का वाहियात विचार डाल दिया है। कोई बाँसुरी बजाने के लिए टाइपिस्ट की नौकरी कैसे छोड़ सकता है और वह भी दूर कटक में? एकमात्र अच्छी चीज ऊँचा वेतन और राज्य सरकार की नौकरी से तरक्की करते हुए केंद्र सरकार की सम्मानित नौकरी में जाना था।

तूफान मेल से कलकत्ता जाते हुए हरिप्रसाद ने संतोष की साँस ली। उनकी किस्मत वाकई बहुत अच्छी थी। वह एक पहलवान के पुत्र थे, जिनका किसी-न-किसी दिन पहलवान बनना तय था। इसकी बजाय वह अच्छे वेतन के साथ स्टेनोग्राफर बन गए थे और राज्य सरकार के लिए काम कर रहे थे और अब अचानक वह संगीतकार के रूप में जीविका अर्जित करने कटक जा रहे थे, वह भी केंद्र सरकार के एक कर्मचारी के रूप में। उन्हें यकीन था कि उनकी माँ ऊपर कहीं से उनका ध्यान रख रही थीं, वरना इस तरह की चीजें कैसे होतीं?

तूफान मेल सुबह लगभग दस बजे कलकत्ता पहुँची। हरिप्रसाद ने अगले कुछ घंटे हावड़ा स्टेशन के आस-पास बिताए, प्रतीक्षा कक्ष में तरोताजा होकर रेलवे कैंटीन में खाना खाया और भांड कहे जानेवाले मिट्टी के सकोरों में अनगिनत बार चाय पी, जब तक कि शाम को पाँच बजे कटक के लिए जगन्नाथ पुरी एक्सप्रेस पकड़ने का समय नहीं हुआ।

वह कलकत्ता से रात भर की यात्रा थी और ट्रेन अगली सुबह पाँच बजे कटक रेलवे स्टेशन पर पहुँची। उस समय अँधेरा और बारिश थी। बादलों से घिरे आसमान के साफ होने का कोई संकेत नहीं था। हरिप्रसाद ने झमझमाती बारिश में एक साइकिल रिक्शा लिया और अपने छोटे से संदूक के साथ उस पर चढ़ गए। संदूक में उनके जरूरत की सभी वस्तुएँ और उनकी बाँसुरी थी। उस संदूक में बस उनकी प्रतिभा और ईश्वर-प्रदत्त फूँक नहीं थी, जो बाद में प्रसिद्ध हुई और हर बाँसुरी-वादक की ईर्ष्या का विषय बन गई। आज भी जब वह सत्तर के आस-पास पहुँचने वाले हैं, अपनी उम्र के अधिकतर बाँसुरी-वादकों से कहीं लंबे समय तक किसी सुर पर टिके रह सकते हैं।

''रेडियो स्टेशन?'' उन्होंने रिक्शेवाले से कहा।

''हूँ।''

''रेडियो! रेडियो!'' हरिप्रसाद ने कहा, ताकि रिक्शेवाले को समझ आए। उन्हें उड़िया का एक शब्द भी नहीं आता था और भारत में रेडियो स्टेशन के लिए कोई आम शब्द भी नहीं है। अचानक रिक्शेवाला मुसकराया और उसने सिर हिलाया। वे स्थायी गति से चलते रहे, क्योंकि सड़कें खाली थीं और हरिप्रसाद ने एक उनींदे कटक की पहली झलक देखी, जिस शहर से वह अपने शेष जीवन में जुड़े रहे।

'कटक' शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ है, सैन्य छावनी और साथ ही राजधानी। कटक का इतिहास अपने नाम को सार्थक करता है। यह शहर अपनी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण आरंभ में एक सैन्य छावनी था और बाद में उड़ीसा राज्य की राजधानी के रूप में विकसित हुआ। अनंग भीमदेव तृतीय के अभिलेखों में मूल शहर को अभिनव-वाराणसी-कटक कहा गया है। जिस प्रकार वाराणसी शहर को वरुण और असी के बीच स्थित होने के कारण यह नाम मिला है, कटक महानदी और कथाजोडी नदियों के बीच स्थित है, इसलिए पहले इसका नाम अभिनव वाराणसी (नई वाराणसी) रखा गया था। कटक पाँच गाँवों, यानी चौद्वार कटक, सारानसी कटक, सारंगगढ़ कटक, विरजा कटक और अमरावती कटक के स्थल पर एक शहर के रूप में विकसित हुआ।

हरिप्रसाद मधुपुर हाउस के गेट पर पहुँचे, जो स्वयंभू राजा, जो वास्तव में एक जमींदार था, का पूर्व आवास था और अब उसमें रेडियो स्टेशन चल रहा था। 28 जनवरी, 1948 को मधुपुर हाउस में रेडियो स्टेशन की स्थापना की गई। वह शहर के बीचोबीच था और इसलिए काफी कीमती संपत्ति थी। अंदर रिक्शा जाने की अनुमति नहीं थी, इसलिए चौकीदार ने गेट पर उन्हें रोक दिया, जहाँ हरिप्रसाद ने रिक्शेवाले को पच्चीस पैसे का किराया चुकाया। चौकीदार ने सवालिया नजरों से उन्हें देखा और उड़िया में कुछ कहा।

''मैं उड़िया नहीं बोलता।'' हरिप्रसाद ने कहा।

एक तेलुगु ड्राइवर दुभाषिए का काम करने के लिए बीच में आया, जिसके बारे में हरिप्रसाद को बाद में पता चला कि वह बहरामपुर का है।

''मैं इलाहाबाद से आया हूँ। मुझे यहाँ नौकरी मिली है।'' हरिप्रसाद ने कहा।

''कौन सी नौकरी?'' ड्राइवर ने पूछा।

''बाँसुरी बजाने की। यह रहा मेरा नियुक्ति-पत्र।''

चौकीदार ने पत्र की ओर देखा और सिर हिलाया।

''दस बजे वापस आना। अभी ऑफिस खुला नहीं है।''

''मेरे पास जाने के लिए कोई जगह नहीं है। मैं अभी-अभी इलाहाबाद से आया हूँ।''

संदूक उठाए हुए और पूरी तरह भीगे हुए अजनबी को देख चौकीदार ने उसे ड्यूटी ऑफिसर के कमरे तक पहुँचा दिया। ड्यूटी ऑफिसर ने भी अपने सामने खड़े शॉर्ट्स तथा बुशर्ट पहने युवक को संदेह से देखा, लेकिन जब उसने ऊपर 'ऑन इंडिया गवर्नमेंट सर्विस' वाला पत्र देखा तो संतुष्ट हो गया। हरिप्रसाद को अतिथि कक्ष दिखा दिया गया, जहाँ वह सो गए। लोग आते और जाते रहे, समाचारवाचक, सुबह के ब्रॉडकास्ट सत्रों के लिए संगीतकार, कैजुअल कलाकार और कर्मचारी। हरिप्रसाद अपनी उनींदी आँखें खोलकर देखते कि कौन आया और फिर से नींद में चले जाते।

आखिरकार ग्यारह बजे स्टेशन डायरेक्टर पी.वी. कृष्णमूर्ति आए। वह बहुत मधुरभाषी, संगीत के अत्यंत प्रेमी और श्रोता तथा प्रतिष्ठित संगीतकार थे। साथ ही एक अनुभवी अधिकारी भी थे, जिन्होंने बंबई और कलकत्ता में स्टेशन डायरेक्टर के रूप में काम किया था।

''आप चौरसिया हैं?'' उन्होंने पूछा।

''जी हाँ।''

''आप आज ही इलाहाबाद से आए हैं?''

''जी हाँ।''

''मैं देख रहा हूँ कि आप यहाँ स्टाफ कलाकार के रूप में काम करने आए हैं।''

''जी हाँ।''

''आपने कुछ खाया?''

''जी नहीं।''

उन्होंने कैंटीन के प्रभारी को बुलाकर पूछा कि खाने के लिए क्या उपलब्ध है। वहाँ सिर्फ पूड़ी और भाजी थी। उस समय हरिप्रसाद शाकाहारी थे और अधिकतर उड़िया मांसाहारी हैं।

''मेरे बाथरूम में जाकर फ्रेश हो लो, भोजन आ रहा है।''

हरिप्रसाद को तेज भूख लग रही थी। उन्होंने हाथ-मुँह धो लिया, लेकिन कपड़े नहीं बदले, क्योंकि उनके भीगे कपड़े अब तक सूख चुके थे और वह कृष्णमूर्ति के ऑफिस में अपना संदूक नहीं खोलना चाहते थे।

''आपके पास आपकी बाँसुरियाँ हैं?''

''मेरे पास एक बाँसुरी है।''

''सिर्फ एक बाँसुरी?''

''जी हाँ, लेकिन मैं उससे काम चला लूँगा।'' हरिप्रसाद ने कहा। वह किसी प्रकार की कमजोरी या अभाव का संकेत नहीं देना चाहते थे।

पी.वी. कृष्णमूर्ति ने अगला आधा घंटा हरिप्रसाद से उनके परिवार, उनकी संगीत की पृष्ठभूमि, वह किस तरह कटक आए और कहाँ रहेंगे, इस सबके बारे में पूछते हुए बिताया। ''आप जहाँ भी सुझाव देंगे, वहाँ रह लूँगा, सर, मुझे 160 रुपए का वेतन मिलता है, जिसका अधिकांश हिस्सा मेरे पिता के पास जाएगा।'' तीन या चार लोगों के साथ एक डोरमेटरी में 5 रुपए प्रति माह पर कटक में एक बिस्तर या खाट उपलब्ध था। पी.वी. कृष्णमूर्ति ने हरिप्रसाद को इस बारे में बताया, लेकिन उसी साँस में उसके खिलाफ सलाह भी दी, ''तुम नए हो, तुम यहाँ की भाषा भी नहीं जानते और तुम्हें यहाँ रास्ता खोजने में परेशानी होगी। किसी को इस बारे में बताना नहीं, लेकिन ऊपर लाइब्रेरी के बगल में एक स्टोररूम है। मैं उसे तुम्हारे इस्तेमाल के लिए साफ करा दूँगा, लेकिन बाथरूम नीचे है।''

महान् वायलिन वादक भुवनेश्वर मिश्रा।

उस कमरे को साफ करा दिया गया और हरिप्रसाद ऊपर चले गए। वह एक रोशनी और हवादार कमरा था, जिसके पीछे छत थी। एकमात्र समस्या शौचालय की थी। उन्हें साढ़े छह बजे तक अपना नहाना-धोना पूरा करना होता था, क्योंकि उसके बाद सुबह के प्रसारण सत्र के लिए कलाकार और उद्घोषक आने शुरू हो जाते थे। हरिप्रसाद जल्दी सो और उठ जाते थे। साढ़े छह बजे से पहले तैयार हो जाते, आकाणवाणी की कैंटीन में खाते और ड्यूटी पर पहुँच जाते।

वह बहुत भाग्यशाली थे कि उनके साथ सबकुछ अच्छा हो रहा था। कटक एक छोटा शहर था और वहाँ के लोग दोस्ताना थे। भारतीय शास्त्रीय संगीत के दिग्गजों के बीच रहना उनके लिए एक वरदान था, जो उन्हें प्रोत्साहित करते थे और विभिन्न संगीत विधाओं के प्रत्यक्ष संपर्क द्वारा उनका आत्मविश्वास बनाने में मदद करते थे। अगर पहली नियुक्ति पर उन्हें किसी बड़े शहर भेज दिया जाता तो शायद उनकी प्रतिभा को उस प्रकार बढ़ावा नहीं

मिलता, जैसा आकाशवाणी कटक में मिला।

भुवनेश्वर मिश्रा ने अपने संरक्षण में उन्हें ले लिया और वह हरिप्रसाद के सामने भारतीय शास्त्रीय संगीत के रहस्यों को सामने लानेवाले पहले लोगों में एक थे। वह एक महान् वायलिन वादक थे और ओडिसी नृत्य-संगीत का बाहरी दुनिया से परिचय कराने में अग्रणी रहे। उन्होंने कई ओडिसी नर्तकों/नर्तकियों और कोरियोग्राफरों के लिए संगीत दिया है, जिनमें ओडिसी नृत्य के महान् गुरु केलुचरण महापात्रा भी शामिल हैं और उनके संगीत को बहुत से लोगों द्वारा ओडिसी का जीवन-रक्षक माना जाता है। हरिप्रसाद उनके साथ काफी समय बिताते और अकसर उनके घर पर भोजन करते। वह ऐसी मित्रता थी, जिसकी चरम परिणति फिल्मों के लिए भुवन-हरि के ब्रांड नाम के अंतर्गत संगीत निर्देशकों के रूप में उनके संयुक्त उद्यम में हुई और यह मित्रता भुवनेश्वर मिश्रा के निधन तक जारी रही।

हरिप्रसाद की बंकिम पाल नामक एक बंगाली एसराज वादक से भी दोस्ती हुई, जिनको हरिप्रसाद को मांसाहारी में बदलने का श्रेय जाता है; क्योंकि उनके साथ ही हरिप्रसाद ने मछली और भात का पहला मांसाहारी भोजन किया। हरिप्रसाद अपने लिए एक जगह किराए पर लेने से पहले कुछ दिनों तक बंकिम पाल के घर में भी रहे।

गायक रमेश नादकर्णी और गुरुराव देशपांडे उनके दूसरे मित्रों व शुभचिंतकों में थे, जो भुवनेश्वर मिश्रा, बंकिम पाल और पी.वी. कृष्णमूर्ति के साथ मिलकर आकाशवाणी कटक का संगीत से संबंधित बुद्धिजीवी वर्ग बनाते थे।

वायलिन, सितार, सुरबहार, तबला और सारंगी बजानेवाले अन्य स्टाफ कलाकार थे; लेकिन बाँसुरी-वादक कोई नहीं था। हरिप्रसाद एक दुर्लभ वादक थे और उन्हें बाद में वहाँ होनेवाले लगभग सभी संगीत समारोहों में शामिल होना पड़ता था। उन्हें लगा, जैसे वह हवा में उड़ रहे हों। घर की सारी चिंता गायब हो गई। उनके पिता, उनके भाई-बहन और उनके मित्र, अब कोई भी कोई मायने नहीं रखता था। एकमात्र चीज जो महत्त्वपूर्ण थी, वह थी मौका मिलते ही बाँसुरी बजाना और एकमात्र व्यक्ति जो महत्त्वपूर्ण था, वह थे उनके परामर्शदाता पी.वी. कृष्णमूर्ति, जिन्होंने उन्हें रहने व खाने के लिए आकाशवाणी का प्रोपर्टी और रियाज करने के लिए किसी भी खाली स्टुडियो का इस्तेमाल करने की इजाजत देकर आकाशवाणी के सभी नियम 'तोड़ दिए' थे और सभी विरोधों को दरकिनार कर दिया था। आकाशवाणी के प्रशासन में किसी व्यक्ति के लिए इतना प्रतिभाशाली संगीतकार होना बहुत विरल था और वह भी, जो आपको पुत्र की तरह प्यार दे। हरिप्रसाद वाकई खुशकिस्मत थे।

एक दिन पी.वी.कृष्णमूर्ति ने हरिप्रसाद को भोजन पर बुलाया। डोसा और इडली के बाद उन्होंने सुझाव दिया कि हरिप्रसाद उनके ऑर्केस्ट्रा में बाँसुरी बजाएँ। पी.वी.कृष्णमूर्ति एक अतुलनीय क्षमतावाले संगीतकार थे और अत्यंत प्रतिभाशाली परिवार से संबंध रखते थे। उनके भाई पी.वी.सुब्रह्मण्यम, जिन्हें संगीत से जुड़े लोग प्यार से 'सुब्बोदो' कहते थे, 'द स्टेट्समैन' में संगीत एवं नृत्य समीक्षक थे। पी.वी. कृष्णमूर्ति ने महसूस किया कि जब तक उनके भाई उसमें शामिल हैं, वह कर्नाटक संगीत में सफल नहीं हो सकते, इसलिए उन्होंने ओडिसी नृत्य-संगीत और गीत में रुचि ली। हारमोनियम के साथ शुरू करते हुए उन्होंने यामाहा की-बोर्ड सीखा और वह घटम भी बजा सकते थे। ए.आई.आर., कलकत्ता के स्टेशन डायरेक्टर के रूप में उनके गीतों को संध्या मुखर्जी, मानवेंद्र मुखर्जी, आरती मुखर्जी और निर्मला मिश्रा जैसे प्रसिद्ध बंगाली गायकों ने लोकप्रिय रेडियो कार्यक्रम 'ए माशेर गान' में गाया।

आकाशवाणी केंद्र, कटक में ऑर्केस्ट्रा बजवाते हुए।

उन्होंने सन् 1956 से 1960 तक स्टेशन डायरेक्टर कटक के रूप में काम किया और हरिप्रसाद 1957 से लेकर 1962 तक वहाँ रहे। उसी समय हरिप्रसाद की शास्त्रीय संगीत विशेषज्ञता ने आकार लेना शुरू किया। पी.वी. कृष्णमूर्ति संगीत में बहुत सक्रिय थे और अपने लोगों को काफी प्रेरित करते थे तथा उनसे उसी तरह का संगीत निकाल लेते थे, जैसा वह चाहते थे। वह की-बोर्ड पर गाना बजाते हुए या उसे गाते हुए या घटम पर लय बताते हुए उन्हें प्रेरणा देते थे। उन्होंने ही सुझाव दिया कि हरिप्रसाद संगीत देने में हाथ आजमाएँ।

हरिप्रसाद ने छोटे-छोटे टुकड़ों से शुरू किया, जो उन जगहों पर बजाए जाते थे, जब गायक साँस लेने के लिए रुकते थे। गायकों को वह पसंद आया और उन्होंने दूसरे गायकों से उनके बारे में बात करना शुरू कर दी। धीरे-धीरे, लेकिन स्थायी रूप से हरिप्रसाद की संगीत रचनाएँ लंबी होने लगीं और एक दिन पी.वी.कृष्णमूर्ति इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने हरिप्रसाद को 'संगीतकार' श्रेणी में ऑडिशन देने के लिए कहा। हरिप्रसाद ने बिना किसी बाधा के यह ऑडिशन पास कर लिया और अब बाँसुरी बजानेवाले स्टाफ कलाकार के अलावा उनके पास संगीतकार का भी पद था। वेतन में बढ़ोतरी जरा सी थी, लेकिन स्टेटस और सम्मान में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। पी.वी. कृष्णमूर्ति की अनुपस्थिति में अकसर उन्हें लोकगीत और दूसरी हलकी विधाओं के लिए संगीत देते देखा जा सकता था।

''पंडितजी, आप इतनी कम उम्र में कैसे संगीतकार और स्टाफ कलाकार बन गए और वह भी किसी नियमित मार्गदर्शन या औपचारिक प्रशिक्षण के बिना, जबकि आपको पाश्चात्य नोटेशन पढ़ना और लिखना भी नहीं आता था?'' मैंने उनसे पूछा।

उन्होंने विनम्रता से जवाब दिया, ''सिर्फ इसलिए, क्योंकि पी.वी. कृष्णमूर्ति ने मुझे इसके लिए प्रेरित किया। उन्होंने मेरे अंदर से बेहतरीन प्रतिभा को बाहर निकाला। उन्हें ईश्वर ने मेरे लिए भेजा था।''

''लेकिन तरक्की करने के लिए संगीत की एक अंतर्भूत प्रतिभा भी होनी चाहिए, क्यों?'' मैंने पूछा।

''हाँ, वह मेरी माँ का आशीर्वाद है।''

हरिप्रसाद की पहली एकल संगीत रचना श्यामल मित्रा द्वारा गाया गया एक उड़िया गीत 'आजी पाहो ना राती' था जिसमें राधाकांत नंदी ने तबला पर साथ दिया था। वह पूरे उड़ीसा राज्य में एक हिट गीत हो गया था और समीक्षकों ने उनकी बहुत सराहना की। पी.वी. कृष्णमूर्ति और भुवनेश्वर मिश्रा नृत्य-गायन और नृत्य-नाटिकाओं (महान् गुरु केलुचरण महापात्र द्वारा तैयार रचनाओं समेत) के लिए संगीत तैयार करते थे। लगभग हमेशा हरिप्रसाद इसमें शामिल होते थे और ऑर्केस्ट्रा के बहुत महत्त्वपूर्ण अंग होते थे। पी.वी. कृष्णमूर्ति ने तलत महमूद और प्रसिद्ध संगीतकार अनिल बिस्वास की पत्नी मीना कपूर द्वारा गाए गए युगल गीत 'निरुलाए राते' का संगीत भी दिया था। हरिप्रसाद की प्रतिभा को उभारने के लिए पी.वी. कृष्णमूर्ति ने एक बाँसुरी सोलो भी उसमें रखा, जिसमें हरिप्रसाद ने बहुत अच्छी प्रस्तुति दी। पहले से विख्यात गायक तलत महमूद, जो एक महान् गायक बनने की दिशा में अग्रसर थे, बाँसुरी की उस धुन से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने हरिप्रसाद से कहा कि वह जब भी बंबई आएँ तो उनसे मिलें। यह बंबई के सिनेमा से जुड़े लोगों की दुनिया से हरिप्रसाद का पहला परिचय था। वैसे वह एक असंतोषजनक परिचय साबित हुआ, क्योंकि जब आखिरकार सन् 1962 में हरिप्रसाद तलत महमूद से मिले, तब तक वह महान् गायक हरिप्रसाद और ए.आई.आर. कटक सत्र के बारे में सबकुछ भूल चुके थे।

'50 के दशक में कटक शास्त्रीय नृत्य का एक उत्तम केंद्र था। उस हिसाब से संगीत अपने आप में एक परफॉर्मिंग आर्ट के रूप में उड़ीसा में स्थापित नहीं था, उसे सिर्फ अत्यंत लोकप्रिय नृत्य नाटिकाओं के सहयोगी के

रूप में स्वीकार किया जाता था। उनके कटक आने के लगभग डेढ़ महीने बाद से लोगों ने उस युवा बाँसुरीवादक पर ध्यान देना शुरू किया, जो त्रुटिहीन और सहज तरीके से बजाता था। रेडियो स्टेशन का एकमात्र बाँसुरीवादक होने के कारण वह कटक में छा गए। वहाँ चार बड़े नृत्य संस्थान थे, कला विकास केंद्र, संगीत समाज, नेशनल म्यूजिक एसोसिएशन और उत्कल समाज। इन सभी ने अपने नृत्य कार्यक्रमों में बाँसुरी का स्वर देने के लिए उनसे संपर्क किया। इन संस्थानों के विद्यार्थियों के हाथ में सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा आयोजित किए जानेवाले काफी शो होते थे। वह सभी के लिए माँग में रहते थे, क्योंकि दूसरा कोई बाँसुरीवादक उपलब्ध नहीं था। वह रेडियो स्टेशन की नृत्य कार्यक्रमों की माँगों के बीच एक थकाऊ शिड्यूल था। साथ ही वह काफी चुनौतीपूर्ण और आर्थिक रूप से अत्यंत लाभप्रद था। वह सही समय पर सही स्थान पर थे। उन्हें प्रति शो बीस से तीस रुपए तक मिलते थे और बाहर के शो न लेने के बावजूद उनके हाथ भरे होते थे। बाहर के शो न लेने की वजह अपनी नियमित नौकरी से समय न निकाल पाना था। शुरू में उन्होंने सिर्फ ऑर्केस्ट्रा में बजाया, कोई सोलो शो नहीं किए, लेकिन जैसे-जैसे अधिक-से-अधिक लोगों ने उन्हें सुना, उन्हें सोलो परफॉर्मेंसों के लिए भी ऑफर आने शुरू हो गए। कुछ महीनों में वह इतने व्यस्त हो गए कि रेडियो स्टेशन के अंदर से अधिक समय उसके बाहर बिताने लगे।

ऑल इंडिया रेडियो में भी हर कोई उनकी बाँसुरी की सुमधुर ध्वनि, उनकी फूँक और उनकी प्रतिभा पर मुग्ध था। उन्होंने ओडिसी संगीत की बारीकियाँ तत्परता से और सहजता से सीख लीं, ''अगर एक दक्षिण भारतीय इसे सीख सकता है तो मैं क्यों नहीं, सर?'' एक बार उन्होंने पी.वी. कृष्णमूर्ति से कहा।

उस कम उम्र में हरिप्रसाद की सबसे अद्‌भुत उपलब्धियों में से एक थी, अपनी एकमात्र बाँसुरी के साथ किसी भी विधा और किसी भी पिच में किसी का भी साथ देने की क्षमता। हर बाँसुरी को एक खास स्केल या की में ही बजाने के लिए बनाया जाता है। स्केल बदलने के लिए आपको बाँसुरी बदलने की जरूरत पड़ती है। अष्ट सुर में सभी बारह स्वरों के लिए संगीतकारों को बारह बाँसुरियों की जरूरत पड़ती है। एक प्राकृतिक वस्तु होने के कारण बाँस की एक और समस्या है—जलवायु में बदलावों, बाँसुरी की उम्र और वातानुकूलन के साथ बाँसुरी का पिच भी बदल जाता है। इन बदलावों का सामना करने के लिए प्रोफेशनल स्टुडियो संगीतकारों को अकसर एक ही स्केल की एक से अधिक बाँसुरियाँ रखनी पड़ती हैं। हरिप्रसाद अपनी बाँसुरी के किसी भी छिद्र से ऑक्टेव शुरू कर सकते थे और माइक्रोटोनल बदलावों के लिए तथा बाँसुरी का बाकी ऑर्केस्ट्रा के साथ तालमेल बिठाने के लिए अपने सिर को आगे या पीछे की ओर घुमाते। पाश्चात्य संगीत की शब्दावली में उसे 'टोनिक शिफ्ट करना' कहते हैं। सिर्फ एक असली बाँसुरी वादक ही इसका पूरा अर्थ समझ सकता है या इसे प्राप्त करने के लिए अपेक्षित विशेषज्ञता और सक्षमता की सीमा को समझ सकता है। हरिप्रसाद उस समय सिर्फ उन्नीस वर्ष के थे और उनका बाँसुरी-वादन अभी-अभी शौक से पेशे में बदला था। पी.वी. कृष्णमूर्ति याद करते हैं, ''टोनिक शिफ्ट करना हरि के लिए बच्चों का खेल था, जबकि यह काफी अनुभवी बाँसुरी-वादकों के लिए भी लगभग असंभव काम होता है।''

ढाई वर्षों तक असंख्य रेडियो और मंच कार्यक्रमों से होकर गुजरने के बाद हरिप्रसाद ने आखिरकार पी.वी. कृष्णमूर्ति से बाँसुरियों के सेट की व्यवस्था करने के लिए कहने का साहस जुटाया। उन्हें भरोसा था कि अब उनका काम पसंद किया जा रहा है और चाहे बारह बाँसुरियों का सेट उन्हें न दिया जाए, कम-से-कम उनकी माँग करने पर उन्हें अक्खड़ या बदतमीज नहीं माना जाएगा। पी.वी. कृष्णमूर्ति को यह अनुरोध स्वीकार करने में कोई समस्या नहीं थी। उन्हें खुद अकसर हैरत होती थी कि हरिप्रसाद ने इतने लंबे समय तक सिर्फ एक बाँसुरी से कैसे काम चलाया। उन्होंने तुरंत कलकत्ता के ए.आई.आर. स्टेशन फोन करके उनके वेंडर से बाँसुरियों का एक सेट भेजने को कहा। हरिप्रसाद खुश हुए कि बाँसुरियाँ रिकॉर्ड समय में आ गईं। वह इसे पी.वी.कृष्णमूर्ति की उदारता मानते हैं,

जबकि पी.वी. कृष्णमूर्ति इसे सरकारी पैसे का अच्छा उपयोग मानते हैं।

उड़ीसा में एक संगीतकार के रूप में पी.वी. कृष्णमूर्ति की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल चुकी थी। यहाँ तक कि जब भुवनेश्वर में किसी सरकारी कार्यक्रम के लिए संगीत की जरूरत होती तो गवर्नर भी उनके तथा उनके ग्रुप की माँग करते। पी.वी. कृष्णमूर्ति, हरिप्रसाद तथा अन्य संगीतकारों को लाने के लिए उनके द्वारा एक बस भेजी जाती। कैटरिंग का अनुबंध लगभग हमेशा एक राजू नामक व्यक्ति को दिया जाता, जिसका राजमहल चक में एक होटल था। भुवनेश्वर एक कस्बा था, जो अब भी शहर बनने की प्रक्रिया में थे। हर कोई हर किसी को जानता था और गवर्नर द्वारा परफॉर्म करने के लिए आमंत्रित किया जाना अत्यंत सम्मान का विषय था।

इसके अलावा हरिप्रसाद सोलो परफॉर्म करने या नृत्य-नाटिकाओं और ऑर्केस्ट्रा में व्यस्त थे। उनका पूरे वर्ष का कार्यक्रम व्यस्त था, जिसकी वजह से वह अकसर कटक से बाहर ही रहते थे, जो पी.वी. कृष्णमूर्ति के जूनियरों के असंतोष और ईर्ष्या का विषय था। बारीपद, मयूरभंज, बालेश्वर, हीराकुड और संबलपुर कुछ ऐसे स्थान थे, जहाँ हरिप्रसाद ने अपना डंका बजा दिया।

उड़ीसा के आरंभिक संगीत समारोहों में से एक कटक में हरिप्रसाद के कार्यकाल के दौरान आयोजित हुआ। उस कार्यक्रम का आयोजन एक कलकत्तावासी द्वारा किया गया था और भुवनेश्वर से लगभग बीस किलोमीटर दूर एक बड़े हॉल में आयोजित था। परफॉर्म करनेवालों की सूची में बड़े-बड़े शास्त्रीय संगीतकार थे। बाबा अलाउद्दीन खाँ, रवि शंकर, अली अकबर खाँ और कानन साहिब ने इसमें भाग लिया था। किसी ने सुझाव दिया कि हरिप्रसाद बाँसुरी बजाएँ, क्योंकि वहाँ कोई दूसरा बाँसुरी-वादक नहीं था। तब तक किसी ने हरिप्रसाद को शुद्ध शास्त्रीय संगीत बजाते नहीं सुना था। इससे पहले उन्होंने बस रेडियो प्रसारणों के बीच फिलर बजाया था। यह उनके लिए एक महान् अवसर और चुनौती थी।

''वहाँ बहुत से महान् परफॉर्मर होंगे, इसलिए आपको अच्छी तैयारी करनी होगी।'' उन्हें पहले ही चेता दिया गया था। हरिप्रसाद को लगता कि वह उनकी 'अग्नि परीक्षा' थी। उन्हें तिथि और समय के बारे में काफी पहले सूचित कर दिया गया था, इसलिए वह पहले से तैयारी में जुट गए। मार्गदर्शन के लिए कोई गुरु न होने के कारण उन्होंने आकाशवाणी कटक की संगीत लाइब्रेरी का सहारा लेने का फैसला किया। सभी महान् उस्ताद वहाँ 78, 45 और $33\frac{1}{3}$ आर.पी.एम. रिकॉर्ड पर थे और बड़े स्पूल टेपों पर, जो अब अतीत की बात बन चुके हैं। उन्होंने स्टूडियो के इंजीनियरों को बताने को कहा कि रिकॉर्ड और स्पूल कैसे बजाने हैं। अगले कुछ सप्ताह उन्होंने लगातार सुना और रियाज किया। अजीब बात यह कि उन्होंने लाइब्रेरी में मौजूद हर शास्त्रीय गायक और वादक को सुना, लेकिन बाँसुरी-वादकों को नहीं। इनायत खाँ, विलायत खाँ, रवि शंकर, बाबा अलाउद्दीन खाँ, अली अकबर खाँ, बुंदू खाँ और राम नारायण उनके पसंदीदा कलाकारों में थे। जब उनसे पूछा गया कि उन्होंने बाँसुरी-वादकों को क्यों नहीं सुना, तो उन्होंने स्पष्ट किया, ''उस युग के बाँसुरी-वादकों की बाँसुरी बजाने की एक पारंपरिक शैली थी। वह खयाल गायन की थी। मैं उनके जैसा नहीं बजाना चाहता था, इसलिए उनके संगीत से प्रभावित नहीं होना चाहता था। शुरुआत से ही मैं अपनी एक शैली बनाना चाहता था, इसलिए मैंने दूसरे वादकों को यह समझने के लिए सुना कि वे अपने संगीत से क्या अभिव्यक्त करने की कोशिश कर रहे थे।'' रेडियो प्रसारण समय सुबह छह से ग्यारह और फिर शाम को पाँच से नौ बजे तक था। हरिप्रसाद ने दोपहर के ब्रेक का फायदा उठाया और किसी भी खाली उपलब्ध स्टुडियो में खुद को बंद करके लगातार घंटों तक रियाज करते। इतनी देर में वह पसीने से तर-बतर हो जाते। उन्हें अपनी पहचान बनानी थी। बाँसुरी ने ही उन्हें अपना घर-परिवार छोड़ने के लिए विवश किया था और बाँसुरी ने ही आखिरकार उन्हें ख्याति, कामयाबी और कला-संतुष्टि दिलाई।

आखिरकार बड़ा दिन आया। हरिप्रसाद और दूसरे लोगों को बस से कार्यक्रम स्थल तक ले जाया गया। सभी महान् संगीतकारों को देखकर उन्हें काफी घबराहट हुई; लेकिन साथ ही उनसे मिलने और उनके बीच होने की एक ख़ुशी भी थी। वह धीरे-धीरे, लेकिन मजबूती से राग और लय की चमत्कारी दुनिया का हिस्सा बनते जा रहे थे। आयोजकों ने हरिप्रसाद से पूछा कि क्या वह कनई दत्ता या उस्ताद करामतुल्लाह द्वारा तबले पर संगत पसंद करेंगे? बाईस वर्षीय हरिप्रसाद ने विनम्रता से जवाब दिया, ''मैं तो बहुत छोटा हूँ। करामतुल्लाह खाँ साहब जैसे बड़े उस्ताद मेरे साथ कैसे बजाएँगे?'' उस्ताद ने यह सुना और मुसकराते हुए हरिप्रसाद की ओर मुड़े, ''क्यों नहीं? मैं बिलकुल तुम्हारे साथ संगत करूँगा।''

वह तबला उस्ताद की अत्यंत उदारता थी और जब वे मंच पर पहुँचे तो हर किसी को फर्रुखाबाद घराने के महान् उस्ताद को एक कम उम्र युवक, जिसे पहले किसी ने नहीं सुना था, के साथ देखकर सुखद आश्चर्य हुआ। आगे की पंक्ति में बैठे संगीतकारों और मंच पर ठीक उनके पीछे बैठे महान् संगीतकार से प्रेरित होकर हरिप्रसाद ने अपनी ओर से बेहतरीन प्रस्तुति दी। उनकी खुशकिस्मती से बाहर बारिश हो रही थी, इसलिए दर्शकों के पास उन्हें सुनने के अलावा कोई चारा नहीं था। वहाँ स्वर्ग-सा समाँ बँध गया। हर कोई इस बच्चे के बारे में जानना चाहता था, जिसने बाँसुरी बजाई थी। उन्हें याद नहीं है कि उन्होंने कौन सा राग बजाया था, लेकिन हॉल के अंदर धूम्रपान की अनुमति थी, इसलिए उन्हें बस धुआँ और तालियाँ याद हैं।

लगभग एक वर्ष बाद हरिप्रसाद ने एक अन्य संगीत उत्सव, संभलपुर सम्मेलन में बाँसुरी बजाई, जहाँ पर कलकत्ता के प्रसिद्ध गायक पं. चिन्मय लाहिरी अपनी कला का प्रदर्शन करने वाले थे। वह सन् 1959 की शुरुआत की बात है। हरिप्रसाद और भुवनेश्वर मिश्रा को आकाशवाणी कटक द्वारा वहाँ भेजा गया। कनाई दत्ता द्वारा तबले पर संगत के साथ उन्होंने बाँसुरी और वायलिन की एक सम्मोहक जुगलबंदी पेश की, जो शायद अपनी तरह की पहली पेशकश थी, इसलिए उनकी नवीनता बहुत सुखद थी। वह ऐसा फॉरमेट था, जिसे हरिप्रसाद ने दशकों बाद पं. वी.जी. जोग के साथ बजाते हुए दोहराया।

अगले दिन रंगों का त्योहार होली थी। कनाई दत्त, चिन्मय लाहिरी, हरिप्रसाद और भुवनेश्वर मिश्रा सब लोगों ने खूब भाँग चढ़ाई। उन्हें एक खुली ड्राइवर-चालित जीप दी गई, जिसमें उन्हें ग्रामीण इलाके की ओर जाना था। दुबला-पतला छोटा सा जीप ड्राइवर, जो खुद भी भाँग के नशे में चूर था, ने सुझाया कि उन्हें हुमा नामक जगह पर जाना चाहिए। वह नदी के किनारे स्थित एक खूबसूरत जगह थी। आप वहाँ के स्थानीय लोगों से कुछ मछली का चारा खरीद सकते थे और ढेर सारी मछलियों को उसे चुगते देख सकते थे। वह संभलपुर से लगभग तीस किलोमीटर दूर था, जहाँ सिर्फ एक धूल भरे रास्ते से जाया जा सकता था, जो सड़क के लेबल से कई फीट नीचे धान के बड़े-बड़े खेतों से होकर जाता था। ड्राइवर और पं. चिन्मय लाहिरी सामने बैठे, जबकि हरिप्रसाद, भुवनेश्वर मिश्रा और कनाई दत्ता पीछे बैठे और सुबह जल्दी नाश्ता करके सब निकल पड़े। अचानक जीप सड़क से लुढ़की और खेतों में लगभग तीस फीट तक फिसलकर टेढ़ी हो गई। उसमें बैठे अधिकतर लोग बाहर गिर पड़े। चिन्मय लाहिरी का सफेद कुरता और धोती कीचड़ में मटमैले हो गए। सब जीप के आस-पास इकट्ठा हुए, अपनी चोटों का निरीक्षण करते हुए पाया कि ड्राइवर ब्रेक पर पैर जमाए हुए और अब भी हाथों से स्टीयरिंग व्हील को पकड़े हुए गहरी नींद में सो रहा था। उसे भाँग का इतना तेज नशा था कि वह बेहोश हो गया था। उनकी किस्मत अच्छी थी कि सड़क पक्की नहीं थी और खेत में हाल में सिंचाई की गई थी, जिसकी वजह से किसी की हड्डियाँ नहीं टूटीं, सिर्फ खरोंचें आईं और गीली मिट्टी से सन गए। आस-पास कोई नहीं था, क्योंकि अधिकांश गाँववाले होली खेलने के लिए बड़े शहर गए हुए थे। उन्हें कुछ घंटे इंतजार करना पड़ा, जब कुछ गाँववाले उधर से गुजरे। कीचड़

में लिपटी जीप को देखते हुए वे मदद के लिए एक नजदीकी गाँव में गए। लगभग तीस गाँववालों ने मिलकर जीप निकाली और उसे वापस सड़क पर लाए, तब तक दोपहर हो चुकी थी। स्पष्ट था कि आयोजक काफी चिंतित थे। अपनी जीप के साथ संगीतकारों के लिए भी।

कलकत्ता में परफॉर्म करने का पहला अवसर भी हरिप्रसाद को कटक में रहते हुए मिला। पं. विजय किचलू ने कलकत्ता म्यूजिक सर्कल आरंभ किया था, जो वर्ष में कुछ बार संगीत समारोह आयोजित करता था। हरिप्रसाद को एक समारोह में बाँसुरी बजाने के लिए आमंत्रित किया गया। उन्हें मंच का उतना अनुभव नहीं था, लेकिन वह हमेशा एक्सपोजर और नई जगह बजाने के अवसर के लिए तत्पर रहते थे। अगर शुरुआती शाम का समय होता, तो वह राग भीमपलासी या मारवा बजाते और अगर देर शाम का समय होता तो वह राग यमन या विहाग बजाते। चूँकि उन्हें किसी सुबह के कॉन्सर्ट में नहीं बुलाया जाता था, इसलिए वह सुबह के रागों पर अधिक ध्यान नहीं देते थे। ऐसा नहीं है कि सुबह कॉन्सर्ट नहीं होते थे, लेकिन वहाँ परफॉर्म करने के लिए सिर्फ बड़े उस्तादों को बुलाया जाता था।

वह कार्यक्रम किसी के घर पर था और यहीं पर वह पहली बार उस्ताद आमिर खाँ से मिले। वह एक जीवित किंवदंती थे, जो अपने आखिरी दिनों में कलकत्ता में रह रहे थे। हरिप्रसाद तब अवाक् रह गए जब आमिर खाँ उनके पास आए और कहा, ''चौरसिया, मैं तुम्हें सुनने आया हूँ और मैं इसे भी अपने साथ लाया हूँ।'' उन्होंने अपने साथ आई एक छोटी सी लड़की की ओर इशारा किया। वह थी कोंकणा बनर्जी, जो एक दिन कलकत्ता की सबसे प्रसिद्ध गायिका बनीं। युवा हरिप्रसाद के लिए यह प्रशंसा के सबसे महान् शब्द थे, जिसकी उन्होंने कभी उम्मीद नहीं की थी। आमिर खाँ, जिस व्यक्ति की आवाज देश भर के श्रोताओं और समीक्षकों को मंत्रमुग्ध करती थी, वह उसे सुनने आए थे।

कलकत्ता में पहले कॉन्सर्ट ने तुरंत अगले को प्रेरित किया। 10 चौरंगी रोड, जिसे अब जवाहरलाल नेहरू रोड कहा जाता है, पर स्थित भारतीय संस्कृति संसद् नामक एक संगठन का कोई सदस्य दर्शकों में उपस्थित था। उसने प्रथम तल पर अपने छोटे से ऑडिटोरियम में परफॉर्म करने के लिए उन्हें बुक कर लिया। वह इस शहर में जीवन भर प्रस्तुतियों की झड़ी की शुरुआत थी।

हरिप्रसाद का व्यस्त कार्यक्रम अकसर उन्हें एक साथ लगातार दस दिनों जैसे लंबे समय तक कटक के बाहर रखता था। आकाशवाणी के कर्मचारियों के लिए यह एक सरकारी कर्मचारी का कानूनी रूप से अस्वीकार्य व्यवहार था। व्यक्तिगत स्तर पर यह भी उतना ही अस्वीकार्य था कि एक बाहर के युवक ने इतने कम समय में अपने लिए इतनी ख्याति अर्जित कर ली और सरकार द्वारा दिए जा रहे वेतन से कई गुना अधिक कमा रहा था। साथ ही हरिप्रसाद की प्रसिद्धि और आउट स्टेशन प्रतिबद्धताओं के अनुपात में स्टेशन डायरेक्टर की मेज पर शिकायत-पत्रों का अंबार लगना शुरू हो गया। यह तथ्य भी उनके गले नहीं उतरा कि अब उसके पास एक अच्छा घर था, वह उनकी तरह मछली भात खाता था, अच्छी उड़िया बोलता था, जिसे हर क्षेत्र के लोग पसंद करते थे और उसे एक स्थानीय व्यक्ति के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। उनके गुरु और गॉडफादर पी.वी. कृष्णमूर्ति ने उन्हें बचाने की हर संभव कोशिश की, लेकिन जब उनका कटक से बाहर स्थानांतरण हो गया तो हलकी भूनभुनाहटें बड़ी गरज में बदल गईं।

पी.वी. कृष्णमूर्ति की क्षमताओं ने उनके कैरियर को तेज सफलता दिलाई और आखिरकार वह सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के प्लानिंग फोरम के सदस्य बन गए। उन्हें दूरदर्शन का पहला महानिदेशक नियुक्त किया गया। दूरदर्शन पूरी तरह भारत सरकार के स्वामित्ववाला विशाल भारतीय टेलीविजन नेटवर्क था। वास्तव में उनके

निदेशक रहते हुए ही दूरदर्शन का प्रसिद्ध मुख्यालय मंडी हाउस मंडी के राजा से ले लिया गया। यह कहने की जरूरत नहीं कि राजा से मंडी हाउस को हासिल करने का अरुचिपूर्ण कार्य उन्हें सौंपा गया था। पी.वी. कृष्णमूर्ति हमेशा से हरिप्रसाद की प्रतिभा के प्रशंसक रहे हैं। वह अब चेन्नई में रहते हैं और जब मैंने फोन पर उनसे संपर्क किया तो उन्होंने बहुत विनम्रता से बात की।

''हरिप्रसाद के कैरियर में मेरा इकलौता योगदान यह था कि मैंने उनकी प्रतिभा को पहचाना और उसे फलने-फूलने के लिए सही वातावरण दिया। उनके अंदर प्रतिभा दबी हुई थी और हमने सिर्फ उसे बाहर निकालने में मदद की। मैं बस स्टेशन डायरेक्टर के रूप में अपना काम कर रहा था।'' उन्होंने कहा। हरिप्रसाद ने हमेशा पी.वी. कृष्णमूर्ति को अपना मार्गदर्शक और गुरु, अपना भगवान् माना है। चेन्नई में म्यूजिक एकेडमी या कृष्ण गान सभा जैसी जगहों पर दर्शकों में उन्हें देखते हुए हरिप्रसाद कभी भी उनकी उपस्थिति की घोषणा करना और सार्वजनिक रूप से उनका ऋण मानना नहीं भूले हैं।

सन् 1960 में किसी समय पी.वी.कृष्णमूर्ति का स्थानांतरण कर दिया गया। नए स्टेशन डायरेक्टर न तो हरिप्रसाद को व्यक्तिगत रूप से जानते थे, न ही उनमें उन्हें कोई प्रतिभा दिखी, जिसे पी.वी. कृष्णमूर्ति ने पहचाना था। इसलिए उनके पास हरिप्रसाद की लंबी और अस्पष्ट अनुपस्थितियों को माफ करने की कोई वजह नहीं थी। वहाँ दूसरी ईर्ष्यालु ताकतें भी थीं, जिस पर हम बाद में आएँगे; लेकिन सन् 1962 में हरिप्रसाद को एक अल्टीमेटम दिया गया कि वे या तो ऑल इंडिया रेडियो को छोड़ दें या बंबई स्थानांतरण स्वीकार करें। महाराष्ट्र राज्य और बेरोजगारी के बीच झूलते हरिप्रसाद ने गंभीरता से अपनी नौकरी छोड़ने और उन नृत्य संस्थानों में, जो खुली बाँहों से उनका स्वागत कर रहे थे या स्वतंत्र संगीतकार के रूप में काम करने पर विचार किया। कटक के उनके मित्रों ने उन्हें अलग सलाह दी, ''आपके पास अपना गृह-नगर इलाहाबाद छोड़ने और यहाँ आने का साहस था। बंबई कितना बुरा होगा? नृत्य संस्थान कहीं नहीं जा रहे हैं। बंबई को एक मौका दो। यदि आपको वह पसंद नहीं आता तो आप वापस लौट सकते हो।'' उन्होंने सलाह दी।

अच्छी बात यह थी कि बड़े शहरों के लिए बढ़े हुए भत्तों के साथ उनका वेतन अब 250 रुपए हो जाता। काफी सोच-विचार के बाद उन्होंने बंबई स्थानांतरण स्वीकार करने का फैसला किया।

फैसला करते समय हरिप्रसाद के मन में बहुत से विचार आते रहे। अगर वह जगह पसंद न आई तो?क्या नृत्य संस्थान उन्हें वापस स्वीकार करेंगे?बंबई के लोग यह जानते हुए कि उनका स्थानांतरण मूल रूप से एक सजा है, उनसे कैसा व्यवहार करेंगे?वह इस वेतन में इतने बड़े शहर में कैसे गुजारा चला पाएँगे?वह या तो उनके किराए या उनके भोजन के लिए पर्याप्त होगा। अगर वह सड़क किनारे भी रह लें तो अपने पिता को पैसे कैसे भेजेंगे?फिर भी कुछ दूसरे विचारों ने उन्हें बंबई की ओर जाने के लिए प्रेरित किया। बंबई में भी केंद्र सरकार की नौकरी क्या बेरोजगारी से अच्छी नहीं थी?कितना अच्छा रहेगा, अगर वह वहाँ स्टुडियो में सभी महान् संगीतकारों से मिल पाएँ। अगर उन्हें कुछ फिल्मी सितारों से मिलने का मौका मिले तो? यह निश्चित रूप से एक छोड़नेवाला अवसर नहीं था।

हरिप्रसाद फिल्म 'सूरजमुखी' के एक उड़िया गीत की रिकॉर्डिंग के लिए पहले भी बंबई गए थे। वह गीत भारत की सर्वश्रेष्ठ गायिका लता मंगेशकर द्वारा गाया गया था, जिन्होंने सिनेमा-प्रेमियों की तीन पीढ़ियों के दिल और कानों को जीत रखा है। बंबई में उन्होंने अपना पहला हिंदी फिल्मी गीत रिकॉर्ड किया, वह भी लता मंगेशकर ने ही गाया था। वह गीत था, फिल्म मनमौजी का 'मैं तो तुम सँग नैन मिला के हार गई सजना'। हालाँकि यह फिल्म असाधारण हिट नहीं रही, इस गीत को देश भर के दर्शकों द्वारा खूब पसंद किया गया। लता मंगेशकर को

हरिप्रसाद के साथ वह पहली मुलाकात अच्छी तरह याद है, ''हरिजी और संगीतकारों का पूरा समूह तथा संगीत निर्देशक उड़ीसा से आए थे। उन्होंने बजाना बंद किया और मुझे संगीत पर अपनी आवाज रिकॉर्ड करनी थी। उन्होंने मुझसे कहा कि वह कटक रेडियो स्टेशन के लिए काम करते हैं, लेकिन बंबई आना चाहते हैं। उन्होंने मुझसे सलाह माँगी कि इसके लिए क्या करना चाहिए।'' यह स्पष्ट है कि कहीं गहराई में वह सभी कलाकारों की स्वप्न-नगरी बंबई जाने की इच्छा रखते थे।

इन मिश्रित भावनाओं के साथ हरिप्रसाद ने बंबई की रेलगाड़ी पकड़ी, जिस शहर को संतूर-वादक पं. शिवकुमार शर्मा ने एक दिन 'कलाकारों की कर्मभूमि' बताया। वह ऐसा शहर भी था, जिसकी हृदयहीनता का हरिप्रसाद ने एक बच्चे के रूप में अनुभव किया था। इसलिए वह आशंकित थे कि जीवन में आगे क्या होने वाला है।

❑

बॉलीवुड का बुलावा

हरिप्रसाद कुरता व धोती पहने और कंधे से लटके झोले में अपनी बाँसुरियाँ लिये ऑल इंडिया रेडियो, बंबई पहुँचे। महान् वायलिन-वादक पं.वी.जी. जोग ने एक बार मुझसे कहा, ''मुझे याद है, वह दिन, जब हरि कटक से आया था, अपना झोला लेकर।''

शुरू में किसी ने उन्हें गंभीरता से नहीं लिया। बढ़े हुए वेतन के बावजूद आखिरकार यह पोस्टिंग उन्हें सजा के रूप में दी गई थी।

वह ऐसा युग था, जब रेडियो आम आदमी के मनोरंजन का साधन हुआ करता था। भारतीय शास्त्रीय संगीत के कामयाब पंडित भी संगीत के सुगम, अधिक 'व्यावसायिक' रूपों को तैयार करने, बजाने या गाने के लिए अकसर रेडियो स्टेशन आते थे। उदाहरण के लिए, किशोरी अमोनकर मराठी गाने गाती थीं। रवि शंकर, अली अकबर खाँ, निखिल बनर्जी और पन्नालाल घोष सबने कभी-न-कभी ऑल इंडिया रेडियो पर परफॉर्म किया और सुगम संगीत बजाया। जो लोग हठ में आकर और सुगम संगीत को निम्न स्तर का समझते हुए अपने शास्त्रीय सिंहासन से उतरने से इनकार कर देते, वे धनाभाव में रहते और आखिरकार गुमनामी के अँधेरों में खो जाते।

बंबई के भारतीय सिनेमा के केंद्र होने के कारण वहाँ के ऑल इंडिया रेडियो स्टेशन को रेडियो स्टेशन के नियमित स्टाफ कलाकारों के लिए फिल्मोद्योग के संगीत निर्देशकों द्वारा संगीत निर्देशन का अतिरिक्त लाभ मिलता था। अनिल बिस्वास, मीनू मुखर्जी, अविनाश व्यास और एस. एन. त्रिपाठी सिनेमा के महारथियों में थे, जो रेडियो स्टेशन के लिए नियमित रूप से संगीत निर्देशन करते थे। धीरे-धीरे हरिप्रसाद को रेडियो स्टेशन पर रहने में आनंद आने लगा, क्योंकि वहाँ बहुत से 'गुणीजन' थे, जिनके रिकॉर्डिंग के लिए आने पर उनको सुनने का मौका मिलता था।

हरिप्रसाद का 250 रुपए का वेतन न तो उनके सिर पर एक छत उपलब्ध करा सकता था, न उनके परिवहन और भोजन के खर्च के लिए पर्याप्त था। बंबई उस समय भारत के सबसे महँगे शहरों में से था और अब भी है। कटक के बाद उन्होंने महसूस किया कि वह एक भूलभुलैया में हैं। उनकी खुशकिस्मती थी कि उनकी बहन बन्नो अब बंबई के भूलेश्वर क्षेत्र में रह रही थीं, जो मैरीन लाइंस से दूर नहीं है, जहाँ पर रेडियो स्टेशन स्थित है। उन्होंने काम पर जाने-आने के लिए साइकिल इस्तेमाल करने के बारे में सोचा, लेकिन इलाहाबाद और कटक के बाद वहाँ का ट्रैफिक भयानक था, जिसमें ऐसा कदम उठाना बहुत जोखिम भरा था। बन्नो का दो कमरों का घर था। वह और उनके पति एक कमरे में और उनके बेटे दूसरे कमरे में रहते थे। हरिप्रसाद को बरामदे में सोने के लिए एक बिस्तर दे दिया गया और भोजन बन्नो दीदी ही पकाती थीं। यह कोई विलासिता नहीं थी, लेकिन इस निर्दयी शहर में घर जैसा माहौल यहीं पर मिल सकता था। साथ ही उन्हें वहाँ पैर जमाने और अगले कदम की योजना बनाने से पहले कुछ समय चाहिए था।

उन्हें ज्यादा समय इंतजार नहीं करना पड़ा। रेडियो स्टेशन के उनके एक मित्र अहमद दरबार, जो एक क्लेरिनेट-

वादक थे और आज के प्रसिद्ध संगीत निर्देशक इस्माइल दरबार के पिता हैं, वह किसी 'मिस्टर ईरानी या 'ईरानी सेठ' को जानते थे। वह गुजराती थिएटर की एक जानी-मानी शख्सियत थे और नियमित रूप से नाटक आयोजित करते थे, जिनमें से कुछ एक साल तक चलते थे। अहमद दरबार उनके नाटकों में संगीत निर्देशन करते थे। ईरानी का सारा परिवार गुजराती मंच प्रदर्शनों में शामिल था, जिसमें उनका बेटा और बेटी अरुणा ईरानी, जो बाद में एक सफल अभिनेत्री बनीं, भी शामिल थे। वास्तव में वह उस समय फिल्मों में अपना कैरियर शुरू करनेवाली थीं, जो 'गंगा-जमुना' के साथ शुरू हुआ और उनके शुरुआती कामों में फिल्म 'जहाँआरा' का एक नृत्य था। इसी फिल्म में बंबई आने के बाद हरिप्रसाद का पहला हिंदी फिल्मी गीत भी रिकॉर्ड हुआ। अहमद दरबार ने अपने नाटकों में संगीत देनेवाले ऑर्केस्ट्रा में हरिप्रसाद को अपने बाँसुरी-वादक के रूप में प्रस्तुत किया। हरिप्रसाद को कोई शिकायत नहीं थी। उसमें उन्हें हर परफॉर्मेंस के लिए तीस रुपए मिलते थे और महीने में लगभग पंद्रह शो होते थे, तो वह थिएटर से अपने वेतन का लगभग दोगुना पैसा कमा रहे थे। चूँकि ये नाटक शाम को होते थे तो वे रेडियो स्टेशन पर उनकी ड्यूटी में दखलअंदाजी नहीं करते थे। यह हरिप्रसाद के लिए सीखने का एक बड़ा अनुभव था, जिसमें वह दो घंटे के नाटक में पृष्ठभूमि संगीत बजाते थे।

अभी थिएटर के लिए संगीत देते हुए लगभग एक महीना हुआ था कि किस्मत ने दस्तक दी या सटीक रूप से कहें तो फोन किया। वह फोन था, एक प्रबंधक मास्टर सोनिक का, जो उस समय के कई प्रसिद्ध संगीत निर्देशकों के साथ काम करते थे। वह प्रसिद्ध संगीत निर्देशक मदन मोहन के कार्यालय से फोन कर रहे थे। मदन मोहन ने एक रेडियो प्रसारण सुना था और बाँसुरी-वादन से प्रभावित हुए थे। पूछताछ करने पर उन्हें आकाशवाणी कटक से आए इस युवा बाँसुरी-वादक हरिप्रसाद चौरसिया की जानकारी मिली। मदन मोहन के नियमित बाँसुरी-वादक अनुपस्थित थे, इसलिए हरिप्रसाद को फोन किया गया।

फोन पर आवाज आई, ''क्या आप एक हिंदी फिल्मी गीत की रिकॉर्डिंग करना चाहेंगे?''

''हाँ, मगर...मुझे बहुत कम अनुभव है।'' हरिप्रसाद ने जवाब दिया।

''इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। प्लीज, आप रिकॉर्डिंग स्टुडियो में आ जाएँ। इसमें बस कुछ घंटे लगेंगे।''

उन्होंने रेडियो स्टेशन से ताड़देव में स्थित स्टुडियो के लिए टैक्सी की। उन्होंने महसूस किया कि महान् फिल्मी सितारों को देखने का उनका सपना बस पूरा होने ही वाला है। स्टुडियो जाकर उन्हें पता चला कि उस गाने के लिए ऑर्केस्ट्रा के एक भाग के रूप में सितार के उस्ताद रईस खाँ भी उपस्थित थे। उन्होंने मन में सोचा, 'चलो, इनके तो दर्शन हो गए।' रिहर्सल शुरू हुए और इसके मुख्य गायक तलत महमूद थे। हरिप्रसाद को आकाशवाणी कटक के रिकॉर्डिंग सत्र की याद आई और यह याद आया कि किस तरह तलत महमूद हरिप्रसाद की बाँसुरी से प्रभावित हुए थे। दुर्भाग्य से वह बड़ा गायक हरिप्रसाद और कटक रेडियो स्टेशन के बारे में सबकुछ भूल चुका था।

रिकॉर्ड किया जा रहा गाना था फिल्म 'जहाँआरा' की गजल 'फिर वही शाम, वही गम, वही तनहाई है।' स्टुडियो तकनीशियन और संगीतकार इस बात से बहुत प्रभावित हुए कि जल्दी ही हरिप्रसाद ने यह समझ लिया कि किस चीज की जरूरत है और न्यूनतम रिहर्सलों में रिकॉर्डिंग पूरी हो गई। वह ऑर्केस्ट्रा में इतनी अच्छी तरह फिट हो गए, मानो जिंदगी भर उसका हिस्सा रहे हों। इस गीत में बाँसुरी का स्वर कुछ देर के लिए, लेकिन महत्त्वपूर्ण था। मदन मोहन द्वारा बाँसुरी के अल्प इस्तेमाल और हरिप्रसाद की टोनल क्वालिटी ने मारक प्रभाव उत्पन्न किया। अगर तलत महमूद की आवाज में गहराई थी तो हरिप्रसाद की बाँसुरी ने उदासी का समाँ बाँध दिया। जब यह फिल्म रिलीज हुई तो यह गीत तुरंत देश भर में हिट हो गया और हरिप्रसाद की बाँसुरी ने फिल्मी दुनिया में खुशी व हैरत की लहर दौड़ा दी। हर कोई कुरता और धोती में एक पहलवान के शरीर में एक अत्यंत खूबसूरत चेहरेवाले इस

विचित्र आदमी के बारे में बात कर रहा था, जिसकी बाँसुरी का स्वर मंत्रमुग्ध करनेवाला था।

तब से उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। उस समय बंबई में हिंदी और अन्य भाषाओं की फिल्मों के लिए संगीत देनेवाले लगभग 100 संगीत निर्देशक थे और उन्होंने लगभग सबके साथ काम किया है। वह रेडियो स्टेशन के लिए संगीत देने वाले संगीत निर्देशकों के भी संपर्क में थे। जब भी उनकी प्राइवेट रिकॉर्डिंग होती थी तथा उन्हें बाँसुरी-वादक की जरूरत होती थी, वे यह काम हरिप्रसाद को सौंपते थे। सिर्फ इसलिए नहीं कि वह अच्छे बाँसुरी-वादक थे, बल्कि इसलिए भी, क्योंकि वह बहुत भरोसेमंद थे और कभी किसी को मना नहीं करते थे, चाहे वह कितने भी व्यस्त क्यों न हों। बहुत से संगीत निर्देशकों, जैसे एस. एन. त्रिपाठी, अजित मर्चेंट, चित्रगुप्त और अविनाश व्यास से प्राप्त अनुरोधों के अंबार में हरिप्रसाद सिर तक काम में डूबे हुए थे। जैसा कि संगीत निर्देशक खय्याम कहते हैं, ''आधिकारिक रूप से स्टुडियो के नियमों के मुताबिक एक संगीतकार को प्रतिदिन दो बुकिंग की ही अनुमति थी, लेकिन हरिप्रसाद की बाँसुरी की माँग इतनी थी कि वह एक दिन में चार रिकॉर्डिंग तक किया करते थे। किसी को शिकायत नहीं थी। हर कोई उन्हें चाहता था, इसलिए हर कोई इसे अनदेखा कर देता था।''

ऑर्केस्ट्रा के काम के अलावा उनके पास बैकग्राउंड संगीत के लिए भी प्रस्ताव आए। उन दिनों गीत दिन में ही रिकॉर्ड किए जाते थे और स्टूडियो का अधिकतम उपयोग करने के लिए रात में बैकग्राउंड संगीत रिकॉर्ड किए जाते थे। वह अपनी मूलभूत जरूरत की चीजों को अपनी जेब में रखते थे, जैसे एक टूथब्रश और अपने मुँह में ताजा अहसास बनाए रखने के लिए कुछ च्यूइंगम और हाँ, अपना पान। चुनिंदा दृश्यों के लिए ही बैकग्राउंड वाद्य के रूप में बाँसुरी की जरूरत पड़ती थी, जैसे कि नदी, मंदिर, दु:खद वातावरण, रोता हुआ व्यक्ति आदि। अगर ऐसा कोई दृश्य नहीं होता तो हरिप्रसाद स्टुडियो में ही थोड़ी देर सो लेते। वह आराम करने का कोई अच्छा तरीका नहीं था, लेकिन वह अपनी पहचान बनाने के लिए कटिबद्ध थे और पैसे इतनी तेजी से आ रहे थे कि वह धीमे नहीं पड़ सकते थे। उनकी जेबें हमेशा पैसों से भरी रहती थीं और कई-कई दिनों तक उनके पास पैसे गिनने के लिए भी समय नहीं होता था। उनके लिए यह कोई मायने नहीं रखता था कि उन्होंने एक दिन में कितने पैसे कमाए। वह ऐसा काम कर रहे थे, जिसे करना उन्हें पसंद था, बाँसुरी बजाना और उससे उन्हें ढेर सारे पैसे मिल रहे थे। वह उनके लिए पर्याप्त था। उन्हें बाँसुरी की लत थी और उससे जितने अधिक पैसे आ रहे थे, वह उतना ही उसकी ओर झुकते जा रहे थे।

तारदेव रिकॉर्डिंग स्टुडियो के बाहर।

हरिप्रसाद ने हिंदी, बँगला, उड़िया, मराठी और राजस्थानी सभी भाषाओं की फिल्मों में बाँसुरी बजाई। अपनी प्रतिभा और ऑल इंडिया रेडियो द्वारा उपलब्ध कराई गई बारह बाँसुरियों के साथ वह अकसर चौबीसों घंटे काम करते थे और उनकी जेबें उस नकद-नारायण से भरी रहती थीं, जो उत्सुक संगीत निर्देशक उन्हें देने को खुशी-खुशी तैयार रहते थे। अचानक वह उद्योग के संगीत हलकों के एक बहुत महत्त्वपूर्ण अंग बन गए थे। दिन के दौरान एक गाने के 85 रुपए और रात को बैकग्राउंड संगीत के लिए प्रति शिफ्ट 140 रुपए के साथ उनके पास इतने पैसे थे

कि उन्हें यह पता नहीं था कि उन्हें कैसे खर्च करें, न ही खर्च करने का समय था। हरिप्रसाद चौरसिया कामयाब हो गए थे, सपनों की नगरी में।

कटकवाली स्थिति ही यहाँ पर भी थी। उनके लिए फिल्मोद्योग में इतना अधिक काम था कि जरूरत पड़ने पर ऑल इंडिया रेडियो के स्टुडियो में उपलब्ध होने का समय नहीं था। एक बार फिर स्टेशन डायरेक्टर की मेज पर शिकायती पत्रों का अंबार लगना शुरू हो गया। हर जगह ईर्ष्या और दुश्मनी व्याप्त होने लगी। अब हरिप्रसाद के पास एक मुश्किल विकल्प था। एक ओर सिनेमा का ढेर सारा पैसा था, लेकिन स्वतंत्र संगीतकार होने की अनिश्चितता थी और दूसरी ओर केंद्र सरकार की नौकरी की सुरक्षा व आराम था, आराम-तलब जीवन-शैली थी और सेवानिवृत्ति के बाद का जीवनपर्यंत पेंशन था।

उनके लिए ऑल इंडिया रेडियो एक बंद गली थी और वह यह बात जानते थे। वह सबकुछ चाहते थे, ख्याति, कामयाबी और अपनी संगीत कला को संपूर्ण आयाम देना। वह बंबई में थे। वह काफी माँग में थे। वह ध्यान के केंद्रबिंदु थे। वह अपने पंख फैलाकर उड़ने के लिए तैयार थे।

उनकी पत्नी अनुराधा आकाशवाणी की नौकरी छोड़ने को लेकर आशंकित थीं, लेकिन हरिप्रसाद अड़े हुए थे, ''क्या हुआ, अगर मैं फिल्मोद्योग में अपनी जगह नहीं बना पाया?'' वह उनसे तर्क करते थे, ''हम मंदिर में बैठकर भीख माँग सकते हैं। तुम अपने तानपुरा के साथ और मैं अपनी बाँसुरी के साथ।'' यह बहुत बढ़िया तर्क नहीं था, लेकिन अनुराधा जानती थीं कि उनके पास कामयाबी पाने की प्रतिभा और प्रेरणा मौजूद थी। वह अपने पेशे में बहुत लाभदायक स्थिति में थे और उसमें पूरी तरह कोशिश न करने का मतलब था जीवन भर का पछतावा, इसलिए अनुराधा ने आखिरी फैसला उन पर छोड़ दिया। वह गर्व से कहती हैं, ''हरिजी अत्यंत निर्भय व्यक्ति हैं। उन्हें आकाशवाणी की नौकरी छोड़ने के बारे में सोचकर कोई परेशानी नहीं हुई।''

हरिप्रसाद ने ईश्वर पर भरोसा करते हुए वह आखिरी दाँव खेलने का फैसला किया। हरिप्रसाद कहते हैं कि यह सन् 1964 में किसी समय की बात है (हालाँकि उनकी पत्नी कहती हैं कि यह 1965 की बात है)। वह छुट्टी का दिन था और रेडियो स्टेशन के सभी ऑफिस बंद थे। उन्होंने ड्यूटी ऑफिसर को अपना इस्तीफा आगे स्टेशन डायरेक्टर को अग्रसारित करने के लिए दे दिया। जैसी कि उम्मीद थी, इस्तीफा बिना किसी प्रश्न के स्वीकार कर लिया गया। वैसे आज तक वह आकाशवाणी के कैजुअल कलाकारों की सूची में हैं और समय की कमी के बावजूद अधिक-से-अधिक रेडियो कार्यक्रम करने की कोशिश करते हैं। वह रेडियो से प्यार करते हैं और उसे अपने संगीत के कैरियर की कोख मानते हैं।

फिल्मी संगीत में शामिल होने के कुछ महीनों के भीतर उन्होंने एवरग्रीन होटल में एक कमरा किराए पर लिया। वह एक सिख सज्जन का था, जिन्होंने कमरे के लिए 125 रुपए महीने का किराया लगाया। इसे बाद में बढ़ाकर 150 रुपए कर दिया गया था। उस होटल में कई फिल्मी शख्सियतें रहती थीं, जो हरिप्रसाद की तरह बाद में महान् कलाकारों के रूप में उभरे। हरिप्रसाद के तल पर अभिनेता इफ्तिखार, संगीत निर्देशक एस. डी. बर्मन और गीतकार आनंद बख्शी थे। भूतल पर दूसरे कैमरामैन और तकनीशियन रहते थे।

सफर अच्छा चल रहा था और पर्याप्त पैसे जमा हो जाने पर हरिप्रसाद ने सन् 1965 में अलग से एक मकान ले लिया। उन्होंने पगड़ी के रूप में 12,000 रुपए दिए, जो एकमुश्त न लौटाए जाने के तौर पर जमा हुआ और उसका किराया 150 रुपए प्रतिमाह होता है। वह एक बालकनी, एक बाथरूम और एक रसोईघर के साथ दो कमरों का मकान था।

तेजी से पैसे आने और उसे खर्च करने के लिए समय न होने के कारण उनकी जमा-पूँजी और बढ़ती गई।

बचपन से ही एक कार लेने की उनकी तीव्र इच्छा थी। अब उस इच्छा को पूरा करने का समय था। उन्होंने अपने एक शास्त्रीय गायक और गिटार-वादक मित्र चरणजीत सिंह से कहा कि वह उन्हें कार चलाना सिखा दें। उन्हें लगा कि कार खरीदने से पहले ड्राइव करना सीखना जरूरी है। चरणजीत सिंह ने खुशी-खुशी यह मान लिया और जिन शामों को कोई रिकॉर्डिंग नहीं होती थी, वह हरिप्रसाद को अपनी कार में बंबई की सड़कों पर घुमाते और बड़े शहर के ट्रैफिक में ड्राइव करने की बारीकियाँ सिखाते। लगभग दो महीने बाद हरिप्रसाद अपनी कार खरीदने के लिए तैयार थे। उन्होंने 4,000 रुपए में एक मॉरिस एट खरीदी। उन्हें दो कारणों से यह कार पसंद आई। पहला, वह उनके बजट में थी और दूसरे, वे सिर्फ दो लोगों को जानते थे, जिनके पास ऐसी ही कारें थीं, बाँसुरी-वादक बरवे साहिब (लगता है कि उनका पहला नाम किसी को याद नहीं है) और अभिनेता नाना पलसीकर।

सिने कलाकार इफ्तेखार के साथ।

अब हरिप्रसाद मॉरिस एट के स्वामियों के अभिजात वर्ग में आ गए थे। कार खरीदने के बाद वह उसे दिखाने के लिए चलाकर अपने सभी मित्रों के घर गए। एक गरीब पहलवान के बेटे, जिनके पास टाइपिंग सीखने के लिए पैसा नहीं था, के लिए वह संपन्नता थी, जिसकी उन्होंने कभी कल्पना नहीं की थी। हरिप्रसाद दावा करते हैं कि वह एक खूबसूरत और अच्छे रख-रखाववाली कार थी, जबकि उनकी पत्नी कहती हैं कि वह बिना किसी वजह और बिना किसी चेतावनी के कभी भी खराब हो जानेवाली गाड़ी थी। उसे फिर से स्टार्ट करने के लिए धक्का देना पड़ता था, इसलिए जब उन्होंने उस गाड़ी से छुटकारा पाया तो वह बहुत खुश हुईं। घरेलू शांति को भंग न कर मैं कार के गुणों-अवगुणों को उनके बीच फैसला करने के लिए छोड़ देता हूँ। मैं यहाँ यह भी जोड़ना चाहता हूँ कि इस साधारण शुरुआत से वह मर्सीडीज बेंज तक पहुँच चुके हैं और इस बीच बहुत सी दूसरी कारें भी ड्राइव की हैं। उन्हें कारों से प्यार है और तेज ड्राइविंग करना पसंद करते हैं, लेकिन गाड़ियों के साथ उनके दु:साहसों पर हम दूसरे अध्याय में बात करेंगे।

फिल्म स्टुडियो में बहुत से बाँसुरी-वादक थे और जब हरिप्रसाद ने शुरुआत की तो उन्होंने उन्हें फिल्मी दुनिया के लिए अनुपयोगी समझा, क्योंकि वह रेडियो स्टेशन से आए थे और इसलिए स्वाभाविक रूप से फिल्मी संगीत के लिए अनुपयोगी एक शास्त्रीय संगीतकार थे। जब उनकी क्षमता की चर्चा फैली तो कुछ बाँसुरी-वादकों ने उन्हें अपने लिए खतरा समझ लिया। खुशकिस्मती से भारतीय फिल्मोद्योग हमेशा से रोजगार का एक बढ़िया स्रोत रहा है और वहाँ उन सभी के लिए पर्याप्त काम था। उस समय के उल्लेखनीय बाँसुरी-वादकों में बरवे साहब, सुमंत राज, अजय वर्धन और मनोहारी सिंह थे। उनमें से कई आज भी हरिप्रसाद के मित्र हैं।

हालाँकि उनके शास्त्रीय आधार की वजह से ही अन्य फिल्मी बाँसुरी-वादक उन्हें नीचा समझते थे; लेकिन उसी शास्त्रीय आधार की वजह से संगीत निर्देशक उन्हें पसंद करते थे। उनकी शैली नई और अनूठी थी। वह इतने व्यस्त थे कि उनके तारीख और समय में टकराव शुरू हो गए। जब भी किसी गाने या किसी दृश्य में बाँसुरी की जरूरत पड़ती तो रोशन, मदन मोहन, ओ.पी. नैयर, शंकर-जयकिशन, हुस्नलाल-भगतराम, कल्याणजी-आनंदजी, लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल, एस.डी. बर्मन, आर.डी.बर्मन, सलिल चौधुरी और बप्पी लाहिरी उन्हें ही याद करते। एक ऐसा समय आया, जब वह एक ही समय पर दो या तीन स्टुडियो में रिकॉर्डिंग करते थे। जब एक स्टुडियो में उनका

बाँसुरी-वादन समाप्त होता, उस बीच वह तेजी से अगले स्टुडियो पहुँचते, गीत का अपना हिस्सा समाप्त करते और पहले स्टुडियो पहुँचते, मानो वह जलपान करने के लिए बाहर तक गए हों। कई बार इसमें वह पकड़े जाते। वह सच्चाई स्वीकार कर लेते और संगीत निर्देशक से कहते, ''उन्हें एक बाँसुरी-वादक की तत्काल जरूरत थी, इसलिए मैंने उनकी मदद कर दी। किसी दिन अगर आपको तुरंत जरूरत होगी तो मैं आपके लिए भी ऐसा ही करूँगा।'' हालाँकि वे सभी पेशेवर थे, लेकिन आपस में मित्र भी थे, इसलिए किसी ने इस बात को मुद्दा नहीं बनाया।

कुछ ही वर्षों में उन्होंने 70,000 रुपए की रकम जमा कर ली, जिससे वह अपना घर खरीद सकते थे। अब हरिप्रसाद अपनी पहली संपत्ति के स्वामी थे। अपने मन में कहीं उनकी पत्नी अनुराधा अब भी आर्थिक रूप से असुरक्षित थीं। उन्हें लगा कि अगर वह 1 लाख रुपए की रकम किसी बैंक के फिक्स्ड डिपोजिट में डाल दें तो उन्हें रेडियो स्टेशन में उनके काम न करने और अपने बलबूते पर कोशिश करने से कोई परेशानी नहीं होगी। यह समस्या भी हल हो गई। उनकी अगली बड़ी इच्छा एक बेहतर कार लेने की थी, इसलिए अनुराधा को तब राहत मिली, जब उन्होंने मॉरिस एट के बदले ट्रायंफ 2000 ले ली। वह छोटी लेकिन खूबसूरत कार थी।

बॉलीवुड के बाँसुरी-सम्राट्—सुमंत राज, मनहोरी सिंह तथा हरिप्रसाद।

उन्होंने जिन संगीत निर्देशकों के साथ काम किया, उसकी सूची अंतहीन है और जितने गानों में बाँसुरी-वादन किया है, वह किसी मनुष्य के लिए याद रखना असंभव है, लेकिन कुछ गाने ऐसे हैं जो उन्हें याद हैं, क्योंकि वे काफी लोकप्रिय हुए थे। उनमें फिल्म 'बेटी-बेटे' का 'राधिके तूने बाँसुरी चुराई'। सन् 1964 में रिलीज हुई यह फिल्म एक दु:खद कहानी थी, जिस तरह की फिल्म में आपको रूमाल की जगह तौलिया लेकर जाना पड़ता है। इसमें उन्होंने पहली बार शंकर-जयकिशन के साथ काम किया और यह गाना राधा व कृष्ण से संबंधित फिल्मी गीतों में एक महत्त्वपूर्ण गीत बन गया।

सन् 1964 में ही सुनील दत्त की 'यादें' रिलीज हुई, जो उस समय के हिसाब से काफी प्रयोगधर्मी फिल्म थी। वह एक ही नायकवाली फिल्म थी, जिसमें वह अपनी पत्नी और बच्चे को याद करते हैं कि किस तरह उन्होंने उनके साथ गलत व्यवहार किया। उस फिल्म में कोई गाना नहीं था, लेकिन सही मूड बनाने के लिए स्क्रीनप्ले में प्रभावशाली संगीत की जरूरत थी। जिस व्यक्ति को यह काम दिया गया था, वह थे, वसंत देसाई, जो वी. शांताराम कैंप के एक प्रमुख सदस्य थे और बाँसुरी का काम हरिप्रसाद को सौंपा गया। संयोग से जब गुलजार ने अपनी गाना-विहीन फिल्म 'अचानक' बनाई, तब भी उन्होंने संगीत का काम फिर वसंत देसाई को ही सौंपा।

प्रसिद्ध संगीत निर्देशक एवं गायक राहुल देव बर्मन के साथ।

हरिप्रसाद वसंत देसाई जैसे परिपक्व संगीत निर्देशक के साथ काम करने को गौरव और खुशी की बात मानते हैं। उस समय संगीत पर पूरी यूनिट मिलकर काम करती थी। आमतौर पर संगीत पर चर्चा के लिए एक कमरा लिया जाता था। संगीत निर्देशक, संगीतकार, गीतकार और निर्देशक साथ मिलकर गीत, संगीत, वाद्य-यंत्रों के प्रयोग, बैकग्राउंड आदि पर अपने विचारों का आदान-प्रदान करते थे। एक बार मूल प्रारूप तैयार होने पर वे एक रिहर्सल रूम लेते थे, जिसमें स्टुडियो किराए पर लेने से पहले और रिकॉर्डिंग से पहले संगीत की प्रैक्टिस की जाती थी। फिल्म सुनील दत्त के दिमाग की उपज थी, इसलिए वह बड़ी मेहनत से हरिप्रसाद को दृश्य समझाते और उसके लिए खास मूड बनाने को कहते। एक बार एक हृदयस्पर्शी दृश्य में हरिप्रसाद के संवेदनशील काम ने सुनील दत्त की आँखों में आँसू ला दिए। वह एक पल के लिए वहाँ से चले गए, अपनी आँखें पोंछीं, फिर से हरिप्रसाद की बगल में बैठे, सराहना की मुसकराहट दी और कहा, ''आपने इसे बिलकुल वैसा ही बजाया है, जैसा मेरे दिमाग में था।''

अगले साल हरिप्रसाद ने एक और प्रसिद्ध फिल्म 'जब-जब फूल खिले' के लिए बाँसुरी बजाई। इस बार उन्होंने अपने मित्र संतूर वादक शिवकुमार शर्मा के साथ काम किया। इस फिल्म का एक गाना 'परदेसियों से न अँखियाँ मिलाना' अब भी लोगों को सम्मोहित कर देता है।

सन् 1966 में हरिप्रसाद की मुलाकात पहली बार खय्याम से हुई। इस प्रतिष्ठित संगीत निर्देशक का असली नाम मोहम्मद जहूर खय्याम हाशमी है। उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सेना में काम किया; लेकिन आखिरकार संगीतकार के रूप में अपनी वास्तविक पहचान बनाई। प्रसिद्ध संगीतकार और लाहौर के संगीत निर्देशक चिश्ती बाबा के सान्निध्य में संगीत का पहला असली पाठ सीखा। खय्याम चेतन आनंद की फिल्म 'आखिरी खत' के लिए संगीत दे रहे थे। इसके गीत कैफी आजमी ने लिखे थे। '70 के दशक में भारत के सबसे लोकप्रिय अभिनेता राजेश खन्ना इस फिल्म से मुख्य नायक के रूप में अपने फिल्मी कैरियर की शुरुआत कर रहे थे।

खय्याम साहब के ड्राइंग रूम में बैठा जब मैं हरिप्रसाद के साथ उनके संबंधों पर उनसे सवाल पूछने की कोशिश कर रहा था, तभी अचानक उन्होंने यह सवाल दाग दिया, ''क्या आप जानते हैं कि हरिप्रसाद ने मेरे लिए पहला कौन सा गाना रिकॉर्ड किया था?''

''मुझे ठीक से याद नहीं है, सर,'' मैं चकित होता हूँ, ''सन् 1966 में मैंने मुश्किल से स्कूल जाना सीखा था।''

''इससे क्या फर्क पड़ता है? आप उनकी जीवनी लिख रहे हैं और आप उस गाने के बारे में नहीं जानते।'' वह अपने संगीत के प्रति मेरी अज्ञानता से चिढ़कर कहते हैं।

''क्या यही वजह नहीं है कि मैं यहाँ पर हूँ?'' मैं मन-ही-मन कहता हूँ, हालाँकि अपने विचारों को प्रकट करने की हिम्मत नहीं है।

''बहारों मेरा जीवन भी सँवारो?'' मैं उम्मीद के साथ पूछता हूँ।

यह महान् संगीतकार संतोष के साथ मुसकराता है। आखिरकार मैं इतना भी अनजान नहीं हूँ, ''क्या आप जानते हैं कि इस गाने में खास बात क्या है?'' शुक्र है कि इस बार यह सवाल हलके ढंग से पूछा गया है, क्योंकि वह मेरे जवाब देने का इंतजार किए बिना बोलना जारी रखते हैं। ''यह एक ऐतिहासिक गाना है। इसमें उस्ताद रईस खान ने सितार, शिवकुमार शर्मा ने संतूर और हरिप्रसाद चौरसिया ने बाँसुरी बजाई है, साथ ही लता मंगेशकर की आवाज का जादू, यह सब पहली बार एक साथ थे। इस गीत को राग पहाड़ी में तैयार किया गया है। हमारी शास्त्रीय परंपरा में पहाड़ी में दूसरे रागों को मिला सकते हैं, इसलिए यह इस गाने के लिए उपयुक्त राग था। इससे पहले राग पहाड़ी में कई गाने बनाए गए हैं, लेकिन यह गाना बेमिसाल बन पड़ा है। इस गाने के बाद से पहाड़ी राग बजाने का अंदाज

बदल गया।''

वास्तव में यह गाना और फिल्म दोनों बहुत लोकप्रिय हुए और फिल्मी संगीत से जुड़े हर किसी ने हरिप्रसाद की बाँसुरी की तारीफ की, जो कभी-कभी लय के साथ-साथ तरंगित होती है और कभी-कभी लय के खिलाफ जाती है (जिसे संगीत निर्देशक 'काउंटर मेलोडी' कहते हैं)। गाने के अलावा उनकी बाँसुरी क्लाइमेक्स के दृश्य में अच्छा मूड बनाती है और उसमें उनका खास शास्त्रीय स्पर्श है। यह भी सच है कि इन तीन महान् शास्त्रीय संगीतकारों ने पहले कभी एक ही ट्रैक पर साथ काम नहीं किया है। हरिप्रसाद ने अलग-अलग ट्रैकों पर रईस खान और शिवकुमार शर्मा के साथ काम किया है, लेकिन एक ही ट्रैक पर कभी नहीं किया।

खय्याम गर्व से कहते हैं, ''हमने दिखा दिया कि बाँसुरी कैसे बजती है और कैसे बजवाई जाती है।'' यह स्पष्ट है कि खय्याम हरिप्रसाद के बड़े प्रशंसक हैं। उनके अनुसार, भारत के इतिहास में सिर्फ तीन महान् बाँसुरी-वादक हुए हैं। भगवान् कृष्ण, जिनकी बाँसुरी गोपियों, पशु-पक्षियों, पौधों और वृक्षों को अपनी ओर खींचती थी। पंजाब का ऐतिहासिक प्रेमी राँझा, जो अपनी बाँसुरी से अपनी प्रेयसी हीर को रिझाता था और अंत में हरिप्रसाद चौरसिया —''जब हरिजी बाँसुरी बजाते हैं तो ऐसा महसूस होता है, मानो भगवान् कृष्ण उन्हें प्रेरणा दे रहे हों और उनके माध्यम से बाँसुरी बजा रहे हों। फिल्मोद्योग में बहुत से बाँसुरी-वादक रहे हैं, लेकिन उनके जैसा कोई नहीं है। मेरी फिल्मों में जब भी बाँसुरी की जरूरत होती थी, हरिजी ने ही उसमें काम किया है, सिर्फ उन अवसरों को छोड़कर, जब वह देश से बाहर थे। उन्हें 'उमराव जान' के 'काहे को ब्याही बिदेस' (जिसमें खय्याम की पत्नी जगजीत ने गायन किया है) में सुनिए या रजिया सुल्तान के 'हरियाला बन्ना, तेरा हिज्र मेरा नसीब' और 'आई जंजीर की झंकार' में और आपको पता चल जाएगा कि उनमें क्या खास बात है। उनके जैसे संगीतकार ही मेरे जैसे संगीत निर्देशकों की ख्याति और कामयाबी में योगदान करते हैं; क्योंकि वे बिलकुल वैसा ही संगीत देने में समर्थ होते हैं, जो मैंने अपने मन में सोचा होता है।''

खय्याम की पत्नी जगजीत भी उनकी प्रशंसक हैं, लेकिन बिलकुल भिन्न वजह से। एक ऐसा समय था, जब किसी लाइव परफॉर्मेंस में उनकी संगत के लिए अच्छे संगीतकार नहीं मिलते थे। हरिप्रसाद चुपचाप मंच पर जाते और आश्वासन के इन शब्दों के साथ उनके पीछे बैठते, ''भाभी, मैं आपका साथ दूँगा।''

''हरिजी बेशक एक बहुत सक्षम बाँसुरी-वादक हैं, लेकिन मुझे उनकी प्रतिभा का पूरा दोहन करने की क्षमता प्राप्त है।'' खय्याम बड़े गर्व से कहते हैं। अपने दावे पर जोर डालते हुए वह कहते हैं, ''रईस खान एक कामयाब 'उस्ताद' थे, लेकिन 'आखिरी खत' के समय पर हरिप्रसाद को 'पंडित' की उपाधि प्राप्त नहीं थी।''

यह टिप्पणी एक और संदर्भ में भी महत्त्वपूर्ण है। इस बारे में काफी विवाद है कि कौन पंडित कहलाता है और कौन नहीं। जब मैंने हरिप्रसाद से उनके पंडित के दर्जे के बारे में पूछा तो उन्होंने अपनी वही विनम्रता दिखाई, ''मेरे लेटरहेड और मेरे विजिटिंग कार्ड पर सिर्फ हरिप्रसाद चौरसिया लिखा है। यह मेरे माता-पिता का दिया हुआ नाम है। 'पंडित' लोग मुझे आदर की वजह से कहते हैं। यह मेरे लिए नहीं, बल्कि मेरे काम और मेरी कला के लिए है, लेकिन हरि से हरिप्रसाद, हरिप्रसाद से हरिप्रसाद चौरसिया, हरिप्रसाद चौरसिया से श्री हरिप्रसाद चौरसिया और आखिरकार पंडित हरिप्रसाद चौरसिया तक का सफर बहुत लंबा रहा है।'' उनकी आवाज में व्यंग्य का पुट मुझे बताता है कि उनके प्रति रवैए में बदलाव बढ़ते सम्मान के साथ उनकी ख्याति के स्तरों के अनुपात में रही है, ''आजकल गाना या किसी एक वाद्य को बजाना सीख लेनेवाला खुद को पंडित कहने लगता है।''

संयोगवश 'एवरी ट्यूजडे' में प्रकाशित एक साक्षात्कार में रवि शंकर ने भी ऐसी ही भावनाएँ व्यक्त की थीं। वह कहते हैं, ''मैं अपनी पंडित की उपाधि को छोड़ना चाहता हूँ, क्योंकि आजकल हर कोई पंडित या उस्ताद होता है।

कई वर्षों से मैंने सभी प्रमोटरों को यह 'पंडित' शब्द हटाने को और मुझे सिर्फ रवि शंकर कहने का निर्देश दिया है।''

आज हरिप्रसाद के लेटरहेड में उनके नाम के आगे 'पद्मविभूषण' भी लिखा है। यह 30 मार्च, 2000 को भारत के राष्ट्रपति द्वारा उन्हें दिया गया सम्मान है और उन्हें इसका इस्तेमाल करने का कानूनी अधिकार है।

दुनिया ने उन्हें एक असली 'पंडित' के रूप में पहचाना है और इस रूप को मान्यता दी है। सन् 1970 में रामानंद सागर की अत्यंत कामयाब फिल्म 'गीत' आई थी। अत्यंत लोकप्रिय अभिनेता राजेंद्र कुमार ने इस फिल्म में बाँसुरी बजानेवाले गाँव के युवक का किरदार निभाया था। यह कहानी गाने और बाँसुरी बजाने की उसकी क्षमता के आस-पास घूमती है। कल्याणजी-आनंदजी के संगीत निर्देशन में हरिप्रसाद की बाँसुरी पूरी फिल्म में व्याप्त थी। 'तेरे नैना क्यों भर आए' गीत में कुल्लू घाटी के सभी दृश्यों के दौरान पृष्ठभूमि में और राजेंद्र कुमार के बाँसुरी बजाने वाले सभी दृश्यों में उसे सुना जा सकता है। इस फिल्म में राजेंद्र कुमार की बाँसुरी में जो दिल और आत्मा थी। वास्तव में इसकी आत्मा हरिप्रसाद थे।

उन्होंने न केवल बाँसुरी बजाई, बल्कि उन्हें राजेंद्र कुमार को यह भी बताना था कि असली दिखने के लिए बाँसुरी को होंठों पर कैसे रखना है और कैसे संगीत के साथ अपनी उँगलियाँ हिलानी हैं। रामानंद सागर राजेंद्र कुमार को एक प्रशिक्षण सत्र के लिए बुलाने वाले थे, लेकिन हरिप्रसाद को यह अजीब लगा कि इतने बड़े अभिनेता को उनसे निर्देश लेने के लिए बुलाया जाए। इसलिए इसकी बजाय उन्होंने राजेंद्र कुमार के घर जाने का आग्रह किया। राजेंद्र कुमार ने हरिप्रसाद को रात के भोजन के लिए आमंत्रित किया। वह एक छोटा, लेकिन सौहार्दपूर्ण सत्र था और राजेंद्र कुमार जैसे परिपक्व अभिनेता के लिए यह समझना कोई बड़ी बात नहीं थी कि उन्हें क्या करना है। यह बहुत अच्छी तरह किया गया और शायद पहली बार किसी वादक को मान्यता दी गई, जब क्रेडिट में आया, 'बाँसुरी वादक : पंडित हरिप्रसाद चौरसिया'।

परदे पर बाँसुरी बजाता नायक और परदे के पीछे हरिप्रसाद के वादन का यह सफल फॉर्मूला तेरह वर्ष बाद सुभाष घई द्वारा अपनी अत्यंत लोकप्रिय फिल्म 'हीरो' में दोहराया गया। यह जैकी श्रॉफ की पहली मुख्य भूमिकावाली फिल्म थी और इसमें उन्हें कई बार बाँसुरी बजाते दिखाया गया है। इस फिल्म की सफलता ने न केवल जैकी श्रॉफ को प्रसिद्ध बना दिया, बल्कि उन्हें हरिप्रसाद के संगीत का प्रशंसक भी बना दिया, लेकिन बाँसुरी के संगीत की मात्रा गीत के मुकाबले बहुत कम है। मूल रूप से एक ही धुन फिल्म में कई जगह दुहराई गई है और स्क्रीनप्ले में संगीत निर्देशकों लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल द्वारा हरिप्रसाद से उतना कुछ निकालने की गुंजाइश नहीं थी, जितना कल्याणजी-आनंदजी ने गीत में किया था।

महत्त्वपूर्ण यह है कि फिल्म की मुख्य धुन कहाँ से आई? महबूब स्टुडियो में इस फिल्म पर काम चल रहा था। प्यारेलाल शर्मा पियानो पर एक धुन बनाने की कोशिश कर रहे थे। स्टुडियो के दो में से एक द्वार से हरिप्रसाद अंदर आए। उन्हें दरवाजे से गुजरते देख प्यारेलाल के दिमाग में एक आइडिया आया और वह धुन बन गई। वह एक आकस्मिक प्रेरणा थी। उन्होंने हरिप्रसाद को वहाँ से हिलने नहीं दिया, ''हरिजी, प्लीज तुरंत अपनी बाँसुरी निकालिए।'' उन्होंने कहा। उन्होंने उस धुन को समझाया और पियानो पर सुर बजाए। मिनटों के अंदर वह धुन तैयार थी। वह इतना आकस्मिक और सहज था कि प्यारेलाल स्वयं चकित हैं कि वह कैसे हो गया था।

प्यारेलाल को फिल्म 'क्रांति' के लिए संगीत निर्देशन के समय का एक ऐसा ही दिलचस्प प्रसंग याद आता है। हरिप्रसाद के हाथों में हमेशा बाँसुरी रहती है और वह कभी भी खाली नहीं बैठ सकते। स्टुडियो में किसी बहस के समय भी उनकी बाँसुरी हमेशा उनके होंठों पर रहती है और उनकी उँगलियाँ चलती रहती हैं। प्यारेलाल न्यूनतम

वॉल्यूम पर माइक्रोफोनों के साथ कंसोल पर थे, जब उन्होंने एक विचित्र, सौम्य, टैपिंग ध्वनि सुनी। हरिप्रसाद अपनी बाँसुरी के छिद्रों पर उँगलियाँ फिरा रहे थे और फूँक के बिना रियाज कर रहे थे। बाँस पर उनकी उँगलियों की ध्वनि सुनाई दे रही थी। वह विचित्र प्रकार की 'दिलचस्प' ध्वनि थी और प्यारेलाल ने रिकॉर्डिंग इंजीनियर से माइक्रोफोन का वॉल्यूम बढ़ाने तथा उसे रिकॉर्ड करने के लिए कहा। इसके बाद उन्होंने कुछ इलेक्ट्रॉनिक रीप्रोसेसिंग की और उसमें ऑर्केस्ट्रा का संगीत जोड़ा। उन्हें फिल्म के कुछ अत्यंत तनावपूर्ण दृश्यों के लिए पृष्ठभूमि संगीत मिल गया था, जहाँ नायक मनोज कुमार अपने सेल की चाभी खींचने के लिए अपनी जेल के अंदर से एक रस्सी बाहर फेंकते हैं।

हरिप्रसाद ने लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल (जिन्हें फिल्मी दुनिया में एल.पी. कहा जाता था) के लिए भी पहली बार सन् 1966 में बाँसुरी बजाई, जब फिल्म 'आए दिन बहार के' के गीत 'सुनो सजना' में उन्होंने संगीत दिया। इस फिल्म से पहले इसके विपरीत हुआ था। उन्होंने हरिप्रसाद के लिए संगीत दिया था। वह न केवल संगीत निर्देशक थे, बल्कि बहुत अच्छे संगीतकार भी थे। लक्ष्मीकांत कुडलिया एक मंडोलिन-वादक और प्यारेलाल शर्मा वायलिन-वादक थे। अपने कटक संपर्क के कारण बहुत से उड़िया निर्माताओं, निर्देशकों और संगीत निर्देशकों ने हरिप्रसाद से रिकॉर्डिंग की व्यवस्था में मदद करने का अनुरोध किया। उस समय उड़ीसा में अच्छी रिकॉर्डिंग की सुविधाएँ नहीं थीं, इसलिए सभी रिकॉर्डिंग बंबई में की जाती थीं। उन्हें यकीन था कि वे इन चीजों की व्यवस्था के लिए अच्छे मित्र हरिप्रसाद पर भरोसा कर सकते हैं। वह आमतौर पर ताड़देव क्षेत्र में फेमस सिनेलेब्स नामक स्टुडियो का इस्तेमाल करते थे। इसी रिकॉर्डिंग स्टुडियो में राजकपूर की कामयाब फिल्मों—'आग', 'बरसात' और 'आवारा' की रिकॉर्डिंग हुई थी। रिकॉर्डिस्ट थे एक पारसी मीनू कात्रिक, जिन्हें प्यार से 'मीनू बाबा' कहा जाता था। वह हरिप्रसाद के मित्र थे और उड़ीसा के उनके मित्रों को बहुत सस्ते घंटे की दर पर स्टुडियो उपलब्ध करा देते थे। उस समय का किराया 400 रुपए प्रति घंटा था, लेकिन वह सिर्फ 300 रुपए लेते। स्वयं एक संगीतकार होने के कारण हरिप्रसाद मोहम्मद रफी और लता मंगेशकर सहित दूसरे संगीतकारों को रिकॉर्डिंग सत्रों के लिए बहुत आसानी से और सस्ते में तैयार कर लेते थे। जब वादकों की बात आती थी तो लक्ष्मीकांत और प्यारेलाल उनके दिमाग में हमेशा सबसे ऊपर रहते थे। इस दर्जे के कलाकारों के साथ न केवल साउंडट्रैक बढ़िया बनता था, बल्कि फिल्म के मूल्य तथा प्रचार-प्रसार को भी बढ़ा देता था।

कटक की पूरी टीम हरिप्रसाद के घर पर विचार-विमर्श करती और फिर सारी व्यवस्था होने के बाद स्टुडियो पहुँचती, ''तो आपने उड़ीसा के अपने मित्रों की खूब मदद की?'' मैंने पूछा, ''मैं कौन होता हूँ मदद करनेवाला? यह सब भगवान् की इच्छा है। मैं बस संयोगवश वहाँ था, इसलिए मैं जो कर सकता था, मैंने किया। वे मुझसे काफी प्यार करते थे और मैंने महसूस किया कि चूँकि उन्हें आने-जाने और ठहरने में काफी खर्च लगता था, उन्हें स्टुडियो और संगीतकारों से थोड़ी रियायत दिलाने से उनके खर्च की थोड़ी भरपाई हो जाएगी।'' हरिप्रसाद ने जवाब दिया।

सुविख्यात पार्श्वगायक मोहम्मद रफी के साथ।

वे उन पर इतने निर्भर थे कि कभी-कभी उन्हें संगीत देने के लिए भी कहा जाता था। उड़िया फिल्म 'माँ' के लिए उन्होंने पूरा साउंडट्रैक दिया और वह उसे संगीत निर्देशन का उनका पहला सोलो प्रयास मानते हैं।

फिर लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल पर वापस आएँ। वह फिल्म जिसने हरिप्रसाद को एक और 'प्रथम' दिलाया, वह था सन् 1967 का 'मिलन' के लिए साउंडट्रैक। सेंट जेवियर्स कॉलेज के संगीत मंडल ने लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल को वर्ष के बेहतरीन संगीतकार, आनंद बख्शी को बेहतरीन गीतकार और मुकेश को बेहतरीन गायक का दर्जा दिया, यह सब मिलन के साउंडट्रैक की बदौलत था। हालाँकि सबसे बड़ी विस्मय की बात थी फिल्म में एक वादक के रूप में योगदान के लिए हरिप्रसाद को दिया गया पुरस्कार। उन्होंने खुद को खुशकिस्मत महसूस किया। सिर्फ यही मौका था, जब एक स्टूडियो संगीतकार को उसके कार्य के लिए मान्यता दी गई। उनकी मेहनत और साउंडट्रैक तैयार करने में उनके योगदान के बावजूद स्टुडियो संगीतकार अनजान रहते हैं। पन्नालाल घोष, पंडित रामनारायण, उस्ताद रईस खान और अब्दुल हलीम जाफर जैसे महान् वादकों को भी फिल्मों में उनके काम के लिए कभी कोई मान्यता नहीं दी गई।

धीरे-धीरे, लेकिन निश्चित तरीके से। परिस्थितियाँ और घटनाएँ हरिप्रसाद के फिल्मी संगीत कैरियर को संगीत निर्देशन की ओर ले जा रही थीं। उड़िया फिल्मों के लिए उनके संगीत और पृष्ठभूमि कार्य, असंख्य हिंदी, बँगला, राजस्थानी एवं गुजराती गानों में उनकी बाँसुरी और अपने संगीत द्वारा किसी दृश्य को मनोहारी बनाने की उनकी क्षमता बेकार नहीं गई। एक दिन उनके युवा फिल्म निर्माता मित्र अवतार कृष्ण कौल ने उनसे संपर्क किया। वह अपनी पहली फीचर फिल्म '27 डाउन बंबई वाराणसी एक्सप्रेस', जिसे बाद में सिर्फ '27 डाउन' कहा गया, को लेकर अत्यंत उत्साहित थे। स्टोरीलाइन, जैसा कि नाम से लगता है, ट्रेन से संबंधित थी। एक ट्रेन कंडक्टर, जो एक कलाकार बनना चाहता था, लेकिन अपने पिता द्वारा इस कैरियर में धकेला गया, एक एक्सीडेंट में विकलांग हुआ एक इंजन ड्राइवर आदि।

यहाँ पर कई 'प्रथम' चीजें थीं। यह अवतार कृष्ण कौल की पहली फीचर फिल्म थी। यह खूबसूरत बंगाली रूपसी राखी की पहली मुख्य भूमिका थी, जो बाद में भारत की सबसे लोकप्रिय नायिकाओं में से एक बनीं। साथ ही, इसमें पहली बार अत्यंत आशंकित और अनिश्चित हरिप्रसाद ने पूरी तरह संगीत निर्देशन किया। उनकी हिचकिचाहट की वजह स्पष्ट थी। वह कई वर्षों से संगीत बना रहे थे, लकिन हमेशा किसी और के लिए, किसी और संगीत निर्देशक के बैनर के तहत। हालाँकि वह एक स्वतंत्र संगीत निर्देशक बनने का सपना देखते थे, वह इस खोल में सुरक्षित महसूस करते थे। वह उस कंफर्ट जोन से बाहर निकलने और स्वतंत्र रूप से संगीत देने के बारे में सोचकर घबराते थे, लेकिन वह एक पहलवान और पहलवान के बेटे थे तथा चुनौतियाँ स्वीकार करने के लिए प्रशिक्षित थे, इसलिए वह मान गए।

कहानी, पटकथा और निर्देशन सब कौल के ही थे। उसे एक 'आर्ट' फिल्म की तरह बनाया जाना था। (उस समय तक 'वैकल्पिक सिनेमा' शब्द प्रचलित नहीं हुआ था)। दो गीत पं. रवि किचलू द्वारा रिकॉर्ड किए जा चुके थे। हरिप्रसाद ने फिल्म के हर दृश्य का विश्लेषण किया और शास्त्रीय या अर्द्ध-शास्त्रीय संगीत पर फोकस रखने का फैसला किया। उन्होंने सारंगी के उस्ताद पं. रामनारायण, तबला के उस्ताद जाकिर हुसैन और प्रसिद्ध सरोद वादक जरीन दारूवाला की सेवाएँ लीं। इस मेल ने चमत्कार ला दिया और ऐसा साउंडट्रैक बना, जो इससे पहले न तो मुख्य धारा की सिनेमा में, न ही आर्ट फिल्मों में कभी सुनने को मिला था।

इस फिल्म को एक बॉक्स ऑफिस हिट के रूप में नहीं बेचा गया और न ही उसे इस तरह का बनाया गया था। व्यावसायिक कामयाबी का इसका अभाव इस तथ्य से स्पष्ट है कि लगभग किसी वीडियो लाइब्रेरी के पास आज

उसकी प्रति नहीं है, लेकिन उसे समीक्षकों की सराहना और प्रशंसा मिली। सन् 1973 में उसे बेहतरीन हिंदी फिल्म और बेहतरीन सिनेमाटोग्राफी (कैमरामैन ए. के. बीर द्वारा) का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। सन् 1974 में इसे लोकार्नो फिल्म फेस्टिवल में एकता संबंधी पुरस्कार और मैनहेम इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल में सुरीली फिल्म का पुरस्कार मिला। संगीत में अपने असाधारण और विशिष्ट कार्य के लिए हरिप्रसाद की भी तारीफ हुई।

एक तरफ पुरस्कार और सराहना की बरसात हो ही रही थी तो दूसरी तरफ अवतार कृष्ण कौल ने आत्महत्या कर ली। इस बारे में बहुत सी बातें उठीं, लेकिन उनकी मौत की बताई गई सभी वजहें सिर्फ सुनी-सुनाई बातें थीं।

'27 डाउन' की अपार सफलता कामयाबी के बाद हरिप्रसाद ने कटक के अपने पुराने मित्र भुवनेश्वर मिश्रा के साथ मिलकर भुवन-हरि के नाम से संगीत निर्देशन शुरू किया। उन्होंने साथ मिलकर तीन उड़िया फिल्मों के लिए संगीत दिया। सन् 1974 में 'समय' में, 1976 में 'गपा हेलेबी साता' और 1980 में 'बाता अबाता' में। सन् 1981 में उन्होंने पहली और आखिरी बार एक हिंदी फिल्म में संगीत दिया। उसका नाम था 'छुपा-छुपी' और अरुणा ईरानी तथा देवेन वर्मा मुख्य भूमिकाओं में थे, जबकि उड़िया फिल्मों ने व्यावसायिक रूप से और संगीत के क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन किया। 'छुपा-छुपी' एक अच्छी कहानी और विनोद के बावजूद सभी स्तरों पर विफल रही।

अपनी शुरुआती कामयाबियों, पैसे के तीव्र प्रवाह और अपनी संगीत देने की क्षमताओं से उत्साहित होकर तथा फिल्मी दुनिया की प्रसिद्धि और ग्लैमर की चकाचौंध से भरे हरिप्रसाद ने खुद फिल्म निर्माण करने का बीड़ा उठाया। इस काम में उनकी पत्नी ने उनकी मदद करने का फैसला किया, क्योंकि इससे उन्हें खुद को व्यस्त रखने के लिए एक महत्त्वपूर्ण काम मिल जाता। आधे मन से कोई चीज न करनेवाले हरिप्रसाद ने इसे स्टाइल से करने का फैसला किया। '70 के दशक की शुरुआत में उन्होंने राजेश खन्ना को अपनी फिल्म के लिए साइन किया। भारत के पहले असली मैटिनी आदर्श राजेश खन्ना उन दिनों भी एक फिल्म के लिए कई लाख रुपए लेते थे और उनका साइनिंग एमाउंट ही कई हजार में होता था। शास्त्रीय संगीतकार हरिप्रसाद के लिए सम्मान की वजह से और अपनी मित्रता को ध्यान में रखते हुए राजेश खन्ना ने एक भी पैसे की माँग किए बिना अनुबंध पर हस्ताक्षर कर दिए। इसी तरह हरिप्रसाद को एक भी पैसा एडवांस दिए बिना उस समय की अत्यंत लोकप्रिय अदाकारा जया भादुड़ी (अब जया बच्चन) अपनी फिल्म के लिए मिल गईं। अगली बाधा थी, एक अच्छा निर्देशक तलाशने की। उन दिनों निर्देशकों में हृषिकेश मुखर्जी का बड़ा नाम था और वह मित्र भी थे, इसलिए हरिप्रसाद ने उनसे संपर्क किया। ''दादा, मैं फिल्म निर्माण के क्षेत्र में आना चाहता हूँ। मैंने पहले ही राजेश खन्ना और जया भादुड़ी को साइन कर लिया है और चाहता हूँ कि आप उस फिल्म का निर्देशन करें।''

हृषिकेश मुखर्जी आगबबूला हो गए, ''तुम्हें लगता है कि फिल्म बनाना बच्चों का काम है?क्या आपको पता है, उसमें क्या होता है? तुम लुट जाओगे। मैं तुम्हारी बरबादी में साथ नहीं देना चाहता।'' उन्होंने स्नेह से कहा, ''मैं चाहता हूँ कि संगीतकार हरिप्रसाद चौरसिया इतना ही महान् संगीतकार रहे। अगर तुम फिल्म निर्माण में उतरते हो तो तुम्हारी प्रतिभा बेकार हो जाएगी।'' हृषिकेश मुखर्जी की इस फटकार ने हरिप्रसाद के जीवन के इस अध्याय को स्थायी रूप से बंद कर दिया। उन्होंने फिर कभी फिल्म निर्माण की ओर मुड़कर नहीं देखा।

पीछे की ओर देखते हुए वह महसूस करते हैं कि वह दैवी कृपा थी, ''वह (ईश्वर) हृषिकेश मुखर्जी के माध्यम से मुझे बरबाद होने से बचाने के लिए आए। हृषिकेश दा सही थे। अगर मैं फिल्म निर्माता बन जाता तो मेरे संगीत को अपूरणीय क्षति होती।'' उनकी खुशकिस्मती से राजेश खन्ना और जया भादुड़ी दोनों इतने व्यस्त थे कि उन्होंने प्रस्तावित फिल्म की नियति के बारे में पूछा ही नहीं। साइनिंग एमाउंट हो या नहीं, कोई भी अभिनेता किसी प्रोजेक्ट का स्थायी रूप से डब्बाबंद होना पसंद नहीं करता।

हरिप्रसाद ने दक्षिण भारत की क्षेत्रीय भाषाओं—तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम में सैकड़ों गाने रिकॉर्ड किए हैं। चूँकि वह इनमें से कोई भाषा खुद नहीं बोलते, उनके लिए गानों या फिल्मों के नाम याद रखना असंभव है। उन्हें सिर्फ दो फिल्मों की याद है, जिसकी उनके पास अच्छी वजह है।

उनमें से एक है सन् 1981 में बनी 'पोक्कुवेयिल' (गोधूलि)। वह वास्तविक अर्थों में एक प्रयोगधर्मी फिल्म थी। महान् निर्देशक स्व. जी. अरविंदन की पटकथा और निर्देशनवाली इस फिल्म में हरिप्रसाद ने सबसे निराकार संगीत दिया है। जब अरविंदन ने सबसे पहले हरिप्रसाद के साथ इस फिल्म के संगीत के बारे में चर्चा की तो इसके साउंडट्रैक में सिर्फ उनकी बाँसुरी होनी थी। कोई आघात नहीं, कोई गायन नहीं, किसी तानपुरे की आवाज तक नहीं, बस, बाँसुरी की ध्वनि की असंबद्ध तानें, जो अरविंदन को उसके आस-पास दृश्य बनाने की प्रेरणा दें। वह कहानी एक युवा कलाकार की थी (जिसका किरदार असली जिंदगी के कवि बालाचंद्रन चुल्लीक्काडु ने निभाया है), जो अकेलेपन और निराशा से जूझ रहा है और अंत में एक मानसिक चिकित्सालय में पहुँच जाता है।

हरिप्रसाद को ऐसा लगा कि सिर्फ बाँसुरी पर आधारित संगीत भारतीय दर्शकों को पसंद नहीं आएगा, अत: उन्होंने कुछ और वाद्यों को शामिल करने का सुझाव दिया। इसके अनुसार, सरोद एवं तबला के लिए क्रमश: राजीव तारानाथ और लतीफ अहमद को लिया गया। अरविंदन ने हरिप्रसाद को बंबई से चेन्नई बुलाया और दूसरे दो वादकों के साथ स्टुडियो में बिठाकर उन्हें संगीत देने को कहा। न कोई दिशा-निर्देश और न कोई पैरामीटर। यह हरिप्रसाद का रिकॉर्ड किया गया सबसे विचित्र संगीत है। पूरा सत्र सिर्फ दो घंटों में खत्म हो गया। पहले संगीत को रिकॉर्ड करने और फिर स्वरों तथा मूड के अनुसार दृश्य बनाने का विचार था। स्वयं जी. अरविंदन के शब्दों में, ''मैं पोक्कुवेयिल को संगीत, उसके कई मूडों और परिवर्तनों की दृश्य अभिव्यक्ति के रूप में बनाना चाहता था, जिसका अंत अतीत में हो। यह एक संवेदनशील युवक के धीरे-धीरे मानसिक रूप से टूटने की कहानी थी। मैंने फिल्म को संगीत के स्वरों के अनुसार काटने की कोशिश की और उसे एक ढाँचा देने का प्रयास किया।''

आम फिल्मी ढाँचे से भिन्न होने के बावजूद इस फिल्म को दर्शकों द्वारा खूब पसंद किया गया। अरविंदन ने हरिप्रसाद को चेन्नई से बंबई सम्मान के साथ लिखे गए एक सराहना-पत्र, जिसे हरिप्रसाद 'आदर भरी चिट्ठी' कहते हैं, के साथ फूल भेजे।

हरिप्रसाद को जिस दूसरी दक्षिण भारतीय फिल्म की याद है, वह है 'सिरीवेन्नेला'। यह विचित्र बात है कि 'पोक्कुवेयिल' का अर्थ गोधूलि होता है, 'सिरीवेन्नेला' का अर्थ होता है, चाँदनी। उन्हें सिर्फ संगीत की वजह से नहीं, बल्कि इस फिल्म के निर्देशक कासीनाधुनी विश्वनाथ या फिल्मी दुनिया में प्रचलित नाम के. विश्वनाथ द्वारा दिए गए अत्यधिक आदर की वजह से भी याद किया जाता है। विश्वनाथ हरिप्रसाद के व्यक्तित्व और उनके संगीत से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने ऐसी फिल्म बनाई, जिसका मुख्य किरदार 'पंडित हरिप्रसाद' नामक एक नेत्रहीन बाँसुरी-वादक (जिसका किरदार बँगला अभिनेता सर्वदमन बनर्जी ने निभाया था) है, जो टूरिस्ट गाइड 'ज्योतिर्मयी', जिसका किरदार प्रसिद्ध बँगला अभिनेत्री मुनमुन सेन ने निभाया था, के प्रेम में पड़ जाता है। अपनी प्रेयसी की याद में वह चाँदनी की संगीतमय व्याख्या 'सिरीवेन्नेला' की रचना करता है। मुनमुन सेन कहती हैं, ''वह वास्तव में एक असामान्य विषय था और फिल्म की खूबसूरती वह नेत्रहीन व्यक्ति है, जो वास्तव में चाँदनी को महसूस कर सकता है और उसे अपने संगीत में ला सकता है। मुझे हैरत होती है कि किसके दिमाग में यह विचार आया था?''

''मुझे उस फिल्म का संगीत वास्तव में पसंद है।'' वह आगे कहती हैं, ''इसलिए नहीं कि उस फिल्म में मैंने काम किया है या वह संगीत ऐसे व्यक्ति ने दिया है, जिसका मैं आदर करती हूँ, बल्कि इसलिए, क्योंकि चाँदनी की अभिव्यक्ति बहुत खूबसूरत है। ऐसा हर संगीतकार नहीं कर सकता। ऐसी भावना अभिव्यक्त करने के लिए

संगीतकार में वह गहराई होनी चाहिए।''

हरिप्रसाद के साथ संबंध के बारे में पूछे जाने पर वह हँसती हैं, ''पहली बार मैं जाकिर हुसैन के साथ हॉलीडे इन के कॉफी शॉप में मिली थी। मेरे पास बंबई में फ्लैट नहीं था, इसलिए मैं वहाँ रह रही थी। मेरे मित्र लगातार मुझे कहते रहते थे कि मैं उन्हें अपने लिए एक फ्लैट की व्यवस्था करने को कहूँ, क्योंकि उन्हें प्रॉपर्टी के बारे में काफी जानकारी थी। मैं पहली बार इस प्रसिद्ध संगीतकार से मिल रही थी और मैंने उन्हें फ्लैट दिलाने के लिए कहा।''

'सिरीवेन्नेला' का संगीत तेलुगु सिनेमा के लिए शास्त्रीय संगीत में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना जाता है। के.वी. महादेवन द्वारा दिए गए संगीत में हरिप्रसाद चौरसिया के बाँसुरी सोलो हैं। यह शायद एकमात्र ऐसा मामला है, जहाँ एक संगीतकार ने स्वयं खुद को ध्यान में रखकर लिखी गई फिल्म के लिए संगीत दिया है और जहाँ किरदार का नाम भी उसके नाम पर रखा गया हो। यह गीतकार सिरीवेन्नेला सीताराम शास्त्री की पहली फिल्म भी है, जो अपने ही गीतों पर इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने फिल्म का नाम अपने प्रथम नाम के रूप में लगा लिया। इस फिल्म का मुख्य आकर्षण एस. पी.बालासुब्रह्मण्यम और पी. सुशीला द्वारा गाया एक युगल गीत 'विधाता तालापुना' है, जो हिंदुत्व के सबसे पवित्र प्रतीक 'ओम' से संबंधित है। सन् 1986 में रिलीज यह फिल्म बॉक्स ऑफिस पर कामयाब रही। उतना ही कामयाब इसका साउंडट्रैक रहा, जिसके हर गाने को अब तक तेलुगु फिल्म संगीत का एक मास्टरपीस माना जाता है।

बंगाली सिनेमा में हरिप्रसाद का प्रवेश दक्षिण भारतीय फिल्मों जितना गहरा नहीं रहा। इसका कारण स्पष्ट है। बंगाली सिनेमा के गढ़ टॉलीगंज में हमेशा बाँसुरी-वादकों का एक अपना ब्रिगेड रहा है, जो काफी बेहतर थे, उन्हें इसके लिए बंबई से किसी को बुलाने की जरूरत नहीं थी। इसके अलावा, सिर्फ एक रिकॉर्डिंग के लिए हरिप्रसाद को हवाई जहाज से बंबई से बुलाना, उन्हें होटल में ठहराना (आमतौर पर चौरंगी में ग्रैंड होटल) और फिर उन्हें हवाई जहाज से बंबई भेजना काफी खर्चीला था। कभी-कभार जब कोई बड़ा नाम, जैसे मन्ना डे या हेमंत कुमार मुखर्जी या सलिल चौधुरी उनकी माँग करते तो निर्माता सहमत हो जाते; लेकिन काफी अनिच्छा से। उन्होंने जिन प्रसिद्ध बँगला फिल्मों के लिए बाँसुरी बजाई है, वे हैं 'बालिका वधू' और 'शुख शारी'।

जिन गैर-फिल्मी परियोजनाओं में उन्होंने मन्ना डे के साथ सहयोग किया, उनमें से एक है डॉ. हरिवंश राय बच्चन की लोकप्रिय कविता 'मधुशाला'। इसे मन्ना डे ने जयदेव के संगीत निर्देशन में गाया है, जिसमें हरिप्रसाद ने बाँसुरी से साथ दिया है।

लता मंगेशकर की पहली झलक हरिप्रसाद को फिल्म 'मनमौजी' के एक गीत की रिकॉर्डिंग के समय मिली, जब वह कटक में ही थे। इसके बाद उन्होंने कई और रिकॉर्डिंग साथ कीं। वह मुख्य कमरे में ऑर्केस्ट्रा के साथ होते और लता गायक के शीशे के क्यूबिकल में होतीं। वह श्रद्धा की दृष्टि से लताजी को देखते तथा सोचते कि उनसे मिलना और उन्हें जानना कैसा होगा, क्योंकि देश के अधिकतर संगीतज्ञों की तरह वह उन्हें देवी सरस्वती का अवतार मानते हैं। उन्हें थोड़ा सा इंतजार करना पड़ा, जिसके बाद वह बिलकुल उपयुक्त वातावरण में उनसे मिले।

सुप्रसिद्ध पार्श्वगायक मन्ना डे के साथ।

लता मंगेशकर के अनुभवी कानों ने तुरंत उनकी बाँसुरी की असाधारण ध्वनि और उनके समर्पण तथा एकाग्रता को पहचाना। कोई भी स्वर इधर-उधर नहीं जाता था और वह कभी इधर-उधर नहीं देखते थे।

''एक कुरता और धोती में युवा बाँसुरी-वादक हरिप्रसाद को देखकर आपको क्या महसूस हुआ था?'' मैंने लता मंगेशकर से पूछा। उन्होंने जवाब दिया, ''उसमें कुछ भी असामान्य नहीं था, लेकिन हमारे सभी गायक, संगीतकार और संगीत निर्देशक यह कहा करते थे कि यह नया लड़का बहुत अच्छा बजाता है। मुझे उनके बारे में जो चीज सबसे ज्यादा पसंद आई, वह यह थी कि उन्होंने कभी रियाज करना नहीं छोड़ा। वह हमेशा बेहतरीन रहना चाहते थे और इस वजह से बिना थके रियाज करते थे। चूँकि काम इतना अधिक था और हम सब इतने व्यस्त थे कि हमारे बीच बहुत अधिक बातचीत नहीं हो पाती थी और आमतौर पर यह एक विनम्र नमस्ते तक सीमित होती थी।''

सन् 1967 में किसी समय उन्होंने हरिप्रसाद को अपने घर पर आकर मिलने का संदेश दिया। हरिप्रसाद रोमांचित थे। लता से मिलना उनका सबसे बड़ा सपना था और अब खुद उन्होंने आने का आमंत्रण दिया था। वह अपनी बाँसुरी के साथ उनके घर गए और उनके लिए बजाया। उनकी बहनों और उनके भाई हृदयनाथ मंगेशकर सबने ध्यानमग्न होकर सुना। हृदयनाथ ने हरिप्रसाद से लता मंगेशकर के गैर-फिल्मी गानों की एक निजी रिकॉर्डिंग के लिए बाँसुरी बजाने के लिए कहा, जिसके लिए वह संगीत दे रहे थे। हरिप्रसाद ने 'हाँ' कर दी और बाकी इतिहास है। इसके परिणामस्वरूप भक्ति संगीत एलबमों की एक श्रृंखला सामने आई, जैसे ज्ञानेश्वरी, भगवद्गीता, चल वही देस, मीरा के भजन और मराठी भाव संगीत। वह कहती हैं कि हरिप्रसाद ने उनके लिए जितना भी बाँसुरी-वादन किया है, उनमें सबसे स्मरणीय इन एलबमों में है। उन्होंने मुझसे कहा, ''भगवद्गीता का नौवाँ, बारहवाँ और पंद्रहवाँ अध्याय जरूर सुनिएगा। इसमें हरिजी ने बहुत अच्छा बजाया है।'' उनके लिए चार दशक पहले की रिकॉर्डिंग का याद रहना यह साबित करता है कि हरिप्रसाद का बाँसुरी-वादन कैसा था।

सुर-सम्राज्ञी लता मंगेशकर के साथ विनोद करते हुए।

लता मंगेशकर को तिरुपति बालाजी मंदिर के अधिकारियों द्वारा 'स्थान संगीत विद्वान सरलू' (मंदिर का दरबारी संगीतकार) का खिताब दिया गया था। उस अवसर पर उन्हें देवता के समक्ष गाने को कहा गया। वह बाँसुरी-वादन में साथ देने के लिए हरिप्रसाद, तबला के लिए रवि दाते और हारमोनियम बजाने के लिए संगीत निर्देशक महावीर को अपने साथ ले गईं। तिरुपति के रास्ते में वे मद्रास में एक गेस्टहाउस में ठहरे हुए थे, जो पूरी तरह निरामिष स्थान था। हरिप्रसाद लता के पास आए और फुसफुसाकर बोले, ''आप इस गेस्टहाउस का खाना क्यों खा रही हैं? मैं आपके लिए अच्छा भोजन ले आऊँगा।'' वह कुछ देर के लिए नजदीक के बाजार गए और फिर कुछ मांसाहारी भोजन के साथ वापस आए, जिसे वह चुपचाप गेस्टहाउस के अंदर ले गए। भगोड़ों की तरह एक ही कमरे में इकट्ठा होकर उन्होंने भोजन का आनंद लिया। वे भोजन से अधिक नियम तोड़ने का बच्चों जैसे रोमांच का आनंद उठा रहे थे।

तिरुपति मंदिर का अनुभव हरिप्रसाद के लिए अविस्मरणीय था। वहाँ मुख्य पहाड़ी पर मंदिर बना हुआ है और उसकी पड़ोसी पहाड़ियों पर मंदिर में होनेवाले उस परफॉर्मेंस के लिए लाउडस्पीकर लगाए गए थे। सिर्फ लता

मंगेशकर की टीम और कुछ पुजारियों को अंदर आने की अनुमति दी गई थी। हरिप्रसाद ने फैसला किया कि वह अपनी बाँसुरी को मूर्ति के पैरों पर रखना चाहते हैं। बाँसुरी अब उनका जीवन एवं जीविका थी और वह ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त करना चाहते थे। पहले कभी किसी को ऐसा कुछ करने की इजाजत नहीं दी गई थी। जिद्दी हरिप्रसाद ने बाँसुरी-वादन करने से इनकार कर दिया, ''अगर मेरी बाँसुरी को ईश्वर का आशीर्वाद नहीं मिला तो मैं बाँसुरी नहीं बजाऊँगा।'' उन्होंने कहा। इससे हर कोई दुविधा में फँस गया। उन्हें इस बारे में इतना गंभीर देखते हुए पुजारियों ने आखिरकार उनकी माँग मान ली।

लता मंगेशकर ने मीरा के कुछ भजन और भगवद्गीता के कुछ श्लोक गाए। उनके पास उस सुबह की बहुत अच्छी यादें हैं। हरिप्रसाद भी उस बारे में बात करते हुए काफी उत्साहित हो उठते हैं, ''वह परफॉर्मेंस शुद्ध आनंद था। मैंने महसूस किया कि मेरी बाँसुरी लताजी की आवाज के साथ गा रही है।''

उन्होंने जिन संगीत निर्देशकों के लिए काम किया है, जिन फिल्मी गीतों में बाँसुरी बजाई है और जिन पृष्ठभूमि संगीत का वह हिस्सा रहे हैं, वे इतने अधिक हैं कि यहाँ उनकी गिनती नहीं की जा सकती। '60 के दशक में 'मनमौजी' से लेकर '90 के दशक में 'नगीना' तक उन्होंने फिल्म संगीत पर वह छाप छोड़ी है, जो कोई वादक नहीं छोड़ पाया। यह पूछे जाने पर कि विभिन्न संगीत निर्देशकों के लिए बाँसुरी बजाते समय उन्होंने क्या महसूस किया, वह कहते हैं, ''वे भारतीय शास्त्रीय संगीत के अलग-अलग घरानों की तरह हैं। हर संगीत निर्देशक भिन्न है। अपनी सोच में, अपनी अभिव्यक्ति में, अपने प्रदर्शन में और जिस रूप में वह संगीतकारों से काम लेता है। लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल जैसे कुछ संगीत निर्देशक संगीत का मुख्य ढाँचा तैयार करते और एक अच्छे एकल गायक या वादक द्वारा अपना कुछ करने की गुंजाइश छोड़ देते। खय्याम जैसे कुछ अन्य लता मंगेशकर सहित किसी भी संगीतकार को स्कोर शीट पर न लिखा हुए एक भी सुर गाने या बजाने की अनुमति नहीं देते। दोनों अपनी वैयक्तिक शैलियों पर उतना ही गर्व महसूस करते हैं, एक संगीतकारों को आजादी देने के लिए और दूसरा अपने संगीत का मास्टर एवं एकल निर्माता होने के लिए। विभिन्न आधार बनाने के लिए इस्तेमाल किए गए वाद्य भी व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करते हैं।''

कुछ दार्शनिक अंदाज में वह सामान्य तौर पर सिनेमा के बारे में कहते हैं, ''पारंपरिक रूप से लोगों ने हमेशा फिल्मोद्योग को बुराइयों से भरा हुआ मानकर उसे नीची नजर से देखा है। यह सिर्फ कुछ लोगों के निजी जीवन और मीडिया द्वारा चीजों को बढ़ा-चढ़ाकर बताने की वजह से है। अगर आप इसके सकारात्मक पक्ष की ओर देखें तो फिल्मोद्योग ने देश को काफी कुछ दिया है। वह हजारों लोगों को रोजगार देता है। जब भी कोई अकाल या बाढ़ या लड़ाई होती है तो हमेशा फंड जुटाने में फिल्मी दुनिया सबसे आगे होती है। उसने बाकी उद्योगों से कहीं अधिक रचनात्मकता को सहारा दिया है। लेखकों, गीतकारों, सेट डिजाइनरों और कलाकारों, सभी को फिल्मों से बहुत कुछ मिला है। फिल्म उद्योग इतना महान् है कि उसने भिखारियों और सड़क किनारे बाँसुरी बेचनेवालों तथा सारंगी बेचनेवालों को भी परदे पर दिखाते हुए उन्हें इज्जत बख्शी है। सबसे अधिक, इसने मुझे ढेर सारा पैसा और संतुष्टि दी है। अगर मैं फिल्मों से इतना पैसा नहीं कमा पाता तो कभी अपने शास्त्रीय संगीत को आगे नहीं बढ़ा पाता।''

'छुपा-छुपी' के साउंडट्रैक के लिए भुवन-हरि के तालमेल के अलावा वर्ष सन् 1981 में हरिप्रसाद को प्रसिद्ध शिव-हरि टीम के अर्धांग के रूप में एक नए अवतार में देखा गया। उन्होंने यश चोपड़ा के यशराज बैनर के लिए संगीत दिया। शिवकुमार शर्मा और हरिप्रसाद चौरसिया की जोड़ी ने सन् 1965 में 'जब-जब फूल खिले' से फिल्मी गीतों पर साथ काम करना शुरू किया था। हालाँकि ऐतिहासिक रूप से फिल्म संगीत में शिवकुमार शर्मा का आगाज हरिप्रसाद से काफी पहले हुआ था। उन्हें सन् 1955 में वी. शांताराम की हिंदी फिल्म 'झनक-झनक पायल

बाजे' में संतूर बजानेवाले पहले संगीतकार होने का सम्मान प्राप्त है। शिवकुमार शर्मा और हरिप्रसाद बहुत अच्छे मित्र थे और उन्होंने दुनिया भर में साथ मिलकर शास्त्रीय संगीत के कॉन्सर्ट किए थे। वे असंख्य फिल्मों में पृष्ठभूमि संगीत का हिस्सा रहे थे और अब तक मूड बनाने की कला में निष्णात हो चुके थे। सिनेमाटोग्राफी और संपादन में तेजी से प्रौद्योगिकीय प्रगति होने के कारण मूड में जल्दी बदलाव की आवश्यकता बढ़ती जा रही थी, क्योंकि दृश्यों के बीच का अंतर कम होता जा रहा था। दोनों ने अपने-अपने कौशल में प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। साथ ही दोनों ने बॉलीवुड के संगीतकारों के रूप में अपनी गतिविधियों को प्रचारित न करने में काफी सावधानी रखी थी, इसलिए उनके शास्त्रीय संगीत के प्रशंसकों को इस बारे में कोई जानकारी नहीं थी। हरिप्रसाद के लिए अपनी गतिविधियों को छिपाकर रखना अपेक्षाकृत आसान था, क्योंकि वह अपने शास्त्रीय संगीत के कंसर्टों के लिए बड़ी 'ई' बाँसुरी का इस्तेमाल करते थे, लेकिन फिल्मी संगीत के लिए आमतौर पर छोटी और तीखी बाँसुरियों पर निर्भर थे।

''हमारी और शिवजी की बहुत जमती थी।'' हरिप्रसाद कहते हैं। शिवकुमार शर्मा अपनी मित्रता के प्रति और भी दार्शनिक दृष्टिकोण रखते हैं। वह कहते हैं, ''कुछ लोगों के साथ हमारा पिछले जन्म का संबंध होता है, जो हम इस जन्म में इस शरीर में आने के बाद भूल जाते हैं, लेकिन जब वह व्यक्ति आपके सामने आता है तो एक आकस्मिक, अवर्णनीय नजदीकी महसूस करते हैं, जो सिर्फ इसी पिछले जन्म के संबंध की वजह से हो सकता है। हरिप्रसाद और मेरा मामला भी यही है। हम बंबई के रिकॉर्डिंग स्टुडियो में मिले और तब से हमने दिन के चौबीस घंटों का बड़ा हिस्सा एक-दूसरे के साथ बिताया है, चाहे वह स्टुडियो में हो या दुनिया भर के दौरों में या एक-दूसरे के घरों में।'' निश्चित रूप से कहीं कोई 'दिव्य' संबंध जरूर है, क्योंकि हरिप्रसाद ने अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध संगीतकार बनने के लिए अपनी नौकरी और इलाहाबाद का अपना घर छोड़ दिया, जबकि शिवकुमार शर्मा ने भी अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध संगीतकार बनने के लिए जम्मू में अपना घर और नौकरी का एक प्रस्ताव ठुकरा दिया था।

यश चोपड़ा उनके मित्र थे और वे बी.आर. चोपड़ा के साथ काम करने के समय से एक-दूसरे को जानते थे। राजकमल स्टुडियो में 'वक्त' और 'हमराज' जैसी फिल्मों के लिए गानों की रिकॉर्डिंग के दौरान अकसर जब हरिप्रसाद और शिवकुमार शर्मा की कुछ देर के लिए जरूरत नहीं होती तो वे बैठकर यश चोपड़ा के साथ गप मारते। जब उन्होंने अपना प्रोडक्शन हाउस बनाया तो चाहे संगीत निर्देशक जो भी हो, वह सिर्फ हरिप्रसाद और शिवकुमार के साथ ही पृष्ठभूमि संगीत की रिकॉर्डिंग करते थे। उन्हें दृश्य दिखाया जाता और उसे 'सँभालने' के लिए कहा जाता। आमतौर पर किसी तरह का लिखित या कंपोज किया गया संगीत नहीं होता था। दोनों उसी समय संगीत तैयार करते, कुछ मिनटों तक रिहर्सल करते और तत्काल रिकॉर्डिंग के लिए चले जाते। 'कभी-कभी' और 'त्रिशूल' इन दोनों द्वारा तात्कालिक पृष्ठभूमि संगीत के अच्छे उदाहरण हैं।

यश चोपड़ा ने संगीत निर्देशकों के रूप में उनकी क्षमता को तब पहचाना, जब उन्होंने उनका एलबम 'कॉल ऑफ द वैली' सुना और अपने एक ऐसे प्रोडक्शन में उनकी प्रतिभाओं का इस्तेमाल करने का फैसला किया, जहाँ कहानी में उनकी तरह के संगीत की माँग हो। उनके शब्दों में, ''मैं उन्हें लंबे समय से जानता था और वे मेरी शुरू की फिल्मों में पृष्ठभूमि संगीतकारों की टीम का हिस्सा हुआ करते थे। मेरे दिल में उनके लिए बहुत इज्जत थी, क्योंकि वे महान् संगीतकार हैं, लेकिन जब मैंने 'कॉल ऑफ द वैली' सुना तो अपने आपसे कहा कि मुझे संगीत निर्देशक के रूप में उनके साथ काम करना चाहिए, क्योंकि वे बहुत सुरीले हैं और उनका संगीत बहुत मौलिक है। जब मैंने 'सिलसिला' बनाने की सोची तो उन्हें बुलाया, क्योंकि पहले मैं उनसे वायदा कर चुका था कि जब भी मेरे दिमाग में ऐसी फिल्म आएगी, जो उनकी संगीत शैली के अनुरूप हो तो मैं अपना वायदा पूरा करूँगा।''

हरिप्रसाद के अनुसार, यश चोपड़ा ने सबसे पहले 'काला पत्थर' के निर्माण के दौरान उनसे संपर्क किया था। फिल्म का संगीत राजेश रोशन दे रहे थे और कुछ गाने रिकॉर्ड किए जा चुके थे। कुछ वजहों से उस फिल्म पर काम बंद हो गया और बाकी का साउंडट्रैक बनाने का प्रस्ताव उन्हें दिया गया। जैसी कि उम्मीद थी, उन्होंने इनकार कर दिया। पहले तो महसूस किया कि किसी दूसरे संगीत निर्देशक से काम लेकर उन्हें देना अनैतिक था। दूसरे, वे मित्र थे और उन्होंने रोशन के संगीत पर भी काम किया था, इसलिए वे किसी से संबंध खराब नहीं करना चाहते थे। जैसा कि हरिप्रसाद कहते हैं, ''हम किसी की बददुआ क्यों लें?''

यश चोपड़ा अपनी अगली फिल्म 'सिलसिला' पर काम कर रहे थे, जिस फिल्म में शशि कपूर, अमिताभ बच्चन, जया बच्चन और रेखा जैसे लोकप्रिय कलाकार थे। इस फिल्म में शिव-हरि ने पहली बार स्वतंत्र संगीत निर्देशकों के रूप में अपनी प्रतिभा साबित की। इसके अलावा, इसमें गीत लिखने का जावेद अख्तर का पहला अवसर था। पहली बार अमिताभ बच्चन ने एक फिल्म में दो गाने गाए और पहली बार उनके पिता डॉ. हरिवंश राय बच्चन के बोलों को किसी हिंदी फिल्म में इस्तेमाल किया गया।

'शिव-हरि' नाम की उत्पत्ति भी उतनी ही दिलचस्प है। सन् 1971 में स्वीडन में उनकी एक रिकॉर्डिंग थी। उन्होंने स्टॉकहोम की एक रिकॉर्ड कंपनी के लिए बाँसुरी व संतूर की एक जुगलबंदी बजाई। उस एलबम का नाम जुगलबंदी था, जिसमें साइड 'ए' में राग झिंझोती और दूसरी साइड में राग पीलू था। जब एलबम का कवर डिजाइन करने की बात आई तो उन्होंने महसूस किया कि कवर पर पंडित शिवकुमार शर्मा और पंडित हरि प्रसाद चौरसिया लिखने से वह कवर होर्डिंग की तरह लगेगा, इसलिए उन्होंने अपने नामों को यथासंभव संक्षिप्त करने का फैसला किया और 'शिव-हरि' नाम रखा। हरिप्रसाद यह भी चाहते थे कि शिवकुमार शर्मा का नाम पहले आए, क्योंकि उनका जन्म 13 जनवरी, 1938 को हुआ है और वह हरिप्रसाद से कुछ महीने बड़े हैं। इसके अलावा हरिप्रसाद के अपने बड़े भाई, जिनकी युवावस्था में मृत्यु हो गई थी, का नाम शिव प्रसाद था। इसलिए भावनात्मक कारणों से 'शिव' को 'हरि' से पहले आना था।

यश चोपड़ा ने उन्हें पूरी आजादी दी। परिणामस्वरूप इसके संगीत में लगभग सत्तर संगीतकारों का इस्तेमाल किया गया है। लता मंगेशकर कहती हैं कि उन्हें उन गानों पर उनके साथ काम करके आनंद आया, क्योंकि शास्त्रीय संगीत की परंपरा में डूबा उनका संगीत का आधार संगीत को मौलिकता प्रदान करता है। जब यश चोपड़ा ने पहली बार शिव-हरि को फिल्म की कहानी सुनाई, तो उन्होंने धुनें बनाने के लिए कुछ समय माँगा। वे बाद में बहुत सी धुनों के साथ यश चोपड़ा के पास आए, जिनमें से उन्होंने अपनी पसंदीदा धुनें चुनीं और वही फिल्म में इस्तेमाल की गईं।

'सिलसिला' फिल्म के संगीत-निर्माण के दौरान अमिताभ बच्चन और यश चोपड़ा के साथ शिव-हरि।

कुछ गीत बाद में जावेद अख्तर ने लिखे। यश चोपड़ा के पास पहले से निदा फजली और हसन कमाल द्वारा लिखा गया एक-एक गीत था, जिसके कारण क्रेडिट में बहुत से गीतकारों का उल्लेख है। जावेद अख्तर ने इससे पहले 'त्रिशूल' एवं 'दीवार' में पटकथा लेखक के रूप में यश चोपड़ा के साथ काम किया था और वे अच्छे मित्र बन गए थे। वह हर शाम यश चोपड़ा के घर जाकर अपनी कविताएँ उन्हें सुनाया करते थे। जब यश चोपड़ा ने सुझाव दिया कि वह 'सिलसिला' के लिए गीत लिखें तो वह हिचकिचा रहे थे, लेकिन यश चोपड़ा को यकीन था

कि अगर वह इतनी खूबसूरत कविताएँ लिख सकते हैं तो निश्चित रूप से अच्छे गीत भी लिख सकते हैं।

इस फिल्म और इसके संगीत में मेगास्टार अमिताभ बच्चन का शामिल होना अब एक ऐतिहासिक महत्त्व ले चुका है। हर रात अपनी शूटिंग खत्म होने के बाद वह यश चोपड़ा के घर जाकर कहानी, लोकेशनों, संगीत आदि पर चर्चा करते। जब उन्होंने 'देखा एक ख्वाब' गाना सुना तो खुद उसकी शूटिंग हॉलैंड के कीकेनहोफ गार्डन में करने का सुझाव दिया, क्योंकि उन्होंने अपने बच्चों के साथ छुट्टियाँ मनाने के दौरान उस गार्डन का फिल्मांकन किया था। वह एक 8 एम.एम. फिल्म थी (क्योंकि उस समय कोई वीडियो नहीं होता था), जिसे उन्होंने यश चोपड़ा को दिखाया और कीकेनहोफ में दो गानों की शूटिंग फाइनल की गई, 'नीला आसमान' और 'ये कहाँ आ गए हम'। उन्होंने फिल्म के लिए दो गाने भी गाए। उनमें से एक उनके पिता का लिखा हुआ प्रसिद्ध 'रंग बरसे' गीत था।

इस बारे में एक गलत धारणा प्रचलित है कि यह गाना हरिवंश राय बच्चन ने खासतौर पर इस फिल्म के लिए लिखा था। सच यह है कि यह होली के अवसर पर उत्तर प्रदेश में गाया जानेवाला गीत है। यश चोपड़ा ने कई होली समारोहों में अमिताभ को यह गाते सुना था और इसलिए उन्हें इस फिल्म के लिए यह गाने का अनुरोध किया। 'नीला आसमान' गाने में भी उनके पिता का बड़ा योगदान था, इसलिए यश चोपड़ा ने उनसे यह गीत भी गाने का अनुरोध किया।

पहले दृश्य से ही बाँसुरी और संतूर सर्वव्यापी था। अपनी लोकप्रिय धुन, नटखट शब्दों, बढ़िया चित्रण और अमिताभ बच्चन की मध्यम तानवाली आवाज ने इसे पारंपरिक गाने से कहीं ऊपर उठा दिया है। सन् 1981 से लेकर वर्तमान समय तक यह होली पर देश का 'प्रिय गान' है। यह एक महत्त्वपूर्ण होली गीत बन गया है और कोई भी होली समारोह इसके बिना पूरा नहीं होता। इसे विभिन्न उद्देश्यों के लिए पृष्ठभूमि धुन के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता रहा है।

संगीत निर्देशन में पहली कोशिश में शिव-हरि ने काफी अच्छा किया। फिल्म संगीत के स्थापित गुरुओं से तगड़ी प्रतिस्पर्धा के बावजूद इस एलबम को प्लेटिनम मिला। उस साल पहले ही 'कुर्बानी' का साउंडट्रैक कामयाबी से बज रहा था, जिसमें लंदन में जनमी पाकिस्तानी किशोरी गायिका नाजिया हसन की नाक वाली आवाज ने लता मंगेशकर को खतरे में डाल दिया था वह लगातार चौदह सप्ताह से बज रहा था। उस वर्ष के दूसरे यादगार साउंडट्रैक 'उमराव जान', 'रॉकी', 'याराना', 'नसीब', 'एक दूजे के लिए', 'लावारिस' और 'क्रांति' के थे।

सिर्फ पहले दो गाने ही रिकॉर्ड हुए थे कि उसकी चर्चा जोरों पर चल पड़ी और शिव-हरि को सात फिल्म निर्माताओं ने अपनी फिल्मों के लिए संगीत देने का प्रस्ताव रखा। उन्होंने कोई प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। यह काम वे शौकिया कर रहे थे और उसमें इतना नहीं उलझना चाहते थे कि उनका शास्त्रीय संगीत प्रभावित हो। बहुत लोग नहीं जानते थे कि 'शिव-हरि' क्या है। वह एक व्यक्ति का नाम है या दो लोग हैं? वह या वे कौन थे?किसी अनुभव के अभाववाला कोई व्यक्ति इतना खूबसूरत संगीत कैसे दे सकता है?हरिप्रसाद की पत्नी के पास फोन आते थे और फोन करनेवाला जानना चाहता था, ''आप शिव-हरि की पत्नी हैं?''

जब वह फिल्म रिलीज हुई और यह बात फैली कि 'शिव-हरि' टीम में असल में प्रसिद्ध संतूर-वादक शिवकुमार शर्मा और प्रसिद्ध बाँसुरी-वादक हरिप्रसाद चौरसिया हैं, तो शास्त्रीय संगीत की दुनिया से भी प्रतिक्रियाएँ आईं। यह न जानते हुए कि 'शिव' और 'हरि' अपनी पूरी जिंदगी फिल्मों के लिए बजाते रहे हैं, शास्त्रीय संगीत के प्रशंसकों ने दर्जनों पत्र भेजकर कला को व्यावसायिकता की वेदी पर बलिदान कर दिए जाने पर निराशा व्यक्त की। उन्होंने आरोप लगाया, ''आप भी पैसे और ग्लैमर की दुनिया में चले गए। क्या अब आप शास्त्रीय संगीत छोड़ देंगे?''

फिल्म के रिलीज होने के बाद जब लोगों ने उसका साउंडट्रैक सुना तो उनका डर दूर हो गया। देश भर के कंसर्टों में श्रोता हरिप्रसाद और शिवकुमार के पास आकर कहते, ''मैंने आपको पत्र लिखकर कहा था कि आप फिल्मों में संगीत न दें, लेकिन मुझे लगता है कि आपको यह काम जारी रखना चाहिए, क्योंकि उसका संगीत वास्तव में अच्छा है।''

सन् 1985 में चार वर्ष के अंतर पर 'फासले' फिल्म आई, जिसे एक गोल्ड डिस्क दिया गया। उसे सिर्फ 'राम तेरी गंगा मैली', 'मेरी जंग', 'सलमा' और अभिनेत्री डिंपल कपाड़िया की वापसीवाली फिल्म 'सागर' से प्रतिस्पर्धा मिली।

तीन वर्ष बाद सन् 1988 में 'विजय' आई, जिसमें बहुत से कलाकार थे। इसके लिए भी शिव-हरि के साउंडट्रैक को प्लेटिनम डिस्क मिला। इस बार उसका मुकाबला कई बड़े प्रोडक्शनों जैसे 'खून भरी माँग', 'गंगा जमुना सरस्वती', 'कयामत से कयामत तक', 'दयावान' और 'तेजाब' (जिसमें माधुरी दीक्षित और 'एक दो तीन' गाने ने पूरे देश को थिरका दिया) से था।

अगले साल शिव-हरि का बेहतरीन समय आया। 'चाँदनी' ने देश में खलबली मचा दी। प्लेनेट बॉलीवुड वेबसाइट के अनुसार, यह हिंदी सिनेमा के सार्वकालिक महान् साउंडट्रैकों में 72वें स्थान पर है, जिसका अग्रगण्य 'दिल चाहता है' और 'धड़कन' इसका पीछा करती हैं। इस बात को देखते हुए यह कोई मामूली बात नहीं है कि बॉलीवुड ने लगभग 30,000 फिल्में बनाई हैं। साउंडट्रैक में 'मेरे हाथों में नौ-नौ चूड़ियाँ हैं' को बॉलीवुड की सबसे लोकप्रिय धुनों में से एक माना जाता है और आज भी उत्तर भारत की शादियों में बजाया जाता है। इसमें पहली बार अभिनेत्री श्रीदेवी ने शीर्षक गीत 'चाँदनी ओ मेरी चाँदनी' गाया। कहा जाता है कि वह 'सिलसिला' में शिव-हरि द्वारा अमिताभ की आवाज के बेहतरीन प्रबंधन से प्रेरित थीं। हरिप्रसाद के अनुसार, वह गाने में उतनी प्रवीण नहीं थीं, जितने अमिताभ थे और उन्हें काफी सावधानी से सँभालना पड़ा। रिकॉर्डिंग खत्म होने के बाद जब उन्होंने फाइनल कट सुना तो वह अपनी आवाज से संतुष्ट नहीं थीं और उन्होंने पूछा कि क्या रिकॉर्डिंग फिर हो सकती है? स्टुडियो को उनके लिए फिर से बुक करना पड़ा और आखिरकार जो गीत रिकॉर्ड हुआ, वह सबके सामने है। इस साउंडट्रेक को चार प्लेटिनम डिस्क मिले।

सन् 1991 में 'लमहे' रिलीज हुई। उसके संगीत का क्षेत्र बहुत व्यापक था। 'मेघा रे मेघा' के राजस्थानी लोकगीत से लेकर 'कभी मैं कहूँ, कभी तुम कहो' की शहरी तानों तक, 'मोहे छेड़ो ना नंद के लाला' भजन से इला अरुण के 'मोरनी बागा' में बोले तक हर किसी के लिए कुछ-न-कुछ था। हालाँकि कुछ बहुत खूबसूरत धुनों और गजब के पृष्ठभूमि संगीत के बावजूद एलबम की बिक्री उनकी पुरानी फिल्मों की तुलना में काफी कम थी। शायद उस साल चुनने के लिए काफी अच्छा संगीत बाजार में था, 'दिल है कि मानता नहीं', 'लेकिन', 'साजन', 'सौदागर', 'हिना', 'डैडी', 'सड़क' और 'सनम बेवफा' फिल्में रिलीज हुई थीं।

अब तक की शिव-हरि की सभी फिल्में यश चोपड़ा की फिल्में थीं। उनका अगला काम ए. जी. नाडियाडवाला की 'परंपरा' में देखने को मिला। सन् 1992 में रिलीज हुई यह फिल्म न तो व्यावसायिक रूप से, न ही संगीत की दृष्टि से बहुत कामयाब थी, लेकिन उसमें दो कलाकारों को पहली बार सामने लाया गया था—सैफ अली खान और दक्षिण की सेक्सी रूपसी रम्या।

सन् 1993 में शिव-हरि ने एक धमक के साथ संगीत निर्देशकों के रूप में अपना कैरियर समाप्त किया। उस वर्ष उन्होंने दो फिल्मों में संगीत दिया, 'साहिबाँ' (रमेश तलवार के निर्देशन में) और 'डर'। 'डर' में सुपर हिट गाना 'तू है मेरी किरन' था, जिसने पहले ही लोकप्रिय हो चुके शाहरुख खान के कैरियर को एक और उछाल दी।

''लेकिन इतने कामयाब कैरियर का अचानक ऐसा अंत क्यों?'' मैंने उनसे पूछा। रॉटरडम कंजर्वेटरी में हरिप्रसाद के चार महीने लंबी अवधि तक रहने, अमेरिका और यूरोप के थकाऊ टूर, फिल्म संगीत में बदलती पसंद और भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रसार के लिए उनकी अपनी गहरी तथा दीवानगी भरी व्यक्तिगत प्रतिबद्धता, सिनेमा को उनकी स्थायी विदाई की उनके द्वारा दी गई कुछ वजहें हैं।

शिवकुमार शर्मा कहते हैं, ''डर के निर्माण तक यशजी हमारी उपलब्धता के अनुसार अपनी फिल्मों की योजना बनाते थे, लेकिन दुनिया भर में हरिजी और मेरी अपनी प्रतिबद्धताओं के साथ हम दोनों के लिए बंबई में लंबे समय तक साथ में उपलब्ध होना लगातार मुश्किल होता जा रहा था, जो साथ मिलकर संगीत देने के लिए जरूरी था।''

हरिप्रसाद कहते हैं, ''मैं यश चोपड़ा का आभारी हूँ कि उन्होंने हमें मौका दिया और उनकी फिल्मों के लिए संगीत देते हुए हमने खूबसूरत पल बिताए। किसी भारतीय शास्त्रीय संगीतकार ने सिनेमा में इतना संगीत नहीं दिया, जितना शिवजी और मैंने दिया है, लेकिन वह हमेशा हमारे लिए एक शौक था और हम अपने शास्त्रीय संगीत की कीमत पर उसे जारी नहीं रख सकते थे। हालाँकि हमें अब भी फिल्म निर्माताओं से प्रस्ताव प्राप्त होते हैं। हमने 'डर' के बाद और किसी फिल्म में संगीत न देने का फैसला किया।''

युवा राकेश चौरसिया अपने बाबूजी के साथ सुर-साधना करते हुए।

जब हरिप्रसाद दुनिया भर में शास्त्रीय कंसर्टों और हिंदी फिल्मी गीतों के बीच अपने समय का प्रबंधन कर रहे थे, तब उनके द्वारा तैयार किए गए बाँसुरी-वादकों की एक पीढ़ी उनकी जगह लेने को तैयार थी। उनके सबसे होनहार और पसंदीदा विद्यार्थियों में रमाकांत पाटिल थे, जो एक महान् बाँसुरी-वादक, एक महान् संगीतकार और हरिप्रसाद की जगह लेने के बिलकुल योग्य थे। दुर्भाग्य से वह युवावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो गए।

धीरे-धीरे, लेकिन निश्चित रूप से हरिप्रसाद ने रूपक कुलकर्णी और अपने भतीजे राकेश चौरसिया (उनके भाई गणेशप्रसाद का पुत्र) जैसे दूसरे विद्यार्थियों को फिल्म संगीत में आगे बढ़ाना शुरू किया। वे कभी-कभार ऑर्केस्ट्रा में उनके साथ बजाते और कभी-कभार उनके बिना। रूपक ने 'कभी खुशी कभी गम', 'मि. एंड मिसेज अय्यर', 'फिजा', 'युगपुरुष', 'स्वस्तिक' और 'कलयुग' जैसी फिल्मों में बाँसुरी बजाई है।

सन् 1989 में किसी समय हरिप्रसाद राकेश चौरसिया को लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल तथा दूसरे संगीत निर्देशकों के पास ले गए और उन्हें बताया कि अब से उनके स्थान पर राकेश बजाएगा, ''अपने गुरु के स्थान पर बजाना बहुत सम्मान की बात है और यह एक बड़ी जिम्मेदारी भी है।'' राकेश चौरसिया कहते हैं। उन्होंने 'त्रिमूर्ति', 'मि. इंडिया', 'तेजाब', 'परिंदा', 'हम दिल दे चुके सनम' और 'देवदास' में बाँसुरी बजाई है। उनका पहला एकल प्रयास लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल के संगीत निर्देशन में 'खिलाफ' में था। 'और प्यार हो गया' वह पहली फिल्म थी, जहाँ उन्होंने सभी गानों में बाँसुरी बजाई और साथ ही पृष्ठभूमि संगीत में भी योगदान दिया। वह सौंदर्य सम्राज्ञी ऐश्वर्य राय की पहली हिंदी फिल्म थी और उसका संगीत पाकिस्तानी कव्वाली उस्ताद नुसरत फतेह अली खान ने दिया था, जो 'डेड मैन वाकिंग' के बाद पश्चिम में भी लोकप्रिय हो गए थे। राकेश ने 'नगीना' में हरिप्रसाद के साथ बाँसुरी बजाई

और इस बात पर चकित होते हैं कि बाँसुरी के एक विख्यात उस्ताद और 'पंडित' हरिप्रसाद को ऑर्केस्ट्रा के वुडविंग सेक्शन (जिसे बॉलीवुड की भाषा में टुट्टी सेक्शन कहा जाता है) में कई लोगों के साथ होने में कोई अहं की समस्या नहीं थी। दिलचस्प बात है कि सन् 1981 में 'उमराव जान' के मूल साउंडट्रैक में हरिप्रसाद ने बाँसुरी बजाई, जबकि वर्ष 2006 में उसी फिल्म के रीमेक में राकेश चौरसिया ने बाँसुरी की धुन दी।

उनसे नई पीढ़ी तक में परिवर्तन इस वजह से नहीं था कि उनकी उम्र बढ़ रही थी और उन्हें कम काम करने की जरूरत थी, बल्कि इसके विपरीत इसकी वजह यह थी कि उनके यात्रा कार्यक्रम अधिक व्यस्त होते जा रहे थे और शास्त्रीय संगीत के प्रति उनका समर्पण और बढ़ गया था। यह शास्त्रीय संगीत की गहराई में जाने के लिए उन्हें अधिक समय देने का सुविचारित कदम था। उनके साक्षात्कारों से स्पष्ट था कि वह व्यावसायिक संगीत में दिलचस्पी खोते जा रहे थे। पैसा, ख्याति और ग्लैमर उनके पास सबकुछ था। बॉलीवुड में बड़े लोगों के साथ उठने-बैठने में भी अब कोई रोमांच नहीं था। अब तक वह अपने आप में एक सेलिब्रिटी बन चुके थे। 'डर' के पूरा होने के साथ हरिप्रसाद ने सिनेमा के संगीत को अलविदा कह दिया और खुद लिये गए निर्वासन से फिल्मी दुनिया की ओर लौटने की उनकी कोई योजना नहीं है।

❑

प्यार होता है हर किसी के लिए

हरिप्रसाद के विवाहित जीवन, उनकी गृहस्थी की कहानी सन् 1957 में शुरू हुई, जब वह इलाहाबाद से कटक चले गए। ऑल इंडिया रेडियो कटक के एकमात्र बाँसुरी-वादक के रूप में पहले दिन से ही उनकी काफी माँग थी। कटक आने के लगभग पंद्रह दिनों बाद वह उनसे मिले या ऐसा कहें कि उन्होंने ए.आई.आर. के रिकॉर्डिंग स्टुडियो में उन पर ध्यान दिया।

उनका नाम अंगूरबाला राय था। वह एक उड़िया लड़की थीं, जिसका जन्म और पालन-पोषण जमशेदपुर, बिहार में हुआ था और हाल ही में कटक आई थी। अंगूरबाला का पुश्तैनी मकान कभी पटिया गाँव का एक आलीशान मेंशन था, जिसमें दीवारों पर विशाल चित्र और बंदूकें थीं, जो उस समय के जमींदारों के लिए आम बात थी। उनके पूर्वज पुरी से पटिया आ गए थे और हालाँकि उनके परिवार के पास अब भी काफी जमीन थी, जमींदारी के दिन अब लद गए थे, इसलिए उनके पिता को जमशेदपुर में काम करने के लिए मजबूर होना पड़ा। उन्होंने बहुत कम उम्र में ही अंगूरबाला का शास्त्रीय प्रशिक्षण आरंभ कर दिया था और उनकी क्षमता को देखते हुए उनके पिता को उम्मीद थी कि वह किसी दिन प्रसिद्ध उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ से भारतीय शास्त्रीय गायन सीखेंगी। उनके पहले शिक्षक नागपुर के एक शास्त्रीय गायक थे, जिनका नाम उन्हें याद नहीं है, जिसके बाद उन्होंने कलकत्ता के शास्त्रीय गायकों, भोलानाथ चटर्जी और परेश बनर्जी से सीखा। इसके बाद उन्होंने फिरोज खाँ के मार्गदर्शन में लगभग दस वर्षों तक शास्त्रीय संगीत का अध्ययन किया।

उनके पिता अपनी पीढ़ी के सबसे बड़े थे और उस शहर में रहकर वह अपने भाइयों में सबसे परिष्कृत, सुसंस्कृत और कम सामंती हो गए थे। उन्हें अपनी छोटी सी बच्ची के मुसलमान से कला सीखने पर कोई आपत्ति नहीं थी, जो उनके परिवार के बाकी लोगों को पसंद नहीं था। उस समय जमशेदपुर की संस्कृति संगीत सीखने के लिए बहुत अनुकूल थी। वहाँ पटियाला घराने के चंद्रकांत आप्टे जैसे बहुत से अच्छे स्थानीय संगीतज्ञ थे और दूसरे संगीतज्ञ भी वहाँ अकसर आते रहते थे। बंगाल क्लब ऑफ जमशेदपुर में एक मिलोनी हॉल था, जहाँ संगीत कार्यक्रम और प्रतिस्पर्धाएँ नियमित रूप से आयोजित होती थीं। अंगूरबाला ने उनमें से अधिकांश में जीत हासिल की। किशोरावस्था में पहुँचने तक वह शास्त्रीय गायिका के रूप में काफी ख्याति अर्जित कर चुकी थीं, लेकिन आज भी वह इतनी विनम्र हैं कि स्पष्ट रूप से यह नहीं मानतीं कि वह एक अच्छी गायिका थीं। उनके पुत्र राजीव ने उस समय के उनके कुछ टेप सुने हैं और वह कहते हैं कि उनकी आवाज गीता दत्त जैसी थी।

''लोग ऐसा बोलते हैं कि मैं अच्छा गाती थी।'' वह संकोच के साथ कहती हैं। मीरा बनर्जी और मालविका कानन जैसे वरिष्ठ संगीतज्ञों ने उनमें से कुछ प्रतिस्पर्धाओं में उन्हें आँका था। वहीं पर वह महान् संगीतकार बाबा अलाउद्दीन खाँ से भी मिलीं, जो अपने भगवा चोले में साधु की तरह दिखते थे। उन्होंने नई दिल्ली के तालकटोरा गार्डन में हुए एक यूथ फेस्टिवल में अपने गृह-राज्य का प्रतिनिधित्व भी किया था।

उस समय जमशेदपुर में अच्छे कॉलेज नहीं थे, इसलिए मैट्रिकुलेशन करने के बाद उस शहर में उनके लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करने का कोई साधन नहीं था। उनके पिता की इच्छा थी कि वह स्नातक की डिग्री प्राप्त करें, चाहे कुछ भी हो जाए। इसलिए उन्होंने कटक के शैलबाला वूमेंस कॉलेज में स्नातक में दाखिला ले लिया। उनके मामा, जो बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न थे, ने उन्हें अपने संरक्षण में ले लिया। उनका नाम कालीचरण पटनायक था और उड़िया काव्य में उनके योगदान को मान्यता देते हुए उन्हें 'कविचंद्र' की उपाधि प्रदान की गई थी। अंगूरबाला उन्हें अपना मार्गदर्शक, गॉडफादर, गुरु और मित्र मानती थीं। वह एक कवि, नाटककार और संगीत विशेषज्ञ थे, जिनकी अपनी

थियेटर कंपनी थी। वह ए.आई.आर. पैनलिस्ट, संगीत नाटक अकादमी के सदस्य और अत्यंत प्रभावशाली व्यक्ति भी थे। उनके घर पर कलाकारों का जमावड़ा लगता रहता था और वहाँ सभी प्रकार की शास्त्रीय कलाओं का अनुसरण करनेवाले लोग आते रहते थे।

कालीचरण पटनायक बुद्धिजीवियों के एक चुनिंदा गुट के थे, जो शास्त्रीय कला के रूपों में ओडिसी नृत्य और संगीत को बढ़ावा देने की कोशिश कर रहा था। वह अंगूरबाला के गायन से बहुत प्रभावित थे और उन्होंने उन्हें मुख्यधारा के हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की बजाय ओडिसी गाने को कहा। अंगूरबाला में बहुत संभावनाएँ देखीं और उन्हें उम्मीद थी कि वह ओडिसी संगीत की दूत बनेंगी। उन्हीं के मार्गदर्शन में अंगूरबाला ने उड़िया भाषा सीखना शुरू किया, क्योंकि शुरू से बिहार में रहने की वजह से उनका उच्चारण बहुत अच्छा नहीं था। वह उनके सभी कार्यकलापों में खूब दिलचस्पी लेते थे और उनके घर में रहने के दौरान ही उन्हें उड़िया परंपरा की गायन-शिक्षा मिली। हालाँकि उनके पिता को यह पसंद नहीं था, क्योंकि उन्होंने अंगूरबाला को शुद्ध शास्त्रीय संगीत की शिक्षा देकर बड़ा किया था और वह उन्हें किसी दिन देश के सबसे बड़े शास्त्रीय गायकों में देखने की आशा रखते थे। जब उन्होंने उच्च शिक्षा के लिए उन्हें कटक भेजा था तो पता नहीं था कि वह उड़िया संगीत में उतरेंगी। उन्हें लगता था कि वह अपनी जड़ों को भूल रही हैं। उनका यह विचार आंशिक रूप से ही सही था। हालाँकि वह उड़िया भाषा में गाती थीं, गीत को पेश करने की उनकी शैली अत्यंत शास्त्रीय थी, आलाप, विस्तार, तान आदि। वह उड़िया संगीत का हाइब्रिड रूप था। कालीचरण पटनायक ने उनकी प्रतिभा को प्रदर्शित करने और ओडिसी संगीत को आगे बढ़ाने के लिए कई संगीत सभाओं में उनसे गवाया। धीरे-धीरे, लेकिन मजबूती से उनका शास्त्रीय आधार पीछे छूटता गया।

नियमित रूप से कालीचरण पटनायक के घर आनेवाले ए.आई.आर.कलाकारों में गुरुराव देशपांडे और रमेश नादकर्णी थे। धीरे-धीरे हरिप्रसाद भी वहाँ नियमित रूप से जाने लगे। अंगूरबाला एक अस्थायी कलाकार थीं और ए.आई.आर. के स्टुडियो में ही वे पहली बार एक-दूसरे से मिले। अंगूरबाला के लिए वह पहली नजर का प्यार या अधिक सटीक कहें तो पहली फूँक का प्यार था। हरिप्रसाद जिस तरह से बाँसुरी बजाते थे, उस पर वह फिदा हो गईं। उनका वादन अंगूरबाला को दूसरी दुनिया में ले जाता था, जबकि उनकी टोनल क्वालिटी उन्हें मोह लेती थी। उनकी बाँसुरी की धुन पर मोहित होनेवाली वह अकेली नहीं थीं। ए.आई.आर. के सभी कलाकार हरि को अपना साथी बनाना चाहते थे। अंगूरबाला बहुत संकोची और गर्वीली थीं, जिस वजह से उन्होंने हरि को संगत देने को नहीं कहा, हालाँकि वह दिल से उनके साथ प्रदर्शन करना चाहती थीं। आमतौर पर वह साथ देनेवाला खोजने का काम प्रोग्राम एक्जीक्यूटिव पर छोड़ देती थीं।

''वह किसी पंडित की तरह नहीं बजाते थे।'' वह कहती हैं, ''न ही वह शास्त्रीय संगीत या रागों का खूब ज्ञान प्रदर्शित करते थे, लेकिन उनमें एक काफी 'संपूर्ण' आवाज थी, जो आपके भीतर के किसी तार को छू लेती थी। उनके अंदर का संगीतकार हरिप्रसाद के चेहरे की बजाय उनकी संगीत क्षमता से गहरा नाता महसूस करता था।'' उन्होंने ऐसा कहा। वैसे, वह उस समय सिर्फ सत्रह साल की थीं।

वह युवा, दुबले-पतले और लचीले थे। उनका चेहरा-मोहरा गैर-पारंपरिक था और आमतौर पर वह सामान्य मित्रों के एक समूह से घिरे रहते थे, जिस समूह से वह उनके साथ आमना-सामना होने के डर से जानबूझकर कतराती थीं, हालाँकि वह दिल से ऐसा ही चाहती थीं। वह अपनी ही भावनाओं से असहजता महसूस करती थीं, हरिप्रसाद के सामने वह विचित्र भावना में घिर जाती थीं। अपने मन में उठनेवाले विविध सवालों का उनके पास कोई जवाब नहीं था। वह ऐसा क्यों महसूस करती हैं? उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि भिन्न थी। उनकी

मातृभाषा अलग थी। उनकी भोजन आदतें, संस्कृतियाँ, पालन-पोषण सबकुछ अलग था। फिर भी जब वह गाती थीं और वह बजाते थे तो इतना सही, इतना उपयुक्त और इतना स्वाभाविक लगता था कि सभी भावनाएँ पीछे रह जाती थीं। उनका रूढ़िवादी पालन-पोषण उनके मन में अपराध-बोध की भावना उत्पन्न करता था। अपराध-बोध के साथ शंकाएँ भी मन में उठती थीं। अगर उन्होंने साथ छोड़ दिया तो? दिल टूटने पर उनका क्या होगा?वह एक सच्ची चिंता थी, क्योंकि आखिरकार उन्होंने संगीत के लिए अपना घर और परिवार छोड़ दिया था, तो उनसे किस तरह के भावनात्मक जुड़ाव की उम्मीद की जा सकती थी? यह सवाल उनके बड़े-बुजुर्ग भी पूछनेवाले थे, जब उनका रिश्ता जाहिर होता।

लेकिन जब प्रारब्ध में कुछ निर्धारित होता है तो आप भाग सकते हैं, लेकिन छिप नहीं सकते। अगले कुछ महीनों तक वे नियमित रूप से एक-दूसरे से टकराए। हरिप्रसाद रिहर्सल के लिए उनके कॉलेज जाते, क्योंकि दोनों कॉलेज के डांस ट्रुप के संगीतकारों में थे। सुप्रसिद्ध नृत्यांगनाएँ संयुक्ता पाणिग्रही और कुमकुम मोहंती उस ट्रुप में थे और आज भी उनके मित्र हैं। वे दुर्गा-पूजा पर रेडियो स्टेशन में साथ-साथ संगीत रिकॉर्ड करते। अंगूरबाला के पिता कलकत्ता में महालया उत्सव के प्रभारी थे और उन्हें राग भैरवी में आखिरी गीत 'देबी तोरी शांति बारी' गाने का सौभाग्य मिला। यहाँ भी हरिप्रसाद ने उनके साथ वादन किया। जब हरिप्रसाद ने एसराज वादक बंकिम पाल के घर से जाने का फैसला किया तो उन्होंने एक जगह किराए पर ली, जो अंगूरबाला के घर के काफी पास थी।

अंगूरबाला दर्शनशास्त्र की छात्रा थीं और वह प्राइवेट ट्यूशन के लिए . नित्यानंद दर्जी के पास जाती थीं, हालाँकि वह दूसरे कॉलेज में पढ़ाते थे। हरिप्रसाद अकसर उन्हें लेने के लिए प्रोफेसर के घर जाते थे। जैसे-जैसे दिन गुजरते गए, हरिप्रसाद और अंगूरबाला को अधिक-से-अधिक साथ देखा जाने लगा और जल्दी ही सबको पता चल गया कि वह उनकी 'प्रेमिका' हैं। जब यह खबर कालीचरण पटनायक और उनके परिवार के सदस्यों तक पहुँची तो हंगामा मच गया। संगीतकारों को घुमक्कड़ माना जाता था और किसी दूसरी जाति के व्यक्ति के प्रेम में पड़ना गुनाह था। अंगूरबाला के मित्र, रिश्तेदार, सहयोगी और शिक्षक सब उनके खिलाफ हो गए। सिर्फ प्रो. नित्यानंद दर्जी ही यह नहीं सोचते थे कि किसी अजनबी के प्रेम में पड़ना कोई पाप है। उन्होंने अंगूरबाला से कहा कि वह खुद पर भरोसा रखे और अपनी बात पर अड़ी रहे। शायद वह उनके परिवार के विरोध की प्रतिक्रिया थी, सिर्फ अवज्ञा थी या रिश्ते को मजबूत करने की आवश्यकता कि उन्होंने शादी कर ली। वह कटक चंडी मंदिर में गोपनीय ढंग से हुआ समारोह था। विरोधाभास यह कि वह स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त, 1958 को संपन्न हुआ। चूँकि किसी को सूचित नहीं किया गया था, ऐसा लगता है कि वह अपने प्रेम को और पुष्ट करने तथा एक-दूसरे के प्रति समर्पण के बारे में खुद को आश्वस्त करने की जरूरत थी।

इस विवाह से अनभिज्ञ अंगूरबाला के मामा कविचंद्र कालीचरण पटनायक हरिप्रसाद को रास्ते से हटाने की योजना बना रहे थे। ए.आई.आर. में उनके खिलाफ बढ़ते द्वेष और नाराजगी को देखते हुए कालीचरण पटनायक को सिर्फ इस ओर अधिक जोर डालने के लिए अपने प्रभाव का इस्तेमाल करना था और हरिप्रसाद के स्थानांतरण आदेशों को गति देना था।

इस गुप्त विवाह के तुरंत बाद उनके पहले से अव्यवस्थित जीवन में एक ऐसा झटका आया, जिसने उनके पाँव उखाड़ दिए। हरिप्रसाद को अपने पिता की ओर से एक पत्र मिला, जिसमें उनसे तुरंत इलाहाबाद आने को कहा गया था। इरादों के मजबूत होते हुए भी हरिप्रसाद अब भी पुत्र के रूप में इतने आज्ञाकारी थे कि वह पिता के बुलाने पर सबकुछ छोड़कर इलाहाबाद भागते थे।

इस सफर से वह एक और पत्नी के साथ वापस लौटे।

उनका नाम कमला था। वह कानपुर में रहनेवाले चौरसिया खानदान की एक दूर की सदस्या थीं और हरिप्रसाद के पिता ने उन्हें हरिप्रसाद के लिए चुना था। यह सबको पता है कि वह एक सख्त अनुशासनवाले पिता थे, जो अपने बच्चों की अवज्ञा को स्वीकार नहीं करते थे और हमेशा उनकी मरजी ही चलती थी। इसलिए यह समझना मुश्किल नहीं है कि उन्होंने हरिप्रसाद को विवाह के लिए विवश किया होगा। हरिप्रसाद अपने जीवन के इस हिस्से के बारे में बात नहीं करना चाहते। इसलिए वास्तव में क्या हुआ होगा, वह हमें कभी पता नहीं चलेगा। शायद यह अधिक व्यक्तिगत है और बेहतर है कि इस मुद्दे को यहीं छोड़ दिया जाए।

जब हरिप्रसाद ने अंगूरबाला को कमला के बारे में बताया तो उन्हें स्वाभाविक रूप से बड़ा आघात लगा। उन्होंने स्थिति को समझने की कोशिश की और कोई उपयुक्त स्पष्टीकरण न मिलने पर अपने आपको दोषी ठहराया। उनके साथ यह कैसे हो सकता है? वह एक अजनबी पर कैसे भरोसा कर सकती थीं?आमतौर पर वह एक शांत दिमाग की और स्पष्ट सोचनेवाली महिला थीं, फिर वह हरिप्रसाद से विवाह करने का ऐसा बचकाना फैसला कैसे ले सकती थीं? अब यह रिश्ता बिखरता-सा नजर आ रहा था। पीछे जाना काफी पीड़ादायक था, लेकिन इस रिश्ते को जारी रखना असंभव था। चूँकि उन्होंने बिना अपने परिवार से परामर्श किए या उन्हें जानकारी दिए हरिप्रसाद से शादी की थी, वह किसी को दोषी नहीं ठहरा सकती थीं और रोने के लिए उनके पास किसी का कंधा नहीं था। कालीचरण पटनायक के घर में रहने से अधिक असहजता महसूस होने के कारण वह एक हॉस्टल में रहने चली गईं और बाद में पटिया के अपने पुश्तैनी घर में। कुछ समय पहले उनके पिता का देहांत हो गया था, इसलिए उनके वहाँ रहने से उनकी माँ को भी सहारा मिला।

6 सितंबर, 1959 को कमला और हरिप्रसाद के घर में पहले पुत्र विनय का जन्म कटक में हुआ, फिर 22 दिसंबर, 1962 को उनके दूसरे पुत्र अजय का जन्म हुआ, जो इस बार कमला के घर कानपुर में हुआ। सन् 1962 में ही हरिप्रसाद को ऑल इंडिया रेडियो द्वारा बंबई स्थानांतरित कर दिया गया। संघर्ष के शुरुआती कुछ महीनों के बाद उन्होंने फिल्मोद्योग से इतनी कमाई कर ली कि एवरग्रीन होटल में एक कमरा ले लिया।

हरिप्रसाद अब दो बच्चों के पिता थे, इस कारण अंगूरबाला के दिमाग में यह चल रहा था कि क्या वह कभी उनके पास वापस लौटेंगे? वास्तव में वह इंतजार कर रहे थे कि अंगूरबाला अपनी कॉलेज की शिक्षा खत्म कर लें और परिणाम आने से पहले वह उन्हें लेने के लिए कटक पहुँच गए। बंबई की कोई सीधी रेलगाड़ी नहीं थी और उन्हें याद है कि उन्होंने खड़गपुर में रेलगाड़ी बदली थी। अपनी परीक्षा और दु:ख की घड़ियाँ खत्म होने पर प्रसन्न अंगूरबाला उनके साथ एवरग्रीन होटल में रहने चली गईं और पहली बार उन्होंने वैवाहिक जीवन का आनंद महसूस किया। कुछ माह बाद उन्हें प्रो. दर्जी का पत्र मिला, जिसमें उन्होंने बताया कि फाइनल परीक्षाओं के परिणाम आ चुके हैं और उन्हें अच्छी द्वितीय श्रेणी प्राप्त हुई है। उनके लिए जिंदगी इससे बेहतर नहीं हो सकती थी। एक साल के अंदर हरिप्रसाद ने इतना पैसा कमा लिया कि उन्होंने कार खरीद ली और बंबई के खार इलाके में एक बेडरूम का मकान किराए पर ले लिया।

हरिप्रसाद अपनी मेहनत से ऊपर पहुँचे व्यक्ति थे, जो अपने पिता की किसी मदद के बिना घोर गरीबी से संपन्नता की ओर लगातार बढ़ रहे थे। चूँकि अंगूरबाला को भी अपने परिवार से एक भी पैसा नहीं मिला था, वह भी अपनी जगह बनाना चाहती थीं और उनकी आय में बढ़ोतरी करना चाहती थीं। रोजगार के लिए अपनी पात्रता और बढ़ाने की उम्मीद में उन्होंने आगे पढ़ने का फैसला किया। हरिप्रसाद के प्रोत्साहन से उन्होंने बंबई विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर डिग्री हासिल की। एक छोटे शहर की लड़की के लिए हर दिन खार से चर्चगेट तक रेल से सफर करना काफी थकाऊ था। उन्होंने ए.आई.आर. कटक के हरिप्रसाद के सहयोगी रमेश नादकर्णी के

तहत अपने शास्त्रीय गायन का प्रशिक्षण भी फिर शुरू कर दिया।

इस बीच उनका नाम अंगूरबाला से 'अनुराधा' हो गया, हालाँकि हरिप्रसाद की तरह उनके अधिकतर पुराने मित्र अब भी उन्हें 'अंगू' बुलाते हैं।

उनका सामाजिक जीवन नहीं के बराबर था, क्योंकि हरिप्रसाद के पास सामाजिकता निभाने या मित्र बनाने का समय नहीं था। फिल्म उद्योग में उनके एकमात्र मित्र शिवकुमार शर्मा थे और वे लोग सिर्फ उनके साथ ही मिलते-जुलते थे। दोनों कई रूपों में एक जैसे थे। दोनों अपनी मेहनत से इस मुकाम पर पहुँचे थे, दोनों शास्त्रीय संगीत में प्रशिक्षण प्राप्त थे और अब दोनों ही जीविका के लिए फिल्मों के साउंडट्रैक में वादन करते थे। अनुराधा बहुत अच्छा भोजन बनाती थीं और खासकर मटन के व्यंजन बहुत अच्छा बनातीं। हरिप्रसाद ने अपनी पत्नी की पाक कला को दिखाने के लिए शिवकुमार शर्मा को भोजन पर एवरग्रीन होटल बुलाया। यहीं वह पहली बार शिवकुमार शर्मा से मिलीं और उन्हें काफी बाद में पता चला कि उन्होंने मटन में बहुत मिर्च पाउडर डाल दिया था।

जैसा भी हो, वह भोज चौरसिया परिवार और शर्मा परिवार के बीच एक स्थायी मित्रता की शुरुआत थी। समय के साथ शिवकुमार की खूबसूरत पत्नी मनोरमा अनुराधा की सबसे अच्छी सहेली बन गईं। इन चारों में गहरी छनती थी और उन्होंने सप्ताहांतों में हरिप्रसाद की कार में पुणे तक की ड्राइविंग या संगीत बजाने जैसी छोटी-छोटी खुशियाँ मनाते हुए काफी अच्छा समय साथ गुजारा। हरिप्रसाद और अनुराधा ने शिवकुमार को संतूर बजाने की तकनीक में क्रांति लाते हुए देखा है, ठीक उसी तरह जैसे शिवकुमार और मनोरमा ने हरिप्रसाद को बाँसुरी बजाने की शैली को विकसित करते देखा है।

बंबई जाने के तीन वर्ष बाद अनुराधा ने सुझाव दिया कि कमला और उनके बेटों को अब इलाहाबाद से आ जाना चाहिए। अब तक हरिप्रसाद ने इलाहाबाद में उनके और अपने पिता के लिए एक बड़ा मकान खरीद लिया था। कमला बंबई आ गईं और विनय तथा अजय को बर्नीस स्कूल नामक देवलाली, नासिक के एक बोर्डिंग स्कूल भेज दिया गया।

कमला और अनुराधा के बीच का रिश्ता असाधारण रूप से गर्मजोशी भरा था। कई रूपों में कमला हरिप्रसाद की अपेक्षा अनुराधा के अधिक करीब थीं। जिन मामलों पर वह हरिप्रसाद से चर्चा करने में सहज नहीं होती थीं, उन्हें वह अनुराधा को बताती थीं। यह बात कि अनुराधा ने ही कमला को साथ लाने का सुझाव दिया था, यह दरशाती थी कि उनके मन में कमला के लिए कोई दुर्भावना नहीं थी। कमला के मन में भी अनुराधा के लिए कोई बैर नहीं था। वह एक अच्छी, स्नेहिल लेकिन अशिक्षित महिला थीं। उनके परिवार में भी अनुराधा के खिलाफ कोई दुर्भावना नहीं थी।

7 अक्टूबर, 1968 को अनुराधा और हरिप्रसाद के बेटे का जन्म हुआ, जिसका नाम राजीव और प्यार से 'चिंकू' रखा गया। वह खुद को परिवार का लाडला मानते हैं, क्योंकि वह सबसे छोटे थे और इसलिए उन्हें सबसे अधिक दुलार मिला। चूँकि उनके सौतेले भाई विनय और अजय हॉस्टल में रहते थे, उन्हें अनुराधा और कमला दोनों का प्रेम व स्नेह मिला, जबकि अनुराधा अनुशासन में रखनेवाली थीं, जो रात में परेशान करने पर उन्हें चुपचाप सो जाने का आदेश देतीं, तब कमला या मम्मी, जो वह कमला को कहकर बुलाते थे, सुबह तीन बजे उठकर उन्हें कुछ खाने को देतीं। वह दोनों को 'मम्मी' कहते और कई बार तब अजीब स्थिति हो जाती जब वह एक मम्मी को बुलाते और दूसरी मम्मी जवाब देतीं।

लंबे, साँवले और खूबसूरत राजीव से जब मैंने बात की तो उनकी बातों में मम्मी के लिए प्यार छलक रहा था। वह बोले, ''मैं उन्हें बहुत याद करता हूँ। सन् 1988 में उनका देहांत हो गया। जब छोटा था तो हमेशा यह सोचता

था कि मैं उनके नाम पर कोई अस्पताल या ऐसा ही कोई समाज-सेवी संस्थान बनाऊँगा।''

मॉस्को टूर में कमला देवी (एकदम दाएँ) तथा अनुराधा (दाएँ से तीसरी) के साथ।

अनुराधा के लिए भी कमला का आस-पास रहना वरदान था। जब हरिप्रसाद अपने साथ टूर पर उन्हें, ले जाते तो राजीव की देखभाल के लिए वह कमला पर भरोसा कर सकती थीं। इस सुविधाजनक व्यवस्था के कारण अनुराधा को दुनिया घूमने का मौका मिला और साथ ही कुछ कंसर्टों में मंच पर हरिप्रसाद के साथ तानपुरा बजाने को भी मिला।

पहली बार वह सन् 1973 में यूरोप गईं। वह एक लंबा टूर था, जिसमें लंदन, ब्रुसेल्स, एम्सटर्डम, ज्यूरिख, ओस्लो और स्टॉकहोम शामिल थे, जब हरिप्रसाद और शिवकुमार शर्मा ने साथ प्रस्तुतियाँ दीं। शिवकुमार की पत्नी मनोरमा उनके साथ नहीं जा सकीं, क्योंकि बेटा राहुल उनके गर्भ में था। बाद के वर्षों में यह एक अलिखित नियम बन गया कि अनुराधा और मनोरमा एक-एक बार हरिप्रसाद व शिवकुमार के साथ हर दूसरे टूर पर विदेश जातीं। उनका अगला दौरा उन दोनों और जाकिर हुसैन के साथ अमेरिका का था। एक अवसर पर, जब हरिप्रसाद को अकेले प्रस्तुति देनी थी, तो वह कमला और अनुराधा दोनों को अपने साथ मास्को और दूसरे रूसी शहर ले गए।

जब तक ये दौरे चले, अनुराधा के लिए सबकुछ बहुत खूबसूरत था, लेकिन वह हर दो वर्षों में सिर्फ एक महीने के लिए होता था। '60 के दशक के अंत से हरिप्रसाद बहुत ही व्यस्त हो गए। उनके पास अपने संगीत और अपने कैरियर के अलावा किसी चीज के लिए समय नहीं था। वह बंबई में हिंदी व मराठी फिल्मों तथा देश भर में क्षेत्रीय फिल्मों के लिए रिकॉर्डिंग कर रहे थे।

वह इतने व्यस्त थे कि राजीव के पहले जन्मदिन पर अनुराधा द्वारा दी गई पार्टी में नहीं पहुँच सके। अनुराधा ने लक्ष्मी हॉल नामक एक स्थान किराए पर लिया था और संगीत तथा फिल्मी दुनिया की उन सभी हस्तियों को बुलाया था, जिन्हें वह जानती थीं। रवि शंकर के पुत्र शुभो, बाँसुरी-वादक मनोहारी सिंह और बहुत से अन्य लोग वहाँ थे, लेकिन हरिप्रसाद वायदे के बावजूद शहर से बाहर के अपने एक काम से पार्टी के लिए समय पर नहीं लौट सके।

अगले पच्चीस वर्षों तक अनुराधा का जीवन राजीव को बड़ा करने और उसकी देखभाल में, साथ ही हरिप्रसाद का बेसब्री से इंतजार करते बीता। उनका जीवन उनके लिए भले ही एकरस रहा हो, लेकिन हरिप्रसाद के लिए यह उनकी सफलता का एक स्तंभ था, ''अपनी पत्नी के त्याग और सहयोग के बिना मैं कोई उपलब्धि प्राप्त नहीं कर पाता।'' हरिप्रसाद कहते हैं। '90 के दशक के अंत में अनुराधा ने फिर से अपने लिए एक नई राह तलाशने का फैसला किया। उन्होंने महान् भारतीय शास्त्रीय संगीतकारों के जीवन पर आधारित 'साधना' नामक एक टी.वी. धारावाहिक बनाया। सभी तेरह एपिसोड बना लिये, लेकिन टेलीविजन पर उसे दिखाने के लिए आवश्यक प्रायोजक नहीं मिल पाया। यह धारावाहिक लंबे समय तक डिब्बाबंद रहा, फिर एक व्यवसायी श्री छिब्बा से मिलीं, जिनके पास जरूरी पैसा जुटाने की क्षमता थी। उन्होंने पार्टनरशिप की और जल्दी ही यह धारावाहिक परदे पर दिखने लगा। साधना की सफलता से प्रेरित होकर उन्होंने 52 एपिसोडवाला धारावाहिक 'सुर संध्या' बनाया, जो शास्त्रीय संगीतकारों के लाइव प्रदर्शनों पर आधारित था। इसे स्टार प्लस पर प्रसारित किया गया। आज वह अपने शास्त्रीय

संगीत की ओर लौट गई हैं और हरिप्रसाद के गुरुकुल में गायन की शिक्षा भी देती हैं। वह हांगकांग के वृंदावन एकेडमी ऑफ इंडियन क्लासिकल म्यूजिक में भी शास्त्रीय गायन सिखा चुकी हैं, जिसे हरिप्रसाद के शिष्य अवीशा गोपालकृष्णन द्वारा शुरू किया गया था।

विनय और अजय को बोर्डिंग स्कूल भेज दिया गया था, ताकि वे इलाहाबाद के किसी स्कूल के मुकाबले बेहतर शिक्षा हासिल कर सकें। हरिप्रसाद ने अपने बेटों की शिक्षा पर काफी जोर दिया और तीनों लड़कों के पास आज एम.बी.ए. की डिग्रियाँ हैं। अजय को कॉलेज शिक्षा के लिए मैसूर यूनिवर्सिटी भेजा गया था, जिसके बाद उन्होंने एम.बी.ए. किया। विनय मीठीबाई कॉलेज में पढ़ते थे, जिसके बाद उन्होंने भी मैसूर यूनिवर्सिटी से एम.बी.ए. किया। राजीव की शिक्षा बॉम्बे स्कॉटिश में हुई, जिसे बंबई के बेहतरीन स्कूलों में से एक माना जाता है।

हरिप्रसाद उन्हें उच्च शिक्षा के लिए विदेश भेजने को उत्सुक थे, लेकिन राजीव यह नहीं चाहते थे और वह विदेश में पढ़ाई से जुड़े तथाकथित ग्लैमर से अनभिज्ञ थे। वह काफी अच्छे छात्र थे, जो अपने मेरिट पर प्रवेश पाने में सफल रहे। उन्होंने ब्रिस्टल में क्लिफटन कॉलेज से अपना 'ओ' लेवल एवं 'ए' लेवल किया और बकिंगहम यूनिवर्सिटी से स्नातक की डिग्री हासिल की। वह स्नातक के बाद भारत लौटे और इंदौर के पास देवस नामक एक छोटी सी जगह पर टाटा एक्सपोर्ट्स के साथ काम किया। दो सालों के बाद उन्होंने खुद को उच्च शिक्षा के लिए तैयार महसूस किया और एम.बी.ए. डिग्री प्राप्त करने के लिए ऑस्टिन में टेक्सास यूनिवर्सिटी गए। तब से वह टेलीविजन उद्योग से जुड़े हुए हैं।

राजीव की शुरुआती यादें आमतौर पर देर रात 'पापा' की क्षणिक उपस्थिति से जुड़ी हैं। चूँकि हरिप्रसाद शायद ही कभी घर पर होते थे। उनके साथ होने की चाह और उत्साह इतना अधिक होता था कि उनके साथ बिताए पल बहुत आनंददायक और कीमती होते थे। उनका समय साथ-साथ कभी खेलों में, फिल्में देखते हुए, लंबे वॉक लेते हुए, होमवर्क करते हुए या अखबारों की चीजों पर चर्चा करते हुए नहीं बीतता था। वह अपने कर्तव्यों का पालन करनेवाले अनुशासन में रखनेवाले पिता थे। वह सुबह पाँच बजे राजीव को उनका होमवर्क करने के लिए उठा देते और खुद रियाज करते। कभी-कभार वह पढ़ने का दिखावा करते हुए राजीव को झपकी लेते पकड़ लेते, लेकिन कभी उसे फटकारते नहीं। हरिप्रसाद का प्रेम-प्रदर्शन कभी मौखिक नहीं होता था। वह प्रतीकात्मक और अव्यक्त होता था, फ्रिज से लड्डू लेकर उनके मुँह में डाल देना, मेज पर मटन का उनका पसंदीदा पीस रखना और यह सुनिश्चित करना कि उनके चावल में हर किसी से चार गुना घी पड़ा हो।

राजीव को यह पता था कि उनके पिता उनके स्कूल के दूसरे बच्चों के पिताओं की तरह रोज आस-पास नहीं होते थे, लेकिन वह जल्दी ही परिस्थिति को समझ गए, ''और लोगों के पिताओं की तरह पापा हर समय मेरे साथ नहीं होते थे। शुरू-शुरू में आप इस चीज से नाराज होते हैं, लेकिन बाद में आप इससे समझौता कर लेते हैं और आगे बढ़ जाते हैं। मैंने महसूस किया कि वह आम पिता नहीं थे, क्योंकि वह एक जानी-मानी शख्सियत थे और एक व्यस्त व्यक्ति थे।

''मैं इससे सहमत था। मैं ऐसे बहुत से पिताओं को नहीं जानता, जो अपनी मुख्य वस्तु और आय के मुख्य स्रोत के रूप में बाँस के एक टुकड़े के साथ दुनिया भर में घूमते हैं, लेकिन जब भी महत्त्वपूर्ण चीजों, जैसे मेरी उच्च शिक्षा, मेरी नौकरी और मेरी शादी जैसी चीजों के लिए मुझे उनकी जरूरत थी तो वह हमेशा मेरे पास थे,'' वह कहते हैं, ''वह मेरा साउंडिंग बोर्ड हैं। मैं हमेशा ऐसी चीजों पर उनसे सलाह लेता हूँ और मैंने उनकी सलाह को हमेशा बहुत सही पाया है। वह अपनी सोच में बहुत स्पष्ट हैं।''

हरिप्रसाद ने अपने बच्चों को सबसे बड़ा उपहार उनकी आजादी के रूप में दिया है। उन्होंने कभी उन्हें बाँसुरी या

कोई अन्य वाद्य सीखने के लिए मजबूर नहीं किया या कुछ थोपने की कोशिश नहीं की। उन्हें खुद उनके पिता द्वारा पहलवान बनने के लिए विवश किया गया था, इसलिए वह कोई कैरियर थोपे जाने पर बच्चे की मानसिक हालत को समझते हैं।

''हे, भगवान्!अगर मुझे बाँसुरी-वादक बनना पड़ता तो मैं बहुत दु:खी होता,'' राजीव जोर से कहते हैं, ''हर दिन हजारों बार मेरे पिता के साथ मेरी तुलना की जाती। वह कैसी जिंदगी होती? प्रसिद्ध संगीतकारों के कुछ बच्चे जिन परिस्थितियों में संगीत के क्षेत्र में गए, उसे देखते हुए मुझे यकीन था कि मैं कभी संगीतकार नहीं बनूँगा। पारंपरिक रूप से बेटे को संगीत में तभी डाला जाता है, जब वह पढ़ाई में अच्छा न हो या किसी को परिवार की परंपरा आगे बढ़ानी होती है। संगीतकार संगीत को अपनी जागीर की तरह समझते हैं। मेरे पिता उसे दुनिया की जागीर समझते हैं, सिर्फ अपने परिवार की नहीं और यह बात तारीफ के लायक है कि उन्होंने दुनिया के हर इच्छुक विद्यार्थी को वह सिखाया है—नि:शुल्क!''

हालाँकि राजीव संगीतकार नहीं बनना चाहते, संगीत की ओर उनका काफी रुझान है। वह सितार सीखना चाहते थे, इसलिए हरिप्रसाद उन्हें बंबई के एक बेहतरीन शिक्षक के पास ले गए, रूशी कुमार पांड्या, अन्नपूर्णा देवी के मुख्य शिष्य (और अब पति)। जब उन्होंने शास्त्रीय गायन सीखना चाहा तो हरिप्रसाद ने उन्हें एक अच्छे गुरु के संरक्षण में रखा। एक दिन उन्हें बाँसुरी बजाने का मन किया तो उन्होंने हरिप्रसाद से एक बाँसुरी माँगी। हरिप्रसाद ने उसे अपने बेटे की और एक इच्छा माना, जिसे पूरा करना जरूरी है। उन्होंने कभी उस वाद्य के साथ उनकी प्रगति पर कोई सवाल नहीं पूछा या यह कि उन्होंने बजाना सीखा भी या नहीं। हरिप्रसाद ने कभी उन्हें सिखाने का प्रस्ताव नहीं किया, लेकिन राजीव जानते हैं कि जिस दिन वह सीखना चाहेंगे, उन्हें बस इसके लिए कहना होगा।

चूँकि विनय और अजय ने बचपन में अधिकांश समय बोर्डिंग स्कूल में गुजारा, उनके साथ हरिप्रसाद की बातचीत राजीव के मुकाबले कम रही है। विनय की शुरुआती यादें देवलाली के हॉस्टल की हैं, जहाँ उन्होंने अपनी पूरी स्कूली शिक्षा पाई। वह हरिप्रसाद को एक बहुत जिम्मेदार पिता मानते हैं, जो छुट्टियों में या सप्ताहांतों पर उन्हें लेने और छोड़ने देवलाली के ऑस्टिन कैंब्रिज की बंबई से चार घंटे की ड्राइव करने से पहले दो बार नहीं सोचते थे। जब वे कुछ बड़े हो गए तो वह रेलगाड़ी से खुद आ जाते थे। वह उन्हें लेने के लिए सुबह पाँच बजे स्टेशन पर प्रतीक्षा करते थे और फिर उन्हें छोड़ने के लिए सुबह-सुबह स्टेशन जाते थे।

वह जानते थे कि विनय को फिल्म शूटिंग और संगीत रिकॉर्डिंग का शौक था, इसलिए जब भी विनय छुट्टियों में घर पर होते तो हरिप्रसाद उन्हें स्टुडियो ले जाने की जिम्मेदारी किसी को सौंप देते। विनय ने उस समय के बहुत से सुपर स्टारों, जैसे राजेश खन्ना, एस. डी. बर्मन, कल्याणजी-आनंदजी और बप्पी लाहिरी को देखा है, लेकिन उनके लिए सबसे रोमांचक पल महान् गायक किशोर कुमार से मुलाकात का है।

उनकी हर जरूरत के समय हरिप्रसाद उनके पास होते थे। वह सुबह विनय के स्कूल एडमिशन के लिए गए, जबकि उसी दोपहर उन्हें नई दिल्ली की उड़ान पकड़नी थी। उन्होंने कॉलेज में और फिर एम.बी.ए. के लिए मैसूर यूनिवर्सिटी में विनय के एडमिशन के लिए अपने संपर्कों का इस्तेमाल किया। उन्होंने इंडियन प्लाइवुड मैनुफैक्चरिंग कंपनी में विनय को उसकी पहली नौकरी दिलाने के लिए भी जरूरी प्रभाव का इस्तेमाल किया। जब विनय की शादी की बात आई तो हरिप्रसाद और अनुराधा ने उनके लिए एक उपयुक्त लड़की शिल्पा को पसंद किया, जो भुवनेश्वर की उड़िया लड़की थी और अनुराधा की रिश्तेदार थी। वे सब खार के 19वें रोडवाले घर में साथ-साथ रहते थे और विनय के दोनों बच्चे श्रुति व श्रेयस दो इमारत दूर एक नर्सिंग होम में जनमे।

विनय एसोसिएटेड सीमेंट कंपनी (ए.सी.सी. लि.) के लिए काम करते हैं। लोनावला में कंपनी का एक

गेस्टहाउस है, जहाँ पूरा परिवार कभी-कभार सप्ताहांत पर छुट्टियाँ मनाता है।

देवलाली में अपनी स्कूली शिक्षा, इलाहाबाद में इंटरमीडिएट और मैसूर में स्नातक तथा स्नातकोत्तर शिक्षाओं के बीच अजय शायद ही कभी परिवार के साथ रह पाए। अपनी पढ़ाई पूरी करने के तुरंत बाद उन्हें औरंगाबाद में बजाज ऑटो लि. में नौकरी मिल गई, जिसके बाद बंबई और शारजाह में दूसरी नौकरियाँ मिलीं। पिछले नौ सालों से वह अबू धाबी में ई.टी.ए. एस्कॉन ग्रुप के साथ काम कर रहे हैं। सन् 1988 में उनका विवाह उर्मिला से हुआ और उनकी जुड़वाँ बेटियाँ आरती व पूजा हैं।

अपनी व्यस्त यात्राओं और रिकॉर्डिंग तथा शिक्षण कार्यों के बावजूद हरिप्रसाद ने कभी अपने लिए सचिव नहीं रखा। वह हमेशा खुद फोन के जवाब देते हैं और अपने कागजी काम खुद करते हैं। सन् 1997 में यह बोझ उनके कंधे से उतर गया, जब राजीव का विवाह पुष्पांजलि नामक एक खूबसूरत और आकर्षक उड़िया लड़की से हुआ। रॉटरडम में अपने एक इंटरव्यू के दौरान हरिप्रसाद ने गर्व से कहा, ''हमारी पत्नी ने ऐसी बढ़िया बहू ला के दी है कि हमारी सारी चिंता दूर हो गई है।''

वह एक पूर्व आयकर अधिकारी की बेटी हैं और उस समय बंबई में फिशरी में पी-एच.डी. कर रही थीं, जब उनके स्थानीय अभिभावकों ने सुझाव दिया कि एक अनौपचारिक मुलाकात के लिए चौरसिया परिवार के घर जाए, ताकि वे लोग एक-दूसरे को अच्छी तरह जान सकें। उन्होंने पुष्पांजलि से कहा, ''मत सोचो कि यह एक विवाह प्रस्ताव है। बस, जाकर उनसे मिलो।'' पुष्पांजलि यह समझ नहीं पा रही थीं कि एक सेलिब्रिटी का बेटा उनके जैसी मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि की लड़की से विवाह करने में दिलचस्पी क्यों दिखाएगा? उन्हें यह वजह बताई गई कि श्रीमती चौरसिया उड़ीसा की थीं और वे एक उड़िया लड़की पसंद करेंगे।

वह गईं और यह पहली नजर का प्यार था, उनके और राजीव के बीच नहीं, बल्कि उनके और उनकी होनेवाली सासू माँ के बीच। अनुराधा के लिए पुष्पांजलि वह बेटी थी, जो उनके पास नहीं थी। हरिप्रसाद उस दिन घर पर नहीं थे, लेकिन वह राजीव से मिलीं। पुष्पांजलि अब भी यकीन नहीं कर पा रही थीं कि वे लोग वाकई उनमें दिलचस्पी रखते हैं और जब उनसे उनकी जन्म-कुंडली माँगी गई तो उन्हें विश्वास हो गया कि आखिर में वे उनसे कह देंगे कि कुंडलियाँ नहीं मिलीं। उनका सोचना गलत था। चौरसिया परिवार को वह पसंद थीं और कुंडलियाँ भी मिल गईं। विवाह का फैसला करने से पहले वह राजीव से कुछ और बार मिलीं।

हरिप्रसाद की इच्छा थी कि उन्हें भगवान् तिरुपति बालाजी का आशीर्वाद लेना चाहिए, इसलिए अगस्त 1996 में बालाजी मंदिर में उनकी सगाई कर दी गई। उस समय चेन्नई में नौकरी कर रहे पुष्पांजलि के पिता ने आवश्यक व्यवस्थाएँ कीं। छह माह बाद 3 जनवरी, 1997 को मुंबई में उनका विवाह हुआ। रिसेप्शन समारोह ताज होटल में था और उसी शाम हरिप्रसाद एक कॉन्सर्ट के लिए पेरिस चले गए। वह दो दिन बाद लौटे और राजीव उन्हें लेने के लिए हवाई अड्डा गए। रात के दो बजे पुष्पांजलि ने उनके लिए दरवाजा खोला। हरिप्रसाद कुछ बोले नहीं, लेकिन उन्हें गर्मजोशी से गले लगाया, जिसका स्पष्ट मतलब था, ''परिवार में तुम्हारा स्वागत है।''

आम भारतीय परंपरा के अनुरूप उन्हें उनके नए परिवार द्वारा नया नाम दिया गया। पुष्पांजलि का नया नाम 'कस्तूरी' रखा गया और कस्तूरी मृग की तरह उनकी उपस्थिति की सुगंध पूरे चौरसिया परिवार और गुरुकुल में फैल गई। हरिप्रसाद, अनुराधा और पुष्पांजलि धाराप्रवाह उड़िया में एक-दूसरे से बात करते हैं और पारिवारिक चर्चा में अकसर राजीव 'बाहरी' बन जाते हैं। हरिप्रसाद के साथ उनका बहुत विशेष रिश्ता है, जो अब भी उन्हें कस्तूरी नहीं, पुष्पांजलि बुलाते हैं। वह जिन चीजों पर उनके साथ चर्चा करते हैं, राजीव के साथ उन चीजों पर चर्चा के बारे में सोच भी नहीं सकते। इसकी एक वजह यह है कि अब वह सचिव की अनौपचारिक क्षमता में उनका

आधिकारिक काम देखती हैं, इसलिए उनके पास बात करने को बहुत कुछ होता है। उनके कार्यक्रम, टिकट, टैक्स निर्धारण, बैंकिंग और पत्र-व्यवहार आदि सबका खयाल वही रखती हैं, ''मैंने कई बार गलतियाँ की हैं, लेकिन वह न तो गुस्सा होते हैं, न कुछ कहते हैं, जिससे मुझे और बुरा लगता है।'' वह मानती हैं।

उनके लिए वह बहुत सहनशील और क्षमावान् हैं। विवाह के तुरंत बाद अनुराधा और राजीव को उड़ीसा जाना था और पुष्पांजलि को वहाँ रुककर हरिप्रसाद तथा घर का खयाल रखना था। वह उनके अकेलेपन को समझ सकते थे और जानते थे कि उसे अपने परिवार की याद आ रही होगी, इसलिए कहते थे कि वह हर शाम अपने माता-पिता को फोन करें।

ग्रीस में फुरसत के क्षणों में।

पुष्पांजलि ने उनके साथ दुनिया की यात्रा की है, लेकिन हमेशा उनके तानपुरा वादक के रूप में कभी भी अवकाश पर नहीं। वह कभी अपने किसी बच्चे या पोते-पोतियों के साथ छुट्टियाँ मनाने नहीं गए। कुछ-कुछ छुट्टियों जैसा माहौल तब होता है, जब उनका कॉन्सर्ट होता है और वे उनके साथ उस शहर जाते हैं। सब लोग मानते हैं कि वह एक कर्मयोगी हैं और 'छुट्टी' शब्द उनके शब्दकोश में नहीं है। यहाँ तक कि जब वह फुरसत में अपने मित्र के घर ग्रीस जाते हैं, तब भी वह बाँसुरी बजाते हुए आराम करते हैं। हालाँकि वह खुद कभी छुट्टी पर नहीं जाते, जब भी पुष्पांजलि और राजीव किसी छुट्टी पर जाते हैं तो वह सुनिश्चित करते हैं कि उनकी जेबें डॉलरों, पाउंडों, यूरो या रुपयों से भरी हों।

हरिप्रसाद अच्छा भोजन पसंद करते हैं और मेज पर हर किसी को खिलाना चाहते हैं। गुरुकुल में अपना निवास ले जाने से पहले रविवार को नाश्ता एक रस्म की तरह था। वह आलू पराँठा, पूड़ी-भाजी, इडली साँभर और कई तरह की चटनियों के साथ एक पूरा भोजन होता था। देर से उठनेवालों के बीच अकेले जल्दी उठने की वजह से वह सुबह आठ बजे मेज पर बैठ जाते और दूसरों को आवाज लगाते, ''अंगू! राजीव! पुष्पांजलि!'' पूरे परिवार के बैठ जाने तक खाना शुरू नहीं करते और वह उन्हें इतना भर-भरकर खिलाते हैं कि उनके शहर में होने पर कोई डाइटिंग की कल्पना भी नहीं कर सकता।

दुनिया भर में उनके कॉन्सर्ट और रॉटरडम कंजर्वेटरी में उनका काम वर्ष के अधिकांश हिस्से में उन्हें मुंबई से बाहर रखता है, लेकिन वर्ष 2002 से हरिप्रसाद शहर में होने पर गुरुकुल में रहते हैं।

❑

परिवर्तन : गुरु माँ से पहले और आगे

''**बाँ**स प्रकृति का एक विचित्र विरोधाभास है,'' हरिप्रसाद कहते हैं, ''ईश्वर ने उसे कोई फूल या फल नहीं दिया, लेकिन उसके बदले उसे सबसे खूबसूरत नाद (ध्वनि) दी, ऐसी ध्वनि, जिसकी शुद्धता, सरलता और प्रकृति से निकटता के अहसास में किसी भी अन्य वाद्य-यंत्र से कोई तुलना नहीं की जा सकती।''

शास्त्रीय संगीत में बाँसुरी एक विरोधाभास है। हालाँकि बाँसुरी प्राचीनतम भारतीय वाद्यों में से एक है और उसका भारतीय संगीत के इतिहास में विशेष स्थान है। इसे संगीत की अभिव्यक्ति के तीन रूपों, वाणी, वीणा और वेणु में से एक माना गया है। यह हिंदुस्तानी या उत्तर भारतीय शास्त्रीय मंचों पर स्वीकार्यता प्राप्त करनेवाले आखिरी परंपरागत भारतीय वाद्यों में से है। इसकी मुख्य वजह इसके आकार में परिवर्तन है। हालाँकि इस वाद्य का मूल रूप और गठन सदियों से अपेक्षाकृत वही रहा है। कंसर्टों से पहले के दिनों में बाँसुरी काफी छोटा और तीखी ध्वनिवाला वाद्य था, जिसे संगत के लिए या चरवाहों, घुमंतू जनजातियों और ग्रामीण लोगों द्वारा लोक-धुन बजाने के लिए इस्तेमाल किया जाता था।

बाँसुरी को शहरी रूप देने और भारतीय शास्त्रीय संगीत के कद्रदानों में सम्मान दिलाने का श्रेय पूरी तरह पन्नालाल घोष या पन्ना बाबू, जिस नाम से वह लोकप्रिय थे, को जाता है। 31 जुलाई, 1911 को आज के बँगलादेश के बारिसाल जिले में अमूल्य ज्योति के नाम से जनमे घोष ने कॉन्सर्ट फ्लूट को उसका वर्तमान रूप दिया। बाँस के बड़े-से-बड़े टुकड़े के साथ प्रयोग और उँगलियों की जरूरी तकनीक को विकसित करने के उनके अथक प्रयासों की बदौलत बाँसुरी ने ढाई सप्तकों का रेंज प्राप्त किया और एक कॉन्सर्ट वाद्ययंत्र के रूप में पहचान अर्जित की।

जैसे-जैसे हरिप्रसाद का ध्यान शास्त्रीय संगीत की ओर अधिक-से-अधिक गया, बाँसुरी सिखाने के लिए स्पष्ट रूप से पहली पसंद पन्नालाल घोष थे। हरिप्रसाद उन्हें महापुरुष एवं एक महान् कलाकार मानते हैं और उनसे सीखने की इच्छा रखते थे। ए.आई.आर. कटक के लिए काम करने के दौरान हरिप्रसाद को एक रिकॉर्डिंग के लिए दिल्ली जाना पड़ा। उस बार वह पन्नालाल घोष के घर उनसे मिलने गए। पन्ना बाबू ने बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया। वह पहले ही रेडियो पर हरिप्रसाद की बाँसुरी सुन चुके थे और उनकी क्षमताओं के बारे में जानते थे। हरिप्रसाद ने पन्नालाल घोष से पूछा कि क्या वह कभी-कभार उनसे सीखने के लिए आ सकते हैं, क्योंकि रेडियो स्टेशन से उन्हें दिल्ली भेजा जाता रहेगा? पन्नालाल घोष ने इस मुद्दे पर कोई वायदा नहीं किया और हरिप्रसाद को अगले दिन रेडियो स्टेशन पर मिलने को कहा। जब अगले दिन हरिप्रसाद रेडियो स्टेशन पहुँचे तो पन्नालाल घोष कहीं नहीं थे, लेकिन उनके दामाद देवेंद्र मुर्देश्वर ने विनम्रता से उन्हें बताया कि पन्ना बाबू इतने व्यस्त हैं कि वह नए विद्यार्थी नहीं ले सकते। हरिप्रसाद पन्नालाल घोष द्वारा चतुराई से इनकार किए जाने पर निराश कटक वापस लौट गए।

शायद यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि हरिप्रसाद के भाग्य में अपनी शैली और पहचान विकसित करना लिखा था, जिसकी पन्नालाल घोष की बाँसुरी-वादन शैली से कोई समानता नहीं है। औपचारिक शिक्षा की उनकी इच्छा कई वर्ष बाद पूरी हुई, जब एक अच्छे गुरु की उनकी तलाश ने उन्हें एक विचित्र दरवाजे पर दस्तक देने के लिए प्रेरित किया, जिस पर यह संदेश लिखा था—

'यह दरवाजा सोमवार और शुक्रवार को नहीं खुलेगा। कृपया सिर्फ तीन बार घंटी बजाएँ। अगर कोई दरवाजा नहीं खोलता तो अपना नाम व पता छोड़ दें। धन्यवाद। असुविधा के लिए खेद है।'

दशकों से वह अपने अपार्टमेंट की सीमा से बाहर नहीं निकली हैं। कम-से-कम किसी को याद नहीं है कि वह कब दिखी थीं। रहस्यमयी संगीतज्ञ अन्नपूर्णा देवी की दुनिया में आपका स्वागत है, जिनकी वैरागी जीवन-शैली ने उनके संगीत के चंद कतरों या सिर्फ उनकी एक झलक से भी लोगों को महरूम कर दिया। वह दूसरी चीजों के अलावा अपने घराने की धरोहर हैं। उनके पिता बाबा अलाउद्दीन खाँ ने सबसे कठिन और गूढ़ वाद्य-यंत्रों में से एक, सुरबहार द्वारा उन्हें अपनी संगीत की विरासत को आगे बढ़ाने का जिम्मा सौंपा। वह उस्ताद अली अकबर खाँ की बहन और पं. रवि शंकर की पूर्व पत्नी भी हैं। हालाँकि उन्होंने मुट्ठी भर कॉन्सर्ट ही किए हैं। जिन लोगों ने उन्हें सुना है, उन्हें विश्वास है कि वह उस युग के महानतम भारतीय शास्त्रीय संगीतकारों में से एक हैं। दुनिया के लिए वह एक पहेली हैं। हरिप्रसाद के लिए वह 'गुरु माँ' हैं।

उन्हें गुरु की जरूरत क्यों थी, जब वह पहले से शास्त्रीय संगीत और फिल्म संगीत में लोकप्रिय थे? उनके आलोचकों का कहना है कि वह एक ब्रांड नाम की तलाश में थे, जिसके द्वारा उन्हें आसानी से लाइव परफॉर्मेंस मिलते और पहचान मिलती। उनके बचाव में यह कहा जा सकता है कि अन्नपूर्णा देवी उस तरह एक ब्रांड नाम नहीं हैं, क्योंकि हरिप्रसाद के मिलने से कुछ समय पहले से वह परफॉर्म करना छोड़ चुकी थीं और संगीत की दुनिया से कट चुकी थीं। उनके अनुसार, उन्होंने एक शास्त्रीय संगीतकार के रूप में अपनी सीमाओं को महसूस किया था। उन्हें जो भी आता था, वह उन्होंने खुद सीखा था या बेतालिमी था और एक बिंदु के बाद गुरु के मार्गदर्शन के बिना आगे बढ़ने की कोई गुंजाइश नहीं थी। दूसरे, लंदन की उनकी यात्रा ने उन्हें दिखाया था कि पश्चिम में भारतीय संगीत का बड़ा बाजार है, लेकिन उसका लाभ उठाने के लिए उन्हें उस तरह की प्रवीणता की जरूरत थी, जो सिर्फ औपचारिक प्रशिक्षण से ही आता है। अंत में जैसा कि वह कहते हैं, ''बाँसुरी-वादक तो ट्रक भर के थे, लेकिन ऐसा कोई नहीं था, जो छा गया हो।'' उनकी यह बात पूरी तरह सही है, क्योंकि लगभग हर शहर के रेडियो स्टेशन के लिए दो-चार बाँसुरी-वादक होते थे, लेकिन उनका वादन उनके शहर या राज्य तक ही सीमित होता था। हालाँकि पन्नालाल घोष को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठा प्राप्त थी, रवि शंकर या अली अकबर खाँ जैसे अंतरराष्ट्रीय सितारों जैसी प्रतिष्ठावाला कोई बाँसुरी-वादक नहीं था। अपने लिए वह स्थान बनाना हरिप्रसाद का उद्देश्य था।

गुरुमाँ अन्नपूर्णा देवी।

वह अन्नपूर्णा देवी से क्यों सीखना चाहते थे, जब बहुत से अन्य गुरु उपलब्ध थे? उत्तर बहुत सरल है, इसलिए, क्योंकि बाबा अलाउद्दीन खाँ ने उनसे कहा था। बंबई में गुरु की तलाश करते हुए उन्हें बाबा के शब्द याद आए, जब बचपन में इलाहाबाद के प्रयाग होटल में वह बाबा से मिले थे। जब उन्हें पता चला कि अन्नपूर्णा देवी बंबई में रहती हैं तो उन्होंने फैसला किया कि उनसे सीखना ही अच्छा है।

हरिप्रसाद के जीवनीकार के रूप में लगा कि मुझे इस पुस्तक के लिए अन्नपूर्णा देवी का इंटरव्यू लेना चाहिए। उनकी एकांतप्रिय और मूडी प्रकृति को देखते हुए मुझे कोई अचंभा नहीं हुआ, जब हरिप्रसाद द्वारा स्वयं समय देने

का अनुरोध करने पर भी उन्होंने मुझसे मिलने से इनकार कर दिया, लेकिन एक रियायत देते हुए उन्होंने मेरी गहरी निराशा को कम कर दिया कि मैं अपने लिखित सवाल उन्हें भेज सकता था, जिनके जवाब वह मुझे ई-मेल द्वारा दे देतीं। उनके छह पृष्ठ के उत्तर ने हर किसी को विस्मित कर दिया। उनकी ओर से यह बहुत ज्यादा है, क्योंकि उनके द्वारा इंटरव्यू दिया जाना बहुत दुर्लभ है और इतने स्वतंत्र रूप से और इतने विस्तार से जवाब देना उससे भी दुर्लभ। उनके कुछ जवाब यहाँ पर शब्दश: दिए गए हैं।

उनके मार्गदर्शन में हरिप्रसाद की तालीम ठीक-ठीक कब शुरू हुई, यह बताना मुश्किल है। हरिप्रसाद बताते हैं कि वह 1966 का वर्ष था, जबकि उनकी पत्नी कहती हैं कि उन्होंने 1968 में बेटे राजीव के जन्म के बाद यह शुरू किया था; और अन्नपूर्णा देवी कहती हैं कि उन्हें वह वर्ष याद नहीं है, जब उन्होंने हरिप्रसाद को सिखाना शुरू किया था। इस विषय में सबसे पहला उल्लेख 'टाइम्स ऑफ इंडिया' की 1971 की क्लिपिंग से मिलता है, 'हाल में ही उन्होंने पद्म विभूषण उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब की बेटी और स्वयं असाधारण बाँसुरीवादक श्रीमती अन्नपूर्णा देवी से मार्गदर्शन प्राप्त किया है।'

वह लगातार अन्नपूर्णा देवी के घर जाकर सीखने की विनती करते रहे और वह इनकार करती रहीं। ऐसा लगभग एक साल तक चला, इसलिए यह मान लेना उचित है कि असली तालीम 1966 और 1967 के बीच किसी समय शुरू हुई।

उनके मार्गदर्शक और गुरु की भूमिका को उपयुक्त परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए यह देखना महत्त्वपूर्ण है कि हरिप्रसाद उस समय तक क्या कर चुके थे। हरिप्रसाद की प्रसिद्धि केवल किस्मत की बात नहीं है, न ही उन्होंने रातोरात यह दर्जा हासिल किया। यह हजारों घंटों के प्रोफेशनल वादन और कई सालों तक एकाग्र रियाज का नतीजा था। जब वह प्रशिक्षण के लिए अन्नपूर्णा देवी के पास गए तो अपने साथ बहुत सी चीजें लाए। इनमें से पहली उनकी अंतर्निहित संगीत क्षमताएँ और संवेदनाएँ थीं, जो निर्विवाद रूप से 'जीनियस' स्तर की थीं, अन्यथा वह उन्हें शिष्य के रूप में स्वीकार नहीं करतीं। '60 के दशक के शुरुआत में भुवनेश्वर में हरिप्रसाद को पहली बार सुननेवाले पंडित जसराज उनकी प्रतिभा को 'जबरदस्त' बताते हैं। उन्होंने महसूस किया कि वह आगे जाकर एक महान् संगीतकार बनेंगे, ''एक महानतम कलाकार का उद्भव हो रहा था,'' साथ ही वह यह भी कहते हैं, ''वह इनसे ना सीखकर भी बजाते तो इनमें किसी प्रकार की कमी नहीं थी, मगर कोई किसी अच्छे घर में पहुँचता है तो उसमें अच्छी चीजें आ जाती हैं, जो इनमें आई हैं।''

हरिप्रसाद आर्थिक और संगीत के स्तर पर उत्कृष्टता प्राप्त करने की ज्वलंत इच्छा भी लेकर आए थे। पैसे कमाने की इच्छा उस गरीबी से प्रेरित थी, जिसमें वह पैदा हुए थे, जबकि संगीत में उत्कृष्टता हासिल करने की इच्छा संगीत की दुनिया में पहचान बनाने की भावना से उपजी थी उनके पास समर्थन के लिए कोई वंशावली या घराना नहीं था तो शास्त्रीय संगीत के हलकों में पहचान बनाना बहुत मुश्किल था।

पं.राजाराम के प्रशिक्षण ने उन्हें शास्त्रीय कंठ संगीत का कामचलाऊ ज्ञान दिया था और गायन की धुरपद शैली की एक मूलभूत समझ दी थी। पं.भोलानाथ प्रसन्ना के प्रशिक्षण ने उन्हें बाँसुरी-वादन तकनीक का मूलभूत ज्ञान दिया था। खाली समय में ए.आई.आर. कटक की रिकॉर्ड लाइब्रेरी में महान् उस्तादों के रिकॉर्ड सुनने के कारण वह विभिन्न घरानों के बीच शैलीगत भिन्नताओं और विभिन्न वाद्यों के बीच तकनीकी अंतरों से अच्छी तरह परिचित थे। अधिक भौतिक स्तर पर उनकी पिच, टोनल गुणवत्ता और साँस पर नियंत्रण उनके पक्ष में थे। उन्होंने वर्षों तक संगीतकारों, नृत्य कार्यक्रमों और नाटक कार्यक्रमों के लिए संगत देते हुए एक विशिष्ट टोनल गुणवत्ता और पिच विकसित की थी। जैसा कि शिवकुमार शर्मा कहते हैं, ''अगर बाँसुरी क्वार्टर नोट ऑफ की थी तो मैंने हरिजी को

सिर्फ अपनी फूँक को सामंजस्य देते हुए पिच का साथ देते देखा है,'' पंडित जसराज भी इस बात पर सहमत हैं और कहते हैं, ''बाँसुरी सुर में ही बजती है, लेकिन इनकी कुछ सुर से अधिक सुर में बजती है।''

अब तक उन्होंने खाली स्टुडियो में घंटों रियाज करते हुए अपनी उँगलियों पर भी पूर्ण महारत हासिल कर ली थी। अविश्वसनीय रूप से लंबी फूँक और एक अनूठी अपनी शैली की फूँक तकनीक हासिल कर ली थी। साँस पर उनका नियंत्रण इतना अधिक है कि जब शिवाजी पार्क में पंडित जसराज और हरिप्रसाद के बीच पहली बाँसुरी-गायन जुगलबंदी आयोजित की गई तो जसराज की पत्नी ने अपने पति को सचेत किया था, ''हरि की फूँक बहुत लंबी है, तुमको तकलीफ होगी।'' जसराज ने जवाब दिया, ''तकलीफ होगी तो होगी। अब भगवान् ने जिसको दिया है, सो दिया है।''

सिडनी के एक कॉन्सर्ट में उनकी बाँसुरी फट गई, लेकिन वह लगभग आधे घंटे तक फटी बाँसुरी से बजाते रहे और वायु की कमी की क्षतिपूर्ति के लिए अपनी साँस को नियंत्रित करते रहे। यह ऐसा दुरूह कार्य था, जिसे एक बाँसुरी-वादक ही पूरी तरह समझ सकता है। इंटरवल के दौरान उन्होंने बाँसुरी की दरार पर टेप चिपकाया और बाकी कॉन्सर्ट के लिए भी उसी बाँसुरी से बजाना जारी रखा।

सबसे बड़ी बात हरिप्रसाद अपने साथ एक पूर्णतावादी रवैया लाए। एक ऐसा दिमाग जो हमेशा नए प्रयोग के लिए तैयार रहता था और शास्त्रीय संगीत के पर्याय दृढ़ता यानी लचीलेपन के अभाव को वह स्वीकार नहीं करते थे। उदाहरण के लिए, यदि आप ध्यान से सुनें तो आप उन्हें राग भीमपलासी में रे-गा बजाते हुए सुन सकते हैं; जबकि ऊपर की ओर जाते हुए रे वर्जित होता है या चंद्रकौंस पर नीचे की ओर आते हुए एक मिली सेकंड के लिए कोमल नी को स्पर्श करते सुन सकते हैं, जबकि वह एक वर्जित स्वर है, लेकिन ये छोटी-छोटी आजादियाँ उनके अपने सजावटी सुर या अलंकार हैं। ये उनकी कलाकारी के महत्त्वपूर्ण भाग हैं और कान को इतने मधुर लगते हैं कि उन पर ध्यान नहीं जाता या श्रोताओं द्वारा उन्हें कलाकार का अधिकार मानकर माफ कर दिया जाता है।

''हरिजी एक पूर्णतावादी कलाकार हैं। वह कभी जल्दी में नहीं होते और जब तक हर संभव बंदिश नहीं आजमाई जाती, तब तक संतुष्ट नहीं होते।'' संगीत निर्देशक प्यारेलाल शर्मा कहते हैं, ''उनके लिए विभिन्न ध्वनियोंवाली बाँसुरियों और जापानी शैली तथा नेपाली लोक शैली में मींद वाइब्रेटो और स्टेकेटो के साथ एक ही गीत को तीन सप्तकों में आजमाना सामान्य बात थी, जब तक कि हमें यह महसूस नहीं होता कि वह संगीत दृश्य के सबसे अधिक अनुकूल है।''

इस बात से भी मदद मिलती थी कि वह संगीत के संतुलित कलाकार हैं, जिन्होंने अपने गायन और वादन के शुरुआती दिनों से ही कट्टर शास्त्रीय संगीत और शुद्ध पॉप के बीच सहजता से संतुलन स्थापित किया है। संगीत के इन दोनों रूपों की माँग पूरी तरह भिन्न है, लेकिन हरिप्रसाद को एक से दूसरे में जाते हुए कभी कोई परेशानी नहीं हुई।

अगर '60 के दशक के मध्य की प्रेस समीक्षाओं को पढ़ा जाए तो यह लगता है कि उनमें हमेशा ओडब जाति के रागों की ओर झुकाव रहा है। ऐसी बात नहीं है कि उन्होंने 'शाडब' या 'संपूर्ण' राग नहीं बजाए। वह बहुत अच्छी गुजरी तोडी या यमन बजा सकते हैं, लेकिन अभोगी, चंद्रकौंस, हंसध्वनि, जोग, दुर्गा, भूपाली जैसे राग अधिक प्रमुखता से छाए रहे हैं।

वह कुछ बड़ी उपलब्धियाँ हासिल कर चुके थे, जिनका श्रेय अन्नपूर्णा देवी के प्रशिक्षण को नहीं जाता, क्योंकि उस समय या तो उन्होंने अन्नपूर्णा देवी से तालीम लेना शुरू नहीं किया था या वह उनके परफॉर्मेंस में दिखने के लिए बहुत जल्दी था। लगभग सन् 1964-65 के आस-पास उन्होंने बंबई के कुछ महत्त्वपूर्ण शास्त्रीय कार्यक्रमों में

वादन किया—ब्रजनारायण द्वारा आयोजित हरिदास संगीत सम्मेलन, कमल सिंह द्वारा आयोजित शास्त्रीय कार्यक्रम और दादर के छबीलदास ऑडिटोरियम में आयोजित अन्य कार्यक्रम जहाँ उस्ताद आमिर खाँ और बेगम अख्तर दर्शकों में थे। उनके प्रदर्शन के बाद दोनों ने मंच पर आकर उन्हें बधाई दी।

वास्तव में बड़े कार्यक्रमों में पहला था जालंधर में हुआ हरवल्लभ म्यूजिक फेस्टिवल। सन् 1966-67 की सर्दियों के दौरान किसी समय आयोजित यह उत्सव उत्तर भारत का सबसे बड़ा संगीत महोत्सव था और एकमात्र ऐसा उत्सव था, जहाँ संगीत कई दिनों तक अनवरत चलता था।

आमिर खान तथा बेगम अख्तर के साथ।

इस उत्सव का नाम नजदीकी हरवल्लभ मंदिर के नाम पर पड़ा और वह एक बड़े मैदान में एक पंडाल में आयोजित किया जाता था। उसका आयोजन सीमा सुरक्षा बल के एक वरिष्ठ अधिकारी अश्विनी कुमार ने किया था। चूँकि वह काफी प्रभावशाली थे, इसलिए प्रायोजक और परफॉर्मर दोनों आसानी से प्राप्त करने में सफल रहे। हरिप्रसाद ने सुन रखा था कि पंजाब के लोग संगीत के प्रति बहुत झुकाव रखते हैं। इस राज्य में ही प्रसिद्ध पटियाला घराना है, लेकिन दर्शकों की संख्या ने उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया। उस कार्यक्रम में अमृतसर, लुधियाना, चंडीगढ़ और पंजाब के दूसरे हिस्सों से, बल्कि पाकिस्तान से भी लोग आए थे। उस समय भारत में मोटर कारों का उतना प्रचलन नहीं था, इसलिए पार्किंग की जगह साइकिलों, बैलगाड़ियों और ट्रैक्टरों से भरी हुई थी। चूँकि संगीत कई दिनों तक चलनेवाला था, वहाँ खाने का सामान और चाय बेचनेवाले स्टॉल चौबीस घंटे खुले रहते थे, ताकि लोग जब भी मन करे, कुछ खा सकें और फिर संगीत का आनंद उठाना जारी रख सकें। कलाकारों के लिए कोई निर्धारित समय-सीमा नहीं थी और वे सभी अपना नाम बुलाए जाने का इंतजार करते हुए बैठे थे। पुराने लोगों में पं. ओंकारनाथ ठाकुर, बड़े गुलाम अली खाँ और बिस्मिल्ला खाँ थे, जबकि युवा लोगों में रवि शंकर और अली अकबर खाँ महत्त्वपूर्ण कलाकारों में से थे।

यहाँ बजाने के लिए आमंत्रित किए जाने पर हरिप्रसाद बहुत रोमांचित थे। वह ठिठुरानेवाली सर्दी में तीन दिनों तक वहाँ बैठे रहे। आखिरकार जब उन्हें बजाने का मौका मिला तो रात हो चुकी थी और उनके तथा दर्शकों के बीच धुंध की मोटी चादर थी। उनकी उँगलियाँ लगभग शून्य के तापमान पर जड़ हो गई थीं और दर्शकों की इतनी भारी भीड़ देखकर उनका दिमाग घूमने लगा था। अत्यंत घबराए हरिप्रसाद ने जब बाँसुरी को होंठों से लगाया तो उससे बस सफेद भाप-सी निकली। उन्हें याद है कि उन्होंने राग मालकौंस बजाया था और फिर बजाने के लिए कहे जाने पर राग दुर्गा बजाया था। उन्हें परफॉर्मेंस के लिए पैंतालीस मिनट का समय दिया गया था; लेकिन उन्होंने एक घंटे से अधिक समय तक बजाया। यह उनकी पहली बड़ी प्रस्तुति थी और उनके बाँसुरी-वादन को खूब सराहना मिली। कॉन्सर्ट के बाद वह और रवि शंकर एक साथ ट्रेन से दिल्ली आए और फिर वहाँ से अपनी-अपनी फ्लाइट ली।

यहाँ पर यह बताना जरूरी है कि हरप्रिसाद ने लगभग तीन दशक बाद फिर से हरवल्लभ फेस्टिवल में बाँसुरी-वादन किया, लेकिन परफॉर्मेंस के बाद उनकी वापसी यात्रा उतनी सुखद नहीं रही। 24 दिसंबर, 1994 को सुबह लगभग तीन बजे हरिप्रसाद ने बाँसुरी-वादन समाप्त किया और वह अपने विद्यार्थी के साथ किराए की जिप्सी में दिल्ली तक के लिए चल दिए। हरिप्रसाद को आठ बजे की कोलकाता की फ्लाइट पकड़नी थी, जहाँ उन्हें वीणा

किचलू द्वारा अपने स्वर्गीय पति की स्मृति में आयोजित पं. रवि किचलू फाउंडेशन के उद्घाटन समारोह में बाँसुरी-वादन करना था। पहले की तरह वह एक गहरी और धुंध भरी रात थी। भारतीय कारें आमतौर पर धुंध में काम करनेवाली बत्तियों से लैस नहीं होतीं और बारिश ने दिखाई पड़ने को और खराब कर दिया। सभी गाड़ीवालों की तरह जिप्सी का ड्राइवर दिल्ली पहुँचने की जल्दी में था और काफी तेज गाड़ी चला रहा था। जालंधर और दिल्ली के बीच कहीं पर कार फिसली, तेजी से घूमी और एक लैंप पोस्ट से जा टकराई। विंडशील्ड चूर-चूर हो गया और एक शीशे का टुकड़ा उनके छात्र की आँख में चला गया, जिससे बहुत खून निकल रहा था। ड्राइवर का पैर फ्लोरबोर्ड में फँस गया था और खून निकल रहा था। हरिप्रसाद ने खुद अपने बाईं ओर तेज पीड़ा महसूस की और लगा कि वह अपना बायाँ हाथ हिला नहीं पा रहे हैं। उस समय अँधेरा, बारिश और एकांत था, इसलिए इंतजार के अलावा कुछ नहीं कर सकते थे। लगभग आधे घंटे बाद हरिप्रसाद वहाँ से गुजरते एक वाहन को रोक पाए और नजदीकी शहर में मदद लेने के लिए पहुँच सके। टॉर्चों और लालटेनों की रोशनी में फ्लोरबोर्ड काटकर ड्राइवर का पैर निकाला गया। एक ओर वह अपने ड्राइवर व अपने छात्र के बारे में चिंतित थे और दूसरी ओर वीणा किचलू से किए गए वायदे को लेकर। वह और रवि किचलू न केवल साथी संगीतकार, बल्कि अच्छे मित्र रहे थे। वह जानते थे कि अगर समय पर कोलकाता न पहुँचे तो इससे न केवल पूरा कार्यक्रम चौपट हो जाएगा, बल्कि वीणाजी का दिल टूट जाएगा। उनके दिमाग में आखिरी बात उनका बायाँ हाथ था, जो हिल नहीं पा रहा था।

हरवल्लभ फेस्टिवल के आयोजकों ने उन्हें चेक द्वारा भुगतान किया था, इसलिए उनके पास सिर्फ 1,500 रुपए नकद थे, जो उस समय अच्छी रकम थी, लेकिन परिस्थितियों को देखते हुए बहुत बड़ी रकम नहीं थी। उन्होंने अपने छात्र को वह पैसे दे दिए और यह सुनिश्चित किया कि उन्हें एक नजदीकी अस्पताल ले जाया जाए। वह एक ट्रक पर सवार होकर अपने छोटे से बैग, अपनी बाँसुरी और जख्मी बाएँ हाथ के साथ दिल्ली पहुँचे। ठीक फ्लाइट पकड़ने के समय पर एयरपोर्ट पहुँच गए। उन्हें मुँह-हाथ धोने या अपने जख्म देखने का भी समय नहीं मिला। गोलपार्क के रामकृष्ण मिशन परिसर में उनके लिए एक कमरा बुक किया हुआ था। जब वह अपने कमरे में पहुँचे तो उन्होंने किसी से मुँह-हाथ धोने और कुरता बदलने में मदद करने के लिए कहा। खुशकिस्मती से उनका दायाँ हाथ पूरी तरह ठीक था और वह बिना किसी की मदद के कंघी कर सकते थे। पीड़ा और असुविधा के बावजूद उन्होंने पहले 'टैलेंट हंट' के लिए जूनियर कलाकारों की प्रतियोगिता का निर्णय किया और फिर उस शाम लगभग एक घंटे तक बाँसुरी-वादन किया। उसी शाम को कोलकाता के बाहरी इलाके के उत्तरपाड़ा में उन्होंने एक और कार्यक्रम के लिए भी वादन किया।

रवि किचलू फाउंडेशन के लिए बाँसुरी-वादन करते हुए।

इस घटना ने वीणा किचलू का दिल छू लिया और उन्हें अब तक यह घटना याद है। उन्होंने उनका एक्स-रे कराया, खुशकिस्मती से कोई हड्डी नहीं टूटी थी; सिर्फ एक 'थक्का' था, जिसे डॉक्टर ने कहा कि वह समय के साथ ठीक हो जाएगा। वह उन्हें कहती रहीं कि सिर्फ पंद्रह मिनट बजा सकते हैं, लेकिन एक बार शुरू करने के बाद उन्हें रोकनेवाला कोई नहीं था। जब वह मंच पर गए तो उन्होंने महसूस किया दुर्घटना से उनकी कमर को भी कुछ क्षति हुई है और पालथी मारकर बैठने से उन्हें काफी पीड़ा हो रही थी। वह शांति से मंच के सिरे पर बैठे और अपने पैर नीचे छोड़ दिए, जैसे कुरसी पर बैठे हों और वीणा के पुत्र विभास को कहा कि सजावटी फूल इस तरह

लगा दें, ताकि दर्शक उनका चेहरा तो देख सकें, लेकिन यह महसूस न कर सकें कि वह पालथी मारकर नहीं बैठे हुए हैं।

'कॉल ऑफ द वैली' टीम—हरिप्रसाद चौरसिया, ब्रजभूषण काबरा और शिवकुमार शर्मा।

''उस परफॉर्मेंस के लिए कोई भुगतान नहीं किया गया था।'' भावुक वीणा किचलू ने मुझे बताया, ''हरि-भाई मुफ्त में बाँसुरी-वादन कर रहे थे और सिर्फ यही नहीं, उन्होंने फोन पर मुझसे कहा कि उनके पास कुछ फ्लाइट वाउचर पड़े हैं, इसलिए मैं उन्हें टिकट भी न भेजूँ। उनकी जैसी स्थिति में फँसने पर कोई आम इनसान फोन करके अपना कार्यक्रम रद्द कर देता, लेकिन वह ऐसा नहीं कर सकते थे। उनकी बहादुरी और वचनबद्धता दोनों सराहनीय हैं। वह मेरे स्वर्गीय पति के लिए उनका प्रेम था, जिसने उन्हें आकर प्रस्तुति देने के लिए प्रेरित किया। यह एक संगीतकार के रूप में उनकी क्षमता से कहीं परे है।'' बाद में वीणा किचलू ने बंबई में उनके परिवार को फोन किया और उन्होंने तुरंत चेन्नई के उनके कंसर्टों को रद्द कर दिया, ताकि उनके कुछ मेडिकल परीक्षण हो सकें।

उनकी एक और बड़ी उपलब्धि 'कॉल ऑफ द वैली' एलबम था। सन् 1967 में बनाया गया यह एलबम उनका, शिवकुमार शर्मा (संतूर) और ब्रजभूषण काबरा (गिटार) का सम्मिलित प्रयास था। यह आइडिया रिकॉर्डिंग कंपनी एच.एम.वी. का था, जिसे कार्यान्वित तीनों ने किया। एच.एम.वी. को शास्त्रीय संगीत पर आधारित कुछ नया और रोमांचक चाहिए था, जो शुद्ध शास्त्रीय संगीत भी न हो। वह ऐसा समय था, जब सिर्फ स्थापित उस्तादों के रिकॉर्ड ही बिकते थे। व्यावसायिक चिंताएँ रिकॉर्ड कंपनियों को नए लोगों को अवसर देने से रोकती थीं। हर कोई एक अवसर चाहता है—और उन्हें एक मिल गया। गड़रिये, पहाड़ और बाँसुरी भारतीय लोकगीतों में अभिन्न हैं। शिवकुमार शर्मा और उनका वाद्य-यंत्र दोनों कश्मीर से संबंध रखते हैं। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि 'एक गड़रिये के जीवन का एक दिन' विषय पर एक एलबम बनाने का आइडिया उनका था। उन्होंने इस बारे में एक छोटी सी कहानी लिखी, जिसकी संगीतमय व्याख्या ने इस एलबम का रूप लिया।

एच.एम.वी.के श्री एन. जोशी ने इस क्रम को आगे बढ़ाते हुए इसकी दृश्यवार पटकथा और कुछ बड़े रोचक नोट्स लिख डाले। यह उन विरले उदाहरणों में से एक है जब किसी भारतीय रिकॉर्ड कंपनी ने किसी एलबम की आकल्पन प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाई हो। राग पूरे दिन को ध्यान में रखकर चयन किए गए थे और पर्वतीय लोक संगीत का पूरा प्रतिनिधित्व करते थे।

परिणाम विस्मयकारी थे। यह एलबम भारतीय संगीत कला के इतिहास में लोक संगीत की पहली प्रस्तुति थी, जिसने उत्सवों, त्योहारों और कॉन्सर्ट में शास्त्रीय संगीत का आनंद लेनेवालों की सीमित संख्या को व्यापक विस्तार देकर उसे आमजन की रुचि का विषय बनाया। एक प्रकार से यह शास्त्रीय संगीत की समझ और उसके प्रति अभिरुचि पैदा करने का पहला कदम था। प्रारंभ में कम सफलता मिली, पर अंतत: इस एलबम ने प्लेटिनम प्राप्त किया और आज भी इसकी अच्छी-खासी माँग है। एलबम जारी होने के बाद वर्षों तक हरिप्रसाद और शिवकुमार इसके संगीत को होटलों और विदेश यात्राओं में हवाई जहाज में सुनते रहे हैं। यूँ तो अनेक युवा संगीतज्ञों ने बाँसुरी, संतूर और गिटार पर इसी प्रकार की धुनें बनाने का प्रयास किया है, पर किसी को भी 'कॉल ऑफ द वैली' जैसी

अपार सफलता नहीं मिली। 1995 के आस-पास उन्होंने इसी प्रकार की एक और एलबम 'वैली रिकॉल्स' बनाई, जिसमें कुछ सजीव धुनें और पहली वाली एलबम का एक स्टुडियो पीस सम्मिलित था।

हरिप्रसाद की तालीम को समझने के लिए उनकी गुरु माँ, उनकी वंश परंपरा, घराना और शास्त्रीय संगीत को उनके योगदान को समझना महत्त्वपूर्ण है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, अन्नपूर्णा देवी उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब की बेटी हैं। बाबा अलाउद्दीन खाँ की संगीत संबंधी उपलब्धियाँ उनकी गिनती महान् कलाकारों में करवाती हैं।

अन्नपूर्णा देवी के अपने शब्दों में, ''बाबा को अपने गुरु उस्ताद वजीर खाँ साहब से सीखने के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ा, जबकि नवाब ने खुद उस्ताद वजीर खाँ साहब से अनुरोध किया था कि वह बाबा को अपने शिष्य के रूप में स्वीकार करें। उस्ताद ने बाबा के धैर्य, प्रोत्साहन और उनसे सीखने की इच्छा की तीव्रता की लगभग दो वर्षों तक परीक्षा ली। इस अवधि के दौरान बाबा उस्ताद के चैंबर के बंद दरवाजों के बाहर बैठते थे, अंदर उस्ताद द्वारा अपने शिष्यों को दी जा रही तालीम को सुनते थे, सबक याद करते थे और रात में रियाज करते थे। जब मेरे घर से उस्ताद को एक टेलीग्राम गया, जिसमें यह कहा गया था कि मेरी माँ ने आत्महत्या करने की कोशिश की, तब जाकर उस्ताद ने बाबा के समर्पण और त्याग को महसूस किया और फिर उन्हें सिखाना शुरू किया।''

एक व्यक्ति और संगीतकार के रूप में अलाउद्दीन खाँ के बारे में वह कहती हैं, ''मैं हमेशा बाबा को सम्मान, विस्मय और प्रेम से याद करती हूँ। बचपन से मेरी उनमें श्रद्धा थी। अपने जीवन के दौरान मैं जिन अन्य महान् इनसानों से मिली, उनमें वह सबसे अलग थे। सरल, अहंकार से दूर, सच बोलनेवाले और लोगों से प्रेम तथा उनका सम्मान करनेवाले थे, लेकिन सबसे अधिक उनके दिल में गरीबों के लिए करुणा थी। मैं हमेशा उनसे बहुत नजदीकी महसूस करती थी और वह भी मुझसे बहुत स्नेह करते थे।

''वह कहा करते थे कि तुम जो भी सुर बजाओ, वह आत्मा को स्पर्श करना चाहिए। यह बहुत कठिन है और इसके लिए कड़ी साधना की जरूरत होती है। यह पूर्ण समर्पण, अपना अहं पूरी तरह छोड़ देने की प्रक्रिया है...। बाबा मानते थे कि इनसान संगीत के माध्यम से ईश्वर तक पहुँच सकता है।

''बाबा में एक आदर्श गुरु के गुण थे, जिसमें धैर्य और अपने विद्यार्थियों से बेहतरीन बाहर लाने की क्षमता थी। साथ ही वह बहुत मेहनती, शुद्धतावादी और पूर्णतावादी थे। वह अपने विद्यार्थियों को अपनी खुद की शैली विकसित करने में मदद करते थे और उन्हें संगीत को अपनी भावनाओं के साथ ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। यही वजह है कि दादा (अली अकबर खाँ) और पं. रवि शंकर द्वारा बजाया गया एक ही पद अलग लगता है।

''एक संगीतकार के रूप में बाबा कई वाद्ययंत्रों में निष्णात थे, जिनमें कई पश्चिमी वाद्य भी शामिल थे, जो उन्होंने कई उस्तादों से सीखे थे। उन्होंने कुछ चैंबर या लोक वाद्यों को कॉन्सर्ट के लिए उपयुक्त वाद्यों में भी तब्दील करके उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। वही सबसे पहले भारतीय संगीत में ऑर्केस्ट्रा की संकल्पना को लाए।

''उनके कुछ प्रस्तुतीकरण इतने गहन और हृदयस्पर्शी होते थे कि श्रोताओं को अपने आँसू रोकने में बहुत संघर्ष करना पड़ता था। मुझे याद है कि मइहर के महाराजा को भी बाबा का एक कॉन्सर्ट छोड़कर जाना पड़ा था, क्योंकि वह नहीं चाहते थे कि उनकी जनता उन्हें आँसुओं में देखे।

''बाबा विनोदप्रिय और बुद्धिमान भी थे। एक एक दिन एक आगंतुक उनसे मिलने आया, तब वह बाहर पौधों को पानी दे रहे थे। आगंतुक ने गलती से उन्हें माली समझ लिया और उनसे कहा कि बाबा को उसके आगमन की सूचना दे दे। बाबा चुपचाप अंदर गए, फिर आए और बाबा के रूप में अपना परिचय दिया।

''मैं मानती हूँ कि संगीत की दुनिया में बाबा जैसे संत संगीतकार विरल हैं। बाबा अत्यंत धार्मिक थे, लेकिन भावना में सार्वभौमिक थे। वह शारदा माँ की पूजा करते थे और साथ ही दिन में पाँच बार नमाज पढ़ते थे। मैं अपने जीवन में जितने भी लोगों से मिली हूँ, उनमें वह सबसे धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति थे।

''सबसे अधिक बाबा ने अपना पूरा जीवन संगीत में उत्कृष्टता हासिल करने में बिता दिया। मैं मानती हूँ कि वह न केवल संगीत के विद्यार्थियों, बल्कि किसी भी क्षेत्र में उत्कृष्टता की चाह रखनेवाले सभी लोगों के लिए एक आदर्श हो सकते हैं।'

अपने घरानों के नाम को लेकर अन्नपूर्णा देवी बहुत स्पष्ट हैं। वह कहती हैं, ''मेरे पिता और गुरु बाबा अलाउद्दीन खाँ साहिब ने मियाँ तानसेन के सेनिया घराना के उस्ताद वजीर खाँ साहब से सीखा, इसलिए कुछ लोग हमारे घराने को 'सेनिया घराना' कहते हैं। हमारे शास्त्रीय संगीत में बाबा के योगदान को पहचान देने के लिए कुछ लोग उसे मइहर घराना कहते हैं, जबकि कुछ उसे सेनिया-मइहर घराना कहते हैं। मैं 'सेनिया-मइहर घराना' शब्द पसंद करती हूँ।''

नाम के 'मइहर' भाग के बारे में वह कहती हैं, ''उस्ताद वजीर खाँ साहब की सीखों में महारत हासिल करने के बाद बाबा मध्य प्रदेश के मइहर राज्य के दरबारी संगीतकार हो गए। उन्होंने वहाँ पर सिखाते, संगीत बनाते और संगीत बजाते हुए अपना बाकी का जीवन बिताया।

''अपनी समृद्ध प्रवीणता और संगीत ज्ञान के साथ उन्होंने एक नई शैली ईजाद की, जिसे 'मइहर घराना' या 'सेनिया-मइहर घराना' के नाम से जाना जाता है। वह मियाँ तानसेन के सेनिया घराना परंपरा से विकसित हुई थी, जिसे मियाँ तानसेन के सीधे वंशज उस्ताद वजीर खाँ साहब द्वारा आगे बढ़ाया गया था।

''वाद्य आधारित भारतीय शास्त्रीय संगीत में हमारे घरानों का योगदान किसी राग को प्रस्तुत करने की अनूठी शैली है। सेनिया-मइहर घरानों में प्रस्तुति की आम शैली ध्रुपद की है। आलाप व्यवस्थित, धीमे, गरिमामय और शांत होते हैं, जिसमें खटका और मुरकियाँ नहीं होतीं, जोड़ अंग में पेचीदा लयकारी, लयबद्ध प्रारूप हैं और आलाप तथा झाला में बहुत विविधताएँ हैं। पूरे प्रस्तुतीकरण के दौरान हर खास राग की शुद्धता बरकरार रखी जाती है। मइहर घराना की बंदिश सिर्फ तीन ताल तक सीमित नहीं हैं।

''बाबा ने अपने जीवन के लगभग चार दशक मइहर में वादन करते, सिखाते और संगीत के अपने दिव्य उपहार को बाँटते हुए बिताए। उनके शिष्यों में 20वीं सदी के बहुत से अग्रणी वादक शामिल हैं। हर कोई विश्वस्तरीय संगीतकार और संगीत वाद्य का बेहतरीन ज्ञाता है, पद्मविभूषण उस्ताद अली अकबर खाँ (सरोद), भारत-रत्न पं. रवि शंकर (सितार), स्व. पं.पन्नालाल घोष (बाँसुरी), पद्मभूषण पं.वी.जी.जोग (वायलिन), पद्मभूषण पं. निखिल बनर्जी (सितार), जिन्होंने दादा और मुझसे दोनों से सीखा।

''जब मैं सीख रही थी, कभी बाबा से यह पूछने की हिम्मत नहीं कर सकती थी कि उनके पसंदीदा राग कौन से थे, न ही बाबा कभी अपने परफॉर्मेंसों के बारे में बोलते थे। मेरा सारा समय सीखने और रियाज करने में जाता था, लेकिन उनके तहत तालीम ग्रहण करने के दौरान बाबा ने कई राग बनाए, जिनमें हेमंत, मांज-खमाज, हेम-बिहाग, शुभावती और यमन-मांज है, जिन्होंने घरानों की सीमाओं को पार कर लिया है। विभिन्न घरानों के संगीतकार अब बाबा द्वारा रचित राग गाते और बजाते हैं।

अलाउद्दीन खाँ के मार्गदर्शन में अपने प्रशिक्षण पर उनका कहना है, ''मुझे अकसर बाबा के संदर्भ में महिलाओं को संगीत सिखाने की वर्जनाओं के बारे में पूछा जाता है। इसलिए मैं उनका अनुभव बताना चाहती हूँ। बाबा ने मेरी बहन (जहाँआरा) को बहुत प्यार से शास्त्रीय गायन सिखाया और वह तब बहुत व्यथित हुए, जब बहन को उनके

रूढ़िवादी ससुरालवालों द्वारा गाने की मनाही कर दी गई। इस वजह से वह दुविधा में थे कि मुझे संगीत सिखाएँ या नहीं, लेकिन वह दादा को जो सिखाते थे, मैं उसे सुनकर याद कर लेती थी। एक दिन, जब बाबा बाजार गए हुए थे, दादा सरोद पर अपने सबकों का अभ्यास कर रहे थे। अचानक उन्होंने एक गलती की और मैंने उसे सुधारा। मैं उसमें इतनी डूबी हुई थी कि मुझे यह पता नहीं चला कि बाबा वापस आ गए हैं। अचानक मुझे उनकी उपस्थिति का पता चला, वह ठीक मेरे पीछे खड़े हुए थे। मैं डर गई, लेकिन मुझे डाँटने की बजाय बाबा ने मुझे अपने कमरे में बुलाया और एक तानपुरा दिया। यह मेरी तालीम की शुरुआत थी। एक बार जब मैं उनसे सितार सीख रही थी, उन्होंने मुझे कहा कि 'मैं तुम्हें अपने गुरु की विद्या सिखाना चाहता हूँ, क्योंकि तुम्हारे अंदर कोई लालच नहीं है। उसे सीखने के लिए तुम्हारे पास बहुत धीरज और शांत दिमाग होना चाहिए। मुझे लगता है कि तुम मेरे गुरु के उपहार को सँभाल सकती हो, क्योंकि तुम संगीत से प्रेम करती हो, लेकिन तुम्हें सितार बजाना छोड़ना होगा, जो एक ऐसा वाद्य है, जिसे संगीत के कद्रदानों के साथ-साथ आम लोग भी पसंद करते हैं। दूसरी ओर सुरबहार को सिर्फ विवेकशील श्रोता ही सराहेंगे, जो संगीत की गहराई को समझ सकते हैं तथा जो सहज रूप से संगीत को महसूस करते हैं। आम आदमी तुम पर टमाटर फेंक सकता है। तो तुम्हारा फैसला क्या है?' मैं अवाक् थी। 'बाबा, आपका जो आदेश होगा, मैं वही करूँगी।' यह मेरी सहज प्रतिक्रिया थी।

''मेरा एक स्त्री होना मेरी तालीम या तालीम के ढंग पर कोई असर नहीं डालता था। दादा और मुझे एक ही तालीम दी गई। मुझे लगता है कि संगीत कोई लिंगभेद नहीं जानता। भावनात्मक और कलात्मक अभिव्यक्ति का लिंग से अधिक कलाकार की शख्सियत से लेना-देना है। एक आत्मनिरीक्षण करनेवाला कलाकार सुर और आलाप पसंद कर सकता है, जबकि एक बहिर्मुखी लयकारी को चुन सकता है।

''मैं जानती हूँ कि किसी भी वाद्य को सीखना बहुत मेहनत का काम है, जिसके लिए समय, समर्पण और अनवरत प्रयास की जरूरत होती है, लेकिन मुझे नहीं लगता कि किसी महिला द्वारा किसी वाद्य को सीखने के रास्ते में कोई शारीरिक मुश्किलें होती हैं। उसे बस ज्वलंत इच्छा, सही गुरु, अनुशासन और दृढ़ निश्चय की जरूरत होती है।

''बाबा ने मुझे जो सिखाया, उसका रियाज मैं प्रार्थना या ध्यान के रूप में करती हूँ और उन्होंने मुझे जो सिखाया, मैं उसके साथ न्याय कर रही हूँ। उन्होंने मुझसे यह भी कहा था कि अगर कभी जरूरत हुई तो मैं संगीत से अपनी जीविका कमाने में सफल रहूँगी और आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाऊँगी, लेकिन हमारे समाज में मैंने देखा है कि जब तक कोई महिला अविवाहित होती है, वह एक महान् वादक बनने की सभी शर्तें पूरी कर सकती है, लेकिन विवाह के बाद उसका समय बँट जाता है और वह अपना कठोर रियाज जारी रखने में सफल नहीं हो पाती।''

संयोगवश बाबा अलाउद्दीन खाँ के भाई आफताबुद्दीन खाँ भी एक बाँसुरी-वादक थे। अन्नपूर्णा देवी कहती हैं, ''हाँ, बाबा के भाई उस्ताद आफताबुद्दीन खाँ साहब बाँसुरी बजाते थे और हाँ, वह लोगों के लिए बजाते थे। मैं यह नहीं कहूँगी कि उन्होंने आज के अर्थों में आम लोगों के लिए कॉन्सर्ट किए।''

जब हरिप्रसाद पहली बार उनके पास गए तो उन्होंने यह कहते हुए उन्हें सिखाने से सीधे-सीधे इनकार कर दिया कि वह घरेलू कामों में काफी व्यस्त रहती हैं और नए विद्यार्थियों को स्वीकार नहीं कर सकतीं। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि वह उनके पति रवि शंकर से सीख सकते हैं।

''अगर मैं शास्त्रीय संगीत सीखूँगा तो सिर्फ आपसे।''

''क्यों?''

''क्योंकि बाबा ने मुझे ऐसा कहा था।''

बाबा अलाउद्दीन खाँ।

यह बातचीत दोनों में लगभग एक साल तक चली, ''अगर आप वाकई उनसे सीखना चाहते हैं तो अड़े रहें।'' उनके मित्रों ने सलाह दी, ''उन्हें एक-न-एक दिन मानना पड़ेगा।'' वह उस समय मुश्किल दौर से गुजर रही थीं। रवि शंकर के साथ उनका विवाह टूटने के कगार पर था और हरिप्रसाद मानते हैं कि वह मानसिक रूप से परेशान थीं, इसलिए अपनी जिम्मेदारियाँ बढ़ाना नहीं चाहती थीं। वह फिल्मी संगीत में उनके प्रदर्शन के बारे में भी सुन चुकी थीं और जानती थी कि हरिप्रसाद एक व्यस्त संगीतकार हैं। वह शायद आशंकित थीं कि प्रशिक्षण के लिए उतना समय और समर्पण दे पाएँगे या नहीं। यह पूछे जाने पर कि उन्होंने उन्हें सिखाने के लिए लगातार इनकार क्यों किया, वह कहती हैं, ''मैं किसी को सिखाना नहीं चाहती थी।'' फिर आखिरकार उन्होंने स्वीकार क्यों किया? ''उन्होंने (हरिप्रसाद) मुझसे कहा कि मैंने उनसे उन्हें सिखाने का वायदा किया था। मुझे याद नहीं आ रहा था कि मैंने उनसे वायदा किया था या नहीं, इसलिए मैंने उन्हें संदेह का लाभ दिया।' यह उनका जवाब था।

चाहे वजह जो भी रही हो, सच्चाई यह है कि आखिरकार उन्होंने हरिप्रसाद को बाँसुरी पर कुछ बजाकर सुनाने को कहा। उस समय शाम के लगभग पाँच बजे थे, इसलिए उन्होंने राग भीमपलासी बजाया।

''आप मुझसे सीखना क्यों चाहते हैं?'' उन्होंने सीधे-सीधे कहा, ''आप तो पहले से उस्ताद हैं।''

''नहीं माँ, मैं शास्त्रीय संगीत का असली ज्ञान चाहता हूँ। मैं शुरुआत से शास्त्रीय संगीत सीखना चाहता हूँ।''

''क्या आपके पास शुरुआत से सीखने का समय है?आप फिल्म उद्योग में इतने व्यस्त हैं। आपका मीटर वहाँ टैक्सी की तरह चलता रहता है। क्या आपको लगता है कि आप वह सबकुछ छोड़ सकते हैं?''

''हाँ, अगर आप ऐसा कहेंगी तो मैं फिल्म संगीत पूरी तरह छोड़ दूँगा, लेकिन मैं सिर्फ और सिर्फ आपसे सीखना चाहता हूँ—बाबा ने ऐसा कहा था।''

इस बात से संतुष्ट होकर कि हरिप्रसाद में उनकी आशाओं पर खरा उतरने की क्षमता है, उन्होंने उन्हें हर दो सप्ताह में एक बार आने को कहा, ''लेकिन आपको वह सब भूलना होगा, जो आप जानते हैं और सा रे गा मा से शुरू करना होगा, अगर आप हमारे घराने की तालीम चाहते हैं।'' उन्होंने चेतावनी दी।

हरिप्रसाद ने खुशी-खुशी यह स्वीकार कर लिया। उन्होंने अपने सबक तैयार किए और जल्दी ही उन्हें सप्ताह में एक बार और फिर हर दिन बुलाना शुरू कर दिया, ''आपकी स्टुडियो रिकॉर्डिंग का क्या होगा?'' एक बार उन्होंने पूछा। ''वह हर समय चलता रहता है, माँ, लेकिन जब मुझे यहाँ सीखने के लिए आना होता है तो मैं उसे रद कर देता हूँ।''

''ऐसा कभी मत करना।'' उन्होंने हरिप्रसाद को डाँट लगाई, ''लक्ष्मी को कभी मत ठुकराना। आप फिल्म स्टुडियो में अपना काम समाप्त करने के बाद यहाँ आ सकते हैं, चाहे देर हो गई हो।''

यह हरिप्रसाद के लिए उपयुक्त स्थिति थी। वह स्टुडियो में अपना काम समाप्त करके उनके पास जाते और देर रात तक सीखना-सिखाना जारी रहता। अन्नपूर्णा देवी कहती हैं, ''रियाज के मामले में वह बहुत समर्पित,

प्रतिभाशाली और अनुशासित हैं और सबसे बढ़कर वह संगीत से प्रेम करते हैं।''

हरिप्रसाद की यह बहुत कठोर दिनचर्या थी। भोर में उठकर अकेले रियाज करना, जब तक कि सुबह छह बजे उनका तबला-वादक नहीं आ जाता था और फिर तबला के साथ लगभग एक घंटे रियाज करना। उसके बाद वह तैयार होकर नौ बजे तक स्टुडियो निकल जाते। जब वह रात को गुरु माँ के घर पहुँचते, वह सबक शुरू करने से पहले प्यार से उन्हें भोजन करातीं। वह जोर देकर कहतीं, ''आपको पहले खाना चाहिए। आप थके हैं और बाँसुरी बजाने के लिए ताकत की जरूरत है।'' वह एक सख्त शिक्षिका थीं और डाँट-फटकार पड़ती रहती थी, लेकिन हमेशा उनके पीछे नेक इरादे होते थे। एक बार जब उन्हें खाँसी थी, हरिप्रसाद उनके लिए एक कफ सीरप लाए। उन्होंने गुस्से में उसे अपने छठे फ्लोर के बरामदे से नीचे फेंक दिया और बोलीं, ''आप यहाँ लेने आते हैं, देने नहीं। इसलिए कभी फिर मेरे लिए कुछ लाने की कोशिश मत करना।'' उनका पक्ष लेते हुए हरिप्रसाद कहते हैं, ''लोगों ने हमेशा उनका गुस्सा देखा है, उनका प्यार नहीं। गुरु माँ नारियल की तरह हैं। बाहर से कठोर और अंदर से नरम।'' ऐसा लगता है कि उन्होंने यह मिजाज अपने पिता से पाया है, जिनके गुस्से की वजह से उनका अपना बेटा अली अकबर खाँ घर से भाग गया था। यह सवाल पूछे जाने पर अन्नपूर्णा देवी ने ईमानदारी से जवाब दिया, ''हाँ, भैया बाबा के गुस्से की वजह से भाग गए थे।''

पी.वी.कृष्णमूर्ति को भी याद है, जब बाबा अलाउद्दीन खाँ ए.आई.आर. कटक में अपने मइहर बैंड के साथ रिकॉर्डिंग कर रहे थे। अगर कोई संगीतकार कोई गलती करता तो वह सबसे पास पड़ी चीज उठाकर उसकी ओर फेंकते। संगीतकार कभी विरोध नहीं करता, क्योंकि उसके पीछे कोई दुर्भावना नहीं होती बल्कि सिर्फ यह सुनिश्चित करना होता कि वह गलती तुरंत सुधारी जाए।

अन्नपूर्णा देवी के एकांतप्रिय होने के बावजूद ऑटोमोबाइल के प्रेमी हरिप्रसाद ने उन्हें कार चलाना सिखा दिया!

''पंडितजी, आप अपने पिछले प्रशिक्षण और अन्नपूर्णाजी के सान्निध्य में अपनी तालीम में क्या फर्क महसूस करते हैं?'' मैंने उनसे पूछा।

''वही जो एक गिलास दूध में और माँ के दूध में होता है।'' उन्होंने कहा। उन्होंने गंभीरता से पूछा, ''सुरजीत बाबू, क्या आप मेरी भावना समझ गए?'' अन्नपूर्णा देवी के लिए उनकी श्रद्धा की शुद्धता और गहराई उनके स्वर से स्पष्ट थी। उनके लिए गुरु माँ गुरु, जिसकी उन्हें संगीत में उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए जरूरत थी और माँ, जिसे वह बचपन में खो चुके थे, का संयोग थीं। उनके लिए वह ज्ञान की देवी सरस्वती के अर्थों में भी माँ थीं।

मैंने अन्नपूर्णाजी से पूछा कि क्या उन्हें प्रशिक्षण के दौरान का कोई दिलचस्प वाकया याद है, जिसे वह इस पुस्तक के पाठकों के साथ बाँटना चाहेंगी? उन्होंने मुझे दो बताए—''मेरे पास एक पालतू कुत्ता मुन्ना था, जो संगीत का बहुत शौकीन था। एक बार हरिजी संगीत सीखने आए और जैसे ही मैं उन्हें सिखाने के लिए नीचे बैठी, मुन्ना भी मेरे पास चुपचाप बैठ गया। इससे पहले कि मैं सिखाना शुरू करती, हरिजी ने कहा, 'माँ, मैं चाहता हूँ कि आप मेरी बनाई हुई एक रचना सुनें।' और जैसे ही उन्होंने वह बजाना शुरू किया, मुन्ना भौंकने व दौड़ने लगा। मैंने हरिजी से कहा, 'कृपया इसे बंद कीजिए। मुन्ना को भी आपकी यह प्रस्तुति अच्छी नहीं लगी।'

''हरिजी में वादन के दौरान कूदने और बहुत हिलने-डुलने की आदत थी (अब भी है)। एक दिन, जब मैं उन्हें सिखा रही थी तो उन्होंने अपना वादन शुरू किया और साथ ही मटकना भी। मैं तानपुरा बजा रही थी और मुझे गुस्सा आ रहा था। अचानक मेरे दिमाग में यह विचार आया कि यह मटकना बंद करने के लिए मुझे उन्हें मारना चाहिए और कुछ सोचने से पहले ही तानपुरा मेरे हाथ से निकला और उनके सिर से लगकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। इससे पहले कि मैं समझ पाऊँ कि क्या हुआ, हरिजी श्रद्धा और शरारत की मिली-जुली अभिव्यक्ति के साथ

तानपुरा के टुकड़े मुझे थमा रहे थे, ईश्वर उन्हें खुश रखे!''

यह प्रसंग इस पुस्तक में हैं, यह तथ्य अपनी गुरु माँ के लिए हरिप्रसाद की श्रद्धा को दरशाता है। कोई दूसरा व्यक्ति इन्हें पांडुलिपि से हटवा देता, लेकिन हरिप्रसाद में अपनी गलतियों पर हँसने की क्षमता और गुरु माँ द्वारा कहे गए किसी भी शब्द को नकारने या खंडन करने की पूर्ण असमर्थता है।

यह परंपरा को छोड़ना था। शास्त्रीय गायक शास्त्रीय गायकों से और सितार-वादक सितार-वादकों से सीखते हैं, लेकिन इस मामले में एक सुरबहार वादिका एक बाँसुरी-वादक को सिखा रही थीं। जैसा कि गुरु माँ ने पहले ही चेतावनी दी थी, तालीम उनके द्वारा पहले सीखी गई हर चीज भूलने और नए सिरे से शुरू करने से शुरू हुई। वह राग भैरव सीखना चाहते थे, लेकिन चूँकि सुबह बहुत कम कॉन्सर्ट होते थे, उन्होंने राग यमन से शुरू किया, क्योंकि वह एक संपूर्ण राग भी है। आज भी जब वह कुछ सीखने के लिए उनके पास जाते हैं तो वह अब भी उसी राग के उनके ज्ञान में और वृद्धि कर देती हैं, इसलिए वह चालीस सालों से उसे सीख और सुधार रहे हैं। उन्होंने हरिप्रसाद को न केवल राग सिखाया बल्कि यह भी कि विभिन्न सरगमों, अलंकारों, मींडों और गमकों का अभ्यास कैसे करें। शुरुआत में उन्होंने उन्हें दो अलंकार दिए, जिन्होंने उनकी फेफड़ों की अद्भुत ताकत के बावजूद उनकी साँस उखाड़ दी। इससे उन्हें यह अहसास हो गया कि उन्हें अन्नपूर्णा देवी के स्थान तक पहुँचने के लिए कितना बड़ा संगीत का मैदान पार करना है।

आगे का प्रशिक्षण हर स्वर के असंख्य पहलुओं को पहचानने और उसी स्वर को विभिन्न रागों में प्रस्तुत करने की विभिन्न विधियों तथा हर स्वर का सौंदर्य उसके सूक्ष्म ध्वनि रूप में बाहर लाने के बारे में था। उन्होंने अपने घराने की विशेषता उन्हें सिखाई, राग की धीमी और व्यवस्थित प्रस्तुति। उन्होंने उन्हें संगीत की दूसरी पेचीदगियाँ भी सिखाईं, जैसे खाली जगहों का उपयोग, बिना कुछ कहे कुछ कहना और कुछ स्वरों को कुछ पलों तक इस्तेमाल न करना और फिर अचानक उन्हें श्रोताओं पर बौछारों की तरह डाल देना, सीमित सुरों के भीतर रहना और एक बार में अपने सभी पत्ते न खोलना। अंत में उन्होंने उन्हें सभी स्वर-प्रारूपों में से सबसे जटिल, मेरुखंड तान सिखाया, जिसे बजाना बहुत मेहनतवाला काम है और उसे सुनना बहुत दिलचस्प। वह ज्ञान का एक खजाना थी और उन्होंने उन्हें नियमित परफॉर्मर के लिए जरूरी चीजों से कहीं अधिक सिखाया। उन्होंने हरिप्रसाद को असाधारण बनाने के लिए प्रशिक्षित किया। उन्हें वह क्षमता दी कि संगीत के इतिहास में अपनी एक अमिट छाप छोड़ सकें, जो हरिप्रसाद ने बहुत भव्यता से किया है। संगीतविद् यूप बोर कहते हैं, ''हरिजी और जाकिर (हुसैन) जैसे लोगों ने संगीत को बदलकर रख दिया है। उन्होंने संगीत के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल दिया है।''

सेनिया-मइहर घराना मूल रूप से तारोंवाले वाद्य-यंत्रों का या तंत्रकारी घराना है, जिसमें आलाप और जोड़ की ध्रुपद शैली बहुत महत्त्वपूर्ण है। बाद में ये सभी तत्त्व हरिप्रसाद की वादन शैली में दिखने लगे। उन्हें अपनी कला को पूर्ण बनाने में पाँच या छह वर्षों का कठोर प्रशिक्षण लेना पड़ा। जब वह पहली बार अन्नपूर्णा देवी के पास गए थे तो पहले से एक अच्छे संगीतकार थे। अन्नपूर्णा देवी ने उन्हें पूर्ण संगीतकार बना दिया। उन्होंने शास्त्रीय और अर्द्धशास्त्रीय संगीत के सभी रूपों, जैसे भजन, ठुमरी, खयाल और यहाँ तक कि युगल गीतों में विविधता सिखाई। उन्होंने उन्हें दक्षिण भारतीय एवं उत्तर भारतीय वादन शैली और उनके ताल के बीच का अंतर बताया तथा अपने ताल उनके साथ विलीन करना सिखाया। जैसा कि हरिप्रसाद कहते हैं, ''संगीत में वह आपको इतना पक्का बना देती हैं कि आप बिना किसी समस्या के किसी के साथ भी बजा सकते हैं। मैं अपने अगले जीवन में भी उन्हीं को गुरु बनाना चाहूँगा, क्योंकि अभी उनसे सीखने के लिए बहुत कुछ बाकी है।'' इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अपने लंबे कैरियर में उन्होंने तबला और ड्रम से लेकर घटम, पखावज, मृदंगम और मध्य-पूर्वी वाद्य-

यंत्र बजाने वाले उत्तर और दक्षिण भारत व दुनिया के सभी भागों के लगभग 150 वादकों के साथ वादन किया है।

इस समय तक उनकी संगीतकारी फलने-फूलने लगी थी और एक निश्चित दिशा ग्रहण करने लगी थी। अपने संगीत के मुकाबले उनकी संपूर्ण विचार-प्रक्रिया में आमूल-चूल परिवर्तन आया। बाहरी अर्थों में इससे उनके संगीत में पहला बड़ा अंतर आलाप का ध्यान संबंधी पक्ष था। अपने आरंभिक दिनों में वह सिर्फ एक साधारण शुरुआत के साथ ही परफॉर्मेंस के लय पक्ष पर उतर जाते थे। एक लंबा आलाप करने के लिए अपेक्षित धैर्य का उनमें अभाव था और वह खुले तौर पर स्वीकार करते हैं, ''जब तक मैं उनके पास नहीं गया था, मुझे नहीं मालूम था कि आलाप क्या होता है।'' गुरु माँ ने एक विस्तृत धु्रपद अंग आलाप करने के लिए उनमें स्थिरता उत्पन्न की। इससे उनके कौशल की गुणवत्ता में बहुत वृद्धि हुई और अब वह दर्शकों और समय को देखते हुए किसी राग को बीस मिनट से दो घंटे तक बजा सकते थे। आलाप भाग के अंदर उनकी संपूर्ण प्रस्तुति में अगला बड़ा योग तंत्रकारी अंग जोड़ का था।

उनकी छात्रा और अपने आप में एक संगीतविद् कैथरीन पॉटर ने अपनी मास्टर्स थीसिस में लिखा, ''उन्होंने तकनीकों से अपनी बाँसुरी की अभिव्यक्ति क्षमता को भी बढ़ाया है, जिन्होंने उन्हें तंत्र वाद्यों की तरह लयबद्ध जोर और झाला की प्रस्तुति में समर्थ बनाया।'' चौरसिया कहते हैं कि ''राग की उनकी व्याख्या ध्रुपद गायन और बीन-धु्रपद के समान है, फिर भी इन शैलीगत विशेषताओं में अपनी व्यक्तिगत शैली डालने की उनकी क्षमता के कारण अनूठी है। स्थिर स्वरों के साथ बाँसुरी गायन के निकट है और चूँकि मैं अपने संगीत स्कूल की परंपरा का निर्वाह कर रहा हूँ, इसलिए मुझे स्ट्रोकों का भी इस्तेमाल करना है। मैं गायन और तंत्रों दोनों पर काम कर रहा हूँ। मैं वस्तुओं और अपनी कल्पनाओं दोनों का इस्तेमाल कर रहा हूँ। इसीलिए मेरी सोच एवं मेरा वादन और मेरा अनुसंधान कार्य गायन, तंत्रों एवं अन्य चीजों से जुड़ा है, इसलिए वह काफी अलग है।'' (हरिप्रसाद चौरसिया, व्यक्तिगत टिप्पणी)

यहाँ पर 'स्ट्रोक' शब्द का प्रयोग उल्लेखनीय है, क्योंकि हरिप्रसाद ने स्टेकॉटो का नया इस्तेमाल शुरू किया, खासकर जोड़ के भीतर और ताल वाद्यों के साथ दुरत लय में झाल हिस्सों में। उस समय के विंड इंस्ट्रूमेंट वादकों में, सिर्फ शहनाई-वादक ही स्टेकॉटो का प्रयोग करते थे और वह भी प्रस्तुति के अंत में दुरत लय में। बाँसुरी में उसने एक पूरा नया आयाम जोड़ दिया और अब दुनिया भर में गायन का एक स्वीकार्य घटक बन गया है। कैथरीन पॉटर की थीसिस में भी कहा गया है कि हालाँकि हरिप्रसाद ने अपनी व्यक्तिगत क्षमता में चीजों को अलग तरीके से करने की कोशिश की, उनकी गुरु उनके व्यक्तित्व को ध्यान में रखते हुए उनकी संगीत संबंधी वैयक्तिकता को बाहर लाईं। हालाँकि पन्नालाल घोष और हरिप्रसाद दोनों एक ही घराने के हैं, उनकी शैलीगत भिन्नता इस कारण है कि उन्हें उनके संगीत रुझानों के अनुरूप अलग-अलग तरीके से सिखाया गया। अन्नपूर्णा देवी के एक और शिष्य नित्यानंद हल्दीपुर भी इन दोनों से बिलकुल भिन्न हैं। व्यक्तिगत शैली विकसित करना इस घराने की विशिष्टता रही है, इसलिए रवि शंकर और निखिल बनर्जी दोनों के बाबा अलाउद्दीन के शिष्य होने के बावजूद उनकी शैली में कोई समानता नहीं है।

उन दिनों एक शास्त्रीय गायन की शैली में बाँसुरी-वादन का स्वीकार्य नियम था, जो विलंबित लय से शुरू होता था और लय संरचना के ढाँचे के भीतर राग को खोला जाता था। अपने वंशजों को हरिप्रसाद की सबसे महान् देन और नई चीज उनके द्वारा विकसित की गई प्रस्तुति का नया रूप है—आलाप के बिना शुरुआत, उसके बाद मध्य लय में जोड़ जो दुरत लय में समाप्त होता हो, उसके बाद ताल वाद्यों के साथ मध्य लय में संगीत रचना और अंत में दुरत लय में कभी-कभार अति दुरत लय में जाना। बाद में उन्होंने ताल-वादक के साथ एक सवाल-जवाब भी

जोड़ा। शिवकुमार शर्मा ठीक ही कहते हैं, ''हरिजी ने दुनिया को दिखला दिया कि बाँसुरी बजाने का एक बिलकुल भिन्न तरीका भी है। उस समय तक विलंबित लय में झूमरा ताल में बजाना बाँसुरी बजाने का एकमात्र तरीका माना जाता था।'' यहाँ पर यह बताया जा सकता है कि यह प्रारूप प्लक्ड स्ट्रिंग इंस्ट्रूमेंट यानी कि तंत्रकारी वाद्य वादकों द्वारा इस्तेमाल किया जा रहा था और सिर्फ बाँसुरी के संबंध में अनूठा व नया था। दर्शकों को प्रस्तुति का यह नया अंदाज पसंद आया। आलोचकों ने एक भारी बदलाव लानेवाले के रूप में उनकी सराहना की, लेकिन यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि संगीत समुदाय के कुछ वर्गों ने उन्हें उस विद्रोही की संज्ञा दी, जिसने स्थापित परफॉर्मेंस प्रारूप की शुद्धता को दूषित करने का दु:साहस किया।

उनके जीवन की दो सबसे महत्त्वपूर्ण महिलाओं ने भी इस संबंध में उनकी सबसे अधिक आलोचना की। अन्नपूर्णा देवी कहती हैं, ''हालाँकि हरिजी ने बहुत कामयाबी हासिल की है, मुझे लगता है कि वह और भी अधिक कर सकते थे। उनमें जो ईश्वरप्रदत्त प्रतिभा है, अगर वह उस पर मेहनत करते तो अपने दिव्य संगीत से लोगों को रुला सकते थे।'' उनकी पत्नी अनुराधा कहती हैं, ''वह जैसा भी वादन करते हैं, वह गुरु माँ की बदौलत है। उन्होंने उन्हें इतना अधिक ज्ञान दिया है कि वह दूसरे बड़े गुलाम अली खाँ या आमिर खाँ बन सकते थे।'' अन्नपूर्णा और अनुराधा की तरह बहुत से लोग यह मानते हैं कि वह बड़े गुलाम अली या आमिर खाँ या ओंकारनाथ ठाकुर से थोड़ा कम रह गए, लेकिन सच्चाई यह है कि जबकि वे उन्हें किसी के जैसा बनाना चाहते थे, लेकिन वह हरिप्रसाद चौरसिया के रूप में अपनी पहचान बनाकर संतुष्ट थे। उन्हें बाजार के अनुकूल कहें या बस भाग्यशाली, लेकिन उन्होंने जो प्रारूप विकसित किया, वह उनका वैश्विक रूप से स्वीकार्य ट्रेडमार्क बन गया और बड़े गुलाम अली बनने की चाहतवाले हर गायक के साथ हर बाँसुरी-वादक चौरसिया बनना चाहता है। दुनिया के बहुत से बाँसुरी-वादक किसी अन्य बाँसुरी-वादक की बजाय उनका अनुकरण करते हैं।

और हाँ, उन्होंने अपने संगीत से लोगों को रोने के लिए मजबूर किया है। मास्को में उन्होंने जर्मन राजनयिकों को रुला दिया ('चौरसिया इंटरनेशनल' अध्याय देखें) और दुबई में राग सिंधु भैरवी की उनकी प्रस्तुति इतनी हृदयस्पर्शी थी कि एक स्थानीय मुसलमान महिला ने अपने आँसू पोंछने के लिए चेहरे से नकाब उठा दिया। लोगों को सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि वह बाँसुरी को तंत्र वाद्यों की तरह बजाते थे और उसमें गायन का कोई तत्त्व नहीं होता था, लेकिन सन् 1977 में रिलीज हुए उनके एलबम 'ठुमरियाँ वॉल्यूम-2' में गायन शैली की ठुमरियाँ हैं, जिन्होंने गायकी अंग की उनकी प्रवीणता के बारे में लोगों की सभी आशंकाओं को समाप्त कर दिया। इंसब्रुक में हुए एक कॉन्सर्ट में जाकिर हुसैन तबला पर हरिप्रसाद को संगत दे रहे थे। पहली प्रस्तुति के बाद चाय अवकाश घोषित किया गया, जिसके दौरान एक आयोजक उनके पास आया और कहा, ''आपने शुरुआत में जो बजाया, कृपया वही बजाएँ। हम सिर्फ ध्यान आधारित संगीत चाहते हैं, ड्रम नहीं।'' वह आलाप की ओर संकेत कर रहा था। वह चाहता था कि हरिप्रसाद अंत तक उसी को जारी रखें, क्योंकि दर्शकों को वह ध्यान आधारित लगा था। उस प्रस्तुति के उत्तरार्द्ध में जाकिर ने तबले की जगह तानपुरा बजाया, जबकि हरिप्रसाद ने सिर्फ आलाप बजाया।

उनकी बाँसुरी की पसंद भी सराहनीय है। वह शास्त्रीय कंसर्टों के लिए 'एफ' स्केल की बाँसुरी बजाया करते थे, लेकिन बाद में उसे बदलकर 'ई' कर दिया। कुछ संगीतविदों के मत में यह पिच का बहुत सही चयन है, क्योंकि ऊँची पिच काफी देहाती लगती है, जबकि नीची काफी गंभीर होती है और वाद्य का लोकगीत प्रभाव खत्म कर देती है। 'ई' स्केल कॉन्सर्ट बाँसुरी के देहाती और परिष्कृत पहलुओं के बीच का आदर्श संतुलन है।

आलोचना के बावजूद '70 के दशक के आरंभ से हरिप्रसाद का शास्त्रीय रूप बहुत प्रभावशाली था। उनकी अनूठी संगीत प्रस्तुति का वैश्विक आकर्षण था। उनके हाथों में बाँसुरी राग के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अर्थों के साथ जीवंत

हो जाती थी। हर पद के साथ एक अमूल्य रत्न, त्रुटिहीन और अत्यंत परिष्कृत, बाँसुरी ऐसी आवाज के साथ गाती थी जैसा पहले कभी नहीं सुना गया था।

एक मराठी लेखक देशपांडे ने एक बार टिप्पणी की, ''अगर आज भगवान् कृष्ण धरती पर होते तो हम उनकी पूजा करते, लेकिन सुनते सिर्फ हरिप्रसाद की बाँसुरी।'' जब वह बाँसुरी को अपने होंठों पर रखते तो वह पूरे अधिकार से उसे बजाते और ऐसे रियाज करते, मानो उसका उन्माद हो। बहुलता, सक्षमता, गरिमा और उत्कृष्टता उनके कंसर्टों की खासियत थी। वह कभी अपने दर्शकों को रोमांचित करने से नहीं चूकते थे, चाहे उनकी संगीत या सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो। बड़े रागों की उनकी प्रस्तुति काफी विद्वत्तापूर्ण हो सकती है। ठुमरी और धुन जैसे हलके रूपों पर उनका अधिकार अतुलनीय है, जो शायद वर्षों तक फिल्मों और नृत्य-नाटिकाओं में वादन करने का नतीजा है। वह अपने संगीत में इन रूपों की विशेषता और शृंगार रस को प्रस्तुत करने में सक्षम होते हैं, जैसा कोई दूसरा नहीं कर पाता। एक और नया प्रयोग उन्होंने यह किया कि उन्होंने दो बाँसुरियों का एक ही पिच पर, लेकिन भिन्न सप्तकों में प्रयोग किया। दूसरी ऊँची पिचवाली बाँसुरी पहाड़ों और घाटियों के ग्रामीण दृश्यों को प्रस्तुत करने में मदद करती है। फलस्वरूप राग पहाड़ी में उनकी धुन उनका संगीत हस्ताक्षर बन गया है और अधिकांश कंसर्टों का एक अनिवार्य 'टेलपीस' बन गया है।

जिन महत्त्वपूर्ण लोगों ने उनकी ओर ध्यान दिया, उनमें प्रमुख फिल्म निर्माता श्याम बेनेगल थे, जो हरिप्रसाद को 'बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध का महानतम संगीतकार' मानते हैं। सन् 1972 में उन्होंने 'द श्रुति एंड द ग्रेसेज इन इंडियन म्यूजिक' नामक एक तेरह मिनट की डॉक्यूमेंट्री निर्देशित की। उसे गोविंद निहलानी ने शूट किया था, जिसके लेखक और प्रस्तोता ऑल इंडिया रेडियो के महानिदेशक व संगीतविद् नारायण मेनन थे। यह फिल्म एलिफैंटा द्वीप पर बाँसुरी बजाते हरिप्रसाद के आस-पास घूमती है। नारायण मेनन श्रुति, मींद और गमक की अवधारणा समझाते हैं, जिसे हरिप्रसाद बाँसुरी पर बजाते हैं।

उस्ताद अल्लारक्खा खाँ के साथ।

श्याम बेनेगल और हरिप्रसाद के पुत्र राजीव ने भी हरिप्रसाद के 60वें जन्मदिन के अवसर पर एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म बनाई। मुंबई के नेहरू केंद्र में आयोजित उत्सव में बड़ी संख्या में संगीतकार और अन्य प्रतिष्ठित लोग शामिल हुए। अपने विनोदप्रिय अंदाज में हरिप्रसाद ने उसे अपनी पत्नी द्वारा उनकी उम्र लोगों के सामने लाने का जान-बूझकर किया गया प्रयास बताया। उन्होंने मजाकिया लहजे में कहा, ''जो युवा महिलाएँ मेरा साथ चाहती थीं, वे अब कहीं और कोशिश करेंगी।''

हरिप्रसाद धीरे-धीरे लेकिन ठोस रूप से देश के सभी बड़े उत्सवों में एक महत्त्वपूर्ण शख्सियत बन गए थे। '70 के दशक की शुरुआत में हरिप्रसाद ने ईरान के शाह के निमंत्रण पर तेहरान के शिराज फेस्टिवल में वादन किया।

उनकी ख्याति और कॉन्सर्ट प्रतिबद्धताएँ बड़े शहरों से इच्छलकारनजी जैसे सुदूर इलाकों तक फैलीं, जिसका नाम अधिकांश भारतीयों ने सुना भी नहीं होगा। वह और जाकिर हुसैन ऐसे गाँवों में गए हैं, जहाँ बिजली नहीं थी। लालटेनों और पेट्रोमैक्सों की रोशनी में कामचलाऊ मंचों पर मक्खियों व मच्छरों को उड़ाते हुए वादन करनेवाले हरिप्रसाद ने किसी भी कॉन्सर्ट के लिए मना नहीं किया, चाहे उसके आयोजक उन्हें कितना भी कम भुगतान कर

सकते हों। वह अपने संगीत से प्यार करते थे और वादन करने का हर अवसर उनके लिए रोमांचक था। कई अवसरों पर आयोजक कॉन्सर्ट के बाद उन्हें भुगतान किए बिना भाग जाते थे। वह उन दिनों को याद करते हँसते हुए कहते हैं, ''उसका भी एक अलग मजा था।'' उन दिनों के बारे में जाकिर हुसैन की राय यह है कि ''हरिजी इस दुनिया के सबसे अधिक मेहनत करनेवाले शास्त्रीय संगीतकार हैं, जो कभी-कभार महीने में 30 शो करते थे। मैंने उन्हें कोलकाता में वादन करके मुंबई की उड़ान भरते, सीधे किसी एल.पी. रिकॉर्डिंग के लिए जाते, ब्रेक के दौरान एक और रिकॉर्डिंग के लिए ए.आई.आर.जाते, फिर वापस एल.पी. रिकॉर्डिंग के लिए जाते और नेहरू केंद्र में एक कॉन्सर्ट के साथ दिन खत्म करते देखा है। मुझे याद है कि हरिजी और मैंने 24 घंटे में चार अलग-अलग शहरों में चार परफॉर्मेंस दिए थे—रात को लातूर में, सुबह हुबली में, दोपहर धारवाड़ में और रात को बेलगाँव में।''

व्यस्त यात्राओं, ख्याति और पैसे ने उनके लिए बहुत सी मुसीबतें व खतरे भी पैदा किए। कई बार हरिप्रसाद मौत के मुँह में जाते-जाते बचे हैं। हरवल्लभ फेस्टिवल से वापसी के सफरवाली दुर्घटना जैसी कई दुर्घटनाएँ हुईं। एक बार हरिप्रसाद और उस्ताद अल्लारक्खा की झाँसी में एक परफॉर्मेंस के लिए बंबई से दिल्ली की उड़ान थी। उड़ान भरने के लगभग 45 मिनट बाद विमान एक इंजन की खराबी से एक ओर झुक गया। यात्री घबराने लगे, लेकिन कुछ देर के लिए कोई घोषणा नहीं हुई। जब कैप्टन ने पी.ए. सिस्टम पर घोषणा की तो लोग चिल्ला और रो रहे थे। उसने घोषणा की, ''हम इंजन की खराबी की वजह से बंबई वापस लौट रहे हैं।'' उस्ताद अल्लारक्खा सदमे की हालत में थे। हरिप्रसाद को भी लगा कि यह उनका आखिरी दिन है, लेकिन उन्हें अपना दिमाग शांत रखना था और उस्ताद अल्लारक्खा के आगे अपना तनाव नहीं दिखाना था। खुशकिस्मती से विमान बंबई उतरने में सफल रहा। चूँकि वहाँ उनके आने की कोई उम्मीद नहीं थी, वे टैक्सी करके हरिप्रसाद के घर पहुँचे, जहाँ अल्लारक्खा साहब ने थोड़ा आराम किया, चाय ली, कुछ नमकीन खाया और फिर उनकी हालत सँभली। जब उन्होंने अल्लारक्खा साहब की पत्नी, जिन्हें प्यार से हरिप्रसाद की पीढ़ी में सब लोग 'अम्माजी' कहते हैं, को फोन किया तो वह भी घबरा गईं। वह हरिप्रसाद के घर से उन्हें लेने आईं और अल्लाह का शुक्रिया अदा करने तथा गरीबों को नियाज बाँटने के लिए सीधे बंबई के माहिम में स्थित एक मसजिद में ले गईं।

एक और अवसर पर हरिप्रसाद एवं उनके साथी मेरठ से हरिद्वार जा रहे थे। वह कार्यक्रम शाम को छह बजे होना था, इसलिए उन्हें डेढ़ घंटे में वहाँ पहुँचना था, लगभग एक घंटे की ड्राइव बची थी। पास से गुजरते एक ट्रक ने एक बड़े पत्थर को ठोकर मारी, जो उड़कर उन्हें आ लगा और उनकी एंबेसडर टैक्सी की विंडशील्ड चकनाचूर कर दी। खुशकिस्मती से किसी को चोट नहीं आई, लेकिन विंडशील्ड के सिरों से खतरनाक तरीके से लटके शीशों के टुकड़ों के साथ ड्राइवर आगे ड्राइव करने में हिचकिचा रहा था। चूँकि बहुत कम समय बचा था, हरिप्रसाद के छात्र अतुल शर्मा ने आगे गाड़ी चलाने का प्रस्ताव दिया। एक बड़ा ट्रक तेजी से आ रहा था और उससे अतुल घबरा गया। वह कार का नियंत्रण खो बैठा, जो सड़क से पंद्रह फीट दूर जाकर एक पेड़ से टकराई। फिर से किसी को चोट नहीं आई। केवल छोटी-मोटी खरोंचें आईं। कार्यक्रम स्थल तक पहुँचने में विलंब हो चुका था और कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद आयोजकों ने श्रोताओं के सामने घोषणा कर दी थी कि कलाकारों की कोई सूचना न होने की वजह से कार्यक्रम रद कर दिया गया है। जब हरिप्रसाद पहुँचे तो उन्होंने श्रोताओं को ऑडिटोरियम से निकलते हुए देखा। उनमें से कई ने उन्हें पहचान लिया और हरिप्रसाद ने उनसे अनुरोध किया कि वे उन्हें मुँह-हाथ धोने और शो शुरू करने के लिए थोड़ा समय दें। परफॉर्मेंस अच्छा गया। हॉल में कई साधु थे, जिन्हें हरिप्रसाद को हुए खतरनाक अनुभव के बारे में पता चला। शो के बाद वे हरिप्रसाद के पास गए और कहा, ''आपको ऐसे पवित्र स्थान पर अपना बाँसुरी-वादन करना था, इसलिए आप बच गए, अन्यथा यह दुर्घटना जानलेवा हो सकती थी।''

नवंबर 2006 में वह पुणे के निकट एमबी वैली में एक कार्यक्रम में परफॉर्म कर रहे थे। किसी से बात करते समय वह वहाँ की एक ढलान पर फिसल गए और उनकी पीठ में चोट लग गई। उन्हें देर रात एक स्थानीय अस्पताल ले जाया गया, लेकिन चेकअप में कुछ नहीं निकला। कुछ सप्ताह बाद इटली की यात्रा पर उन्हें फिर से परेशानी और चक्कर महसूस हुए। रोम में उनके सभी परीक्षण हुए, लेकिन कुछ नहीं निकला। जब वह अमेरिका में थे तो यह परेशानी फिर से सामने आई और वहाँ तीसरी बार उनके सारे परीक्षण हुए, लेकिन नतीजा कुछ नहीं निकला। यह समस्या समय-समय पर उभरती है, लेकिन कोई वास्तविक हल न होने के कारण वह इसे अनदेखा करके आगे बढ़ जाते हैं।

ग्रामोफोन कंपनी ऑफ इंडिया, जिसने शुरुआत में उनके शास्त्रीय संगीत को रिकॉर्ड करने से इनकार कर दिया था, क्योंकि उन्हें लगा था कि वह रिकॉर्ड नहीं बिकेगा, ने राग मारवा की एक रिकॉर्डिंग के साथ शुरुआत की और कई दशकों से साल में कम-से-कम एक बार उनका एक एलबम निकालने की प्रक्रिया जारी रखी। कंपनी के एचएमवी लेबल के अलावा उन्होंने भारत के दूसरे उभरते लेबलों, जैसे टी-सीरीज और पश्चिम में निंबस और नवरस के लिए भी रिकॉर्डिंग की।

रागों की विविध रेंज के अलावा उन्होंने कई अर्द्ध-शास्त्रीय, विषय आधारित या फ्यूजन एलबम निकाले। अत्यंत कामयाब 'कॉल ऑफ द वैली' के बाद उन्होंने युवाओं में शास्त्रीय संगीत की समझ पैदा करने के उद्देश्य से ऐसा ही बहुत सारा संगीत रचा। उनमें उल्लेखनीय हैं, अमरीश जे. लीब के साथ 'नाउ', जो रजनीश धाम में रिकॉर्ड की गई और उसमें हरिप्रसाद ने घंटियों व झंकारों की संगत पर ऊँचे सुर में बाँसुरी बजाई है। इसमें लगभग कोई तालध्वनि नहीं है, लुइस बैंक्स, शिवमणि और अन्य के साथ 'बियोंड बैरियर्स' की। युवाओं को ध्यान में रखते हुए सेंट जेवियर्स कॉलेज, कोलकाता में एक कॉन्सर्ट आयोजित किया गया, फिर प्रसिद्ध दक्षिण भारतीय संगीतकार इलैयाराजा (जिनका नाम पहले ज्ञानदेसिकन रसैया था) द्वारा एक एलबम 'नथिंग बट विंड' आया। हरिप्रसाद को ध्यान में रखते हुए इस एलबम में उन्होंने एक पश्चिमी शास्त्रीय बाँसुरी की टोनलिटी के साथ बाँसुरी बजाई और उसे स्ट्रिंग सेक्शन के साथ मिश्रित किया, खासकर 'कंपोजर्स ब्रेथ' और 'सांग ऑफ सोल' जैसी धुनों पर। 'म्यूजिक फॉर रेकी' एक और असाधारण एलबम है, जहाँ हरिप्रसाद ने सोलो वादन के 28 तीन मिनट के टुकड़े बजाए हैं, जिसके बाद रेकी उपचार सत्रों के लिए घंटी की ध्वनि आती है।

शास्त्रीय संगीत के श्रोताओं की एक नई पीढ़ी तैयार करने की उनकी इच्छा के कारण वह स्पिकमैके (Spicmacay सोसाइटी फॉर द प्रमोशन ऑफ इंडियन क्लासिकल म्यूजिक एंड कल्चर अमांग यूथ) नामक एक संगठन के साथ सक्रिय रूप से जुड़े। इस संगठन के तत्त्वावधान में उन्होंने देश भर में स्कूलों और कॉलेजों में बाँसुरी-वादन किया है—आमतौर पर सिर्फ टोकन शुल्क या स्पिकमैके अधिकारियों के अनुसार 'दक्षिणा' लेकर।

पश्चिमी संगीतकारों के साथ फ्यूजन के उनके प्रयासों पर 'चौरसिया इंटरनेशनल' शीर्षक अध्याय में चर्चा की गई है। भारत में उनके कुछ प्रायोगिक कार्यों में 'हियर', 'एटरनिटी', 'मैजिक कार्पेट' और 'म्यूजिक ऑफ द रिवर्स' हैं। उन्होंने भक्ति संगीत की सी.डी. का एक सेट भी रिलीज किया, जिनमें विभिन्न कलाकारों ने गायन किया है और उन्होंने संगीत रचना की है तथा बाँसुरी बजाई है।

अगर उन्होंने जितनी धुनें रिकॉर्ड की हैं, उन सबको साथ लाया जाए, चाहे वह फिल्म संगीत हो, रेडियो संगीत, भक्ति संगीत, फ्यूजन संगीत या भारतीय शास्त्रीय संगीत, तो वह हर तरह से दुनिया के सबसे अधिक रिकॉर्ड किए जानेवाले बाँसुरी-वादक हैं।

हरिप्रसाद के संगीत का एक और महत्त्वपूर्ण पक्ष किसी भी संगीतकार के साथ जुगलबंदी करने की उनकी क्षमता

है। सन् 1959 में भुवनेश्वर मिश्रा के साथ बाँसुरी और वायलिन जुगलबंदी से शुरू करते हुए उन्होंने पद्मभूषण पं. वी.जी. जोग के साथ भी जुगलबंदी की है और उनकी रिकॉर्डिंग राग काफी की एक उम्दा रिकॉर्डिंग मानी जाती है। उनके स्थायी जुगलबंदी साथी संतूर वादक शिवकुमार शर्मा हैं, जिनके साथ उन्होंने दुनिया भर की यात्रा की है और बहुत से एलबम भी किए हैं। उन्होंने पहली बार शास्त्रीय गायकों के साथ युगल संगीत रिकॉर्ड किए। जिन गायकों के साथ उन्होंने रिकॉर्ड किया है, उनमें प्रमुख हैं किशोरी अमोनकर, बालमुरलीकृष्ण और पं. जसराज, जो कहते हैं, ''मुझे हरिप्रसाद के साथ गाना सबसे सुविधाजनक लगता है, क्योंकि वह काफी सामंजस्य करते हैं। जब वह मेरे साथ बजाते हैं, मुझे कोई चिंता नहीं होती। वह सब सँभाल लेते हैं।''

वादन के शुरुआती दिनों से ही उन्होंने दक्षिण भारतीय या कर्नाटक संगीतकारों के साथ युगल प्रस्तुति दी है, खासकर प्रसिद्ध बाँसुरी-वादक डॉ.एन.रमणी और बहुत से वायलिनवादकों जैसे लालगुडी जयराम, एम.एस.गोपालकृष्णन और टी.एन. कृष्णन। स्वर-संगति और स्थायी स्वर बजाने की बाँसुरी की अंतर्निहित विशेषता को ध्यान में रखते हुए हरिप्रसाद ने बुद्धिमत्ता दिखाते हुए बोइंग स्ट्रिंग वाद्यों के साथ वादन किया है और प्लक्ड स्ट्रिंग वाद्यों, जैसे सितार और सरोद के साथ जुगलबंदी से दूर रहे, जबकि उनका घराना मूल रूप से एक स्ट्रिंग वाद्य घराना है, जिसने वास्तव में कई महान् सरोद और सितारवादक उत्पन्न किए हैं। उन्हें इस बात का श्रेय दिया जा सकता है कि उन्होंने किशोरी अमोनकर के साथ बी फ्लैट में और पंडित जसराज के साथ डी में बजाया है, जबकि वह आम तौर पर ई-स्केल की ही बाँसुरी बजाते हैं।

भारत के लगभग सभी बड़े संगीतकारों ने नए राग बनाए हैं और हरिप्रसाद कोई अपवाद नहीं हैं। इनमें पहला है प्रभातेश्वरी, जो राग अहीर भैरव और राग बागश्री का एक मिश्रण है। ग्रामोफोन कंपनी ऑफ इंडिया में जी. एन. जोशी और अन्य ने उनका राग मारवा रिकॉर्ड किया था, लेकिन वे दूसरे एलबम के लिए कुछ असाधारण ढूँढ़ रहे थे। हरिप्रसाद ने कई महीनों तक इस बारे में सोचा और प्रभातेश्वरी के साथ आए। इस नाम का प्रभातवाला हिस्सा अहीर भैरव से आया है, जो एक प्रभातकालीन राग है, जबकि नाम का दूसरा हिस्सा बागश्री से आया है। हरिप्रसाद ऐसा राग बनाना चाहते थे, जिसमें सुबह और संध्या दोनों के राग हों, ताकि उसे किसी भी समय बजाया जा सके। यह विचार उनके दिमाग में तब आया, जब उन्होंने ध्यान दिया कि ऑल इंडिया रेडियो पर कई नए उद्घोषकों को किसी खास राग के खास समय के बारे में कोई जानकारी नहीं थी और वे किसी भी समय कोई भी राग बजा देते थे। उन्हें लगा, यह राग किसी भी समय बजाया जा सकता है और उद्घोषक भी गलत नहीं होगा। सपाट दूसरे, तीसरे और सातवें स्वरों के साथ यह राग ऊपर की ओर जाते हुए दूसरे और पाँचवें को छोड़ देता है तथा नीचे की ओर जाते हुए सभी सात स्वरों का इस्तेमाल करता है।

उन्होंने जो दूसरा राग बनाया, वह कई वर्षों बाद प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या के बाद आया। हरिप्रसाद उनके बड़े प्रशंसक थे और गांधी परिवार से उन्हें काफी इज्जत मिली थी।

एक बार जब वह यूरोप के दौरे पर थे तो उन्हें भारतीय दूतावास द्वारा अपने होटल के कमरे में रहने की बात कही गई, क्योंकि 'मैडम' उनसे बात करना चाहती हैं। उनके सचिव ने उनसे बात की और पूछा कि क्या वह उनके, राष्ट्रपति जैल सिंह और उनके अतिथियों के लिए तीनमूर्ति भवन पर बाँसुरी-वादन करने के लिए एक दिन के लिए भारत आ सकते हैं? हरिप्रसाद इस निमंत्रण पर बहुत खुश थे। दूतावास ने उन्हें लंदन से आने-जाने का टिकट दिया और राजीव गांधी खुद उन्हें लेने विमान तक पहुँचे और उनके नई दिल्ली पहुँचने पर उनका स्वागत करने के लिए खड़े थे। उन्होंने हरिप्रसाद को उनके होटल में छोड़ा और फिर शाम पाँच बजे परफॉर्मेंस के लिए उन्हें लेने आए। हरिप्रसाद को याद है कि साउंड सिस्टम बहुत अच्छा था, क्योंकि उस उपकरण के लिए राजीव गांधी द्वारा

विशिष्ट निर्देश दिए गए थे, तबले पर संगत के लिए उन्होंने जाकिर हुसैन को बुलाया था।

इंदिरा गांधी की हत्या उनके लिए एक बड़े सदमे की तरह आई। उन्हें उस सदमे से बाहर आने में बारह दिन लगे। इस अवधि में उन्होंने राग इंदिरा कल्याण की रचना की, जिसे उन्होंने इंदिराजी को समर्पित किया। 'मुझे लगा अनर्थ हो गया' उनकी संगीतमय प्रस्तुति थी। यह एक संपूर्ण राग है, जिसमें दूसरा और सातवाँ स्वर सपाट है और तेज चौथा (तीव्र मद्धिम) या जिसे जाजमे 'फ्लैट फिफ्थ' कहते हैं। एच.एम.वी. लेबल में जारी इस रिकॉर्डिंग में उन्होंने पहली और आखिरी बार उस राग को प्रस्तुत किया।

उनके द्वारा निर्मित किसी अन्य को समर्पित एक और राग शिवांजलि है। यह 'शिव' और 'अंजलि' शब्दों का संयोजन है। शिव का अर्थ शिवकुमार शर्मा से है, जिनसे हरिप्रसाद बहुत जुड़े हुए हैं, अंजलि का अर्थ है भेंट। इसलिए यह राग शिवकुमार शर्मा को उनका उपहार है। यह राग जर्मनी की यात्रा पर बनाया गया और स्टुटगार्ट में शिवकुमार शर्मा की उपस्थिति में इसे प्रस्तुत किया गया। हरिप्रसाद ने सिर्फ आलाप भाग प्रस्तुत किया और फिर राग ललित पर चले गए, जिससे लोगों को न लगा कि उन्हें परंपरागत राग नहीं आते। शिवांजलि राग भी स्टुटगार्ट के उस कॉन्सर्ट में उन्होंने पहली और आखिरी बार प्रस्तुत किया।

उन्होंने दो रागों को मिश्रित करते हुए एक और राग कलारंजनी भी बनाया है। ये दोनों प्रसिद्ध संध्या रागों कलावती और शिवरंजनी को मिलाकर बनाया गया है। दोनों की संरचना पंचस्वरों की है, जबकि कलावती में एक सहज तीसरा स्वर है, शिवरंजनी में सपाट तीसरा है और किसी भी राग में चौथा स्वर इस्तेमाल नहीं होता। इसके फलस्वरूप बननेवाला राग एक दिलचस्प मिश्रण है, जो नीचे की ओर जाते हुए दोनों सहज और सपाट प्रकार का तीसरा स्वर प्रयोग में लाता है, जिससे उसमें जाज तरह का अहसास आता है। आश्चर्य की बात नहीं है कि यह राग उनके 'आदि अनंत' परियोजना में इस्तेमाल हुआ है, जिसकी चर्चा हमने आगे 'चौरसिया इंटरनेशनल' अध्याय में की है।

इंदिरा गांधी तथा राजीव गांधी के साथ।

राग हरिप्रिया वह स्केल है, जो एक दिन रियाज करते समय उन्हें सूझा। उन्होंने उसे 'हरिप्रिया' नाम इसलिए दिया, क्योंकि वह कहते हैं कि वह हरि (हरिप्रसाद) को प्रिय है। वह राग दक्षिण भारतीय संगीत की ओर झुका हुआ है और तीसरे स्वर छोड़कर सहज व तेज दोनों प्रकार का चौथा स्वर और सपाट सातवाँ स्वर इस्तेमाल होता है। उत्तर या दक्षिण भारतीय संगीत में प्रचलित रागों में इसका कोई जोड़ नहीं है।

उन्होंने जो राग बनाए हैं, उनमें सबसे जटिल राग मनरंजनी है। ''मनरंजनी वह है, जो मन को रंजित करता है।'' हरिप्रसाद कहते हैं। यह एक स्वतंत्र राग है, जिसमें विभिन्न रागों के तत्त्व हैं और अन्य रागों की तरह उन्होंने उसे कभी मंच पर नियमित रूप से प्रस्तुत नहीं किया है। वह सिर्फ रिकॉर्ड पर मौजूद है।

इनमें से कोई राग उनकी मंच प्रस्तुति का नियमित हिस्सा नहीं है और मूल रूप से सिर्फ शैक्षिक महत्त्व के हैं। हरिप्रसाद खुद इससे सहमत हैं, जब वह कहते हैं, ''बहुत सारे परंपरागत राग हैं, जो इतने खूबसूरत हैं कि हमें इन नए रागों पर अधिक समय खर्च करने की जरूरत नहीं है। ये वे प्रयोग हैं, जो हम यात्रा पर या रियाज करते समय करते हैं।''

यदि पुरस्कार, प्रशंसा, सराहना और समीक्षाएँ किसी के कलात्मक महत्त्व का पैमाना हैं तो हरिप्रसाद ने निश्चित रूप से बढ़िया प्रदर्शन किया है। इलाहाबाद रेडियो स्टेशन के लिए पहली बार वादन करने पर स्थानीय समाचार-पत्र में सामान्य उल्लेख से लेकर देश के दूसरे सर्वोच्च नागरिक सम्मान—पद्मविभूषण पाने तक हरिप्रसाद ने सबकुछ प्राप्त किया है। राष्ट्रीय पुरस्कार, राज्य पुरस्कार, फिल्म संगीत के लिए पुरस्कार और असंख्य स्मरण-चिह्न (मोमेंटो)। जगह के अभाव में घर से उन्हें गुरुकुल ले जाया गया। आज उनके पास दो विशाल शीशे की अलमारियाँ हैं, जो बहुत ऊँची हैं और गुरुकुल के बेसमेंट के कॉन्सर्ट हॉल की दीवारों पर सजी हैं। नए पुरस्कार एक कोने में एक मेज पर रखे गए हैं, जब तक कि उनके लिए एक उपयुक्त स्थान न मिल जाए। बाकी पुरस्कारों के प्रति सम्मान कम न करते हुए उन्हें मिले कुछ बड़े पुरस्कार निम्नलिखित हैं—

North Orissa University

BARIPADA

North Orissa University

ଉତ୍ତର ଓଡ଼ିଶା ବିଶ୍ୱବିଦ୍ୟାଳୟ

This is to certify that
the degree of
DOCTOR OF LITERATURE (Honoris Causa)
was conferred this 14th day of September, 2009
on
Pandit Hariprasad Chaurasia
in recognition of his contribution to
Classical Music and Instruments.

ଅଦ୍ୟ ୨୦୦୯ ମସିହା ସେପ୍ଟେମ୍ବର ୧୪ ତାରିଖରେ
ପଣ୍ଡିତ ହରିପ୍ରସାଦ ଚୌରାସିଆଙ୍କୁ
ଶାସ୍ତ୍ରୀୟ ସଙ୍ଗୀତ ଓ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର କ୍ଷେତ୍ରରେ
ଉଲ୍ଲେଖନୀୟ ଅବଦାନର ସ୍ୱୀକୃତି ସ୍ୱରୂପ
ସମ୍ମାନସୂଚକ କଳା-ପରମ-ଭୂଷଣ
ଉପାଧି ପ୍ରଦତ୍ତ ହେଲା ।

NORTH ORISSA UNIVERSITY
SRIRAM CHANDRA VIHAR
TAKATPUR, BARIPADA
September 14, 2009

Vice-Chancellor

ଉତ୍ତର ଓଡ଼ିଶା ବିଶ୍ୱବିଦ୍ୟାଳୟ
ଶ୍ରୀରାମ ଚନ୍ଦ୍ର ବିହାର
ତକତପୁର, ବାରିପଦା
୧୪|୦୯|୨୦୦୯
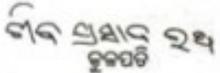
République Française

LA MINISTRE DE LA CULTURE ET DE LA COMMUNICATION

nomme par arrêté de ce jour

Monsieur Pandit Hariprasad CHAURASIA

CHEVALIER DE L'ORDRE DES ARTS ET DES LETTRES

Fait à Paris, le 31 mars 2009

Christine ALBANEL
Ministre de la Culture et de la Communication

फ्रांस सरकार से सम्मानित होने के अवसर पर प्रदत्त प्रशस्ति-पत्र।

संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार—1984
महाराष्ट्र गौरव पुरस्कार—1990
पद्मभूषण—1992
कोणार्क सम्मान—1992
यश भारती सम्मान—1994
कालिदास सम्मान—1999
पद्मविभूषण—2000
उस्ताद हाफिज अली खाँ पुरस्कार—2002
मास्टर दीनानाथ मंगेशकर पुरस्कार—2004

❑

चौरसिया इंटरनेशनल

गुरबचन सिंह सचदेव जैसे बाँसुरी-वादकों द्वारा प्राप्त महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का महत्त्व कम किए बिना यह सहजता से कहा जा सकता है कि बाँसुरी को अंतरराष्ट्रीय रूप से स्वीकार्य और पसंदीदा वाद्य का दर्जा दिलाने का श्रेय हरिप्रसाद चौरसिया को जाता है। संक्षेप में, उन्होंने बाँसुरी का अंतरराष्ट्रीयकरण किया है। दूसरे बाँसुरी-वादकों की तुलना में दुनिया भर में उपलब्ध उनकी रिकॉर्डिंग की मात्रा और जितने देशों में उनकी सी.डी. बनी है, वह उस दर्जे और सम्मान का प्रमाण है, जो उन्होंने इस साधारण वाद्य को दिलाया है।

'60 का दशक बहुत बदलाव का समय था। पश्चिमी दुनिया भारतीय संगीत, रहस्यवाद और ध्यान के साथ अपने शुरुआती उन्माद को बढ़ावा दे रही थी। इस लहर पर पं. रवि शंकर ऊँचाई पर पहुँच गए। बीटल्स के चिंतनशील, दार्शनिक और अत्यंत धार्मिक मुख्य गिटार-वादक जॉर्ज हैरिसन के साथ उनके गठजोड़ ने उनकी ख्याति बहुत बढ़ा दी। यहूदी मेनहिन, जीन पियरे रामफल और आंद्रे प्रेविन जैसे दूसरे 'गंभीर' या शास्त्रीय संगीतकारों के साथ रवि शंकर के मिले-जुले प्रयासों ने उनकी महानता और स्थापित कर दी तथा उनकी कामयाबी ने भारतीय संगीतकारों के लिए एक नई दुनिया का द्वार खोल दिया। उनका यह बहाव इतना शक्तिशाली था कि भारतीय संगीतकार लगभग आधी सदी बाद अब भी उसका लाभ उठाते हैं। पश्चिम में भारतीय शास्त्रीय संगीत को जो आसान स्वीकार्यता मिली है, उसे पूरी तरह समझा जा सकता है,अगर आप यूरोपीयों या अमेरिकियों को अपना सामान बेचने की कोशिश कर रहे एक भारतीय रॉक, पॉप या जाज संगीतकार हों।

हालाँकि भारतीय शास्त्रीय संगीत के पश्चिम की ओर सफर की उत्पत्ति सरोद-वादकों हुसैन अली और इनायत अली से होती है, जो बीसवीं सदी के शुरुआती भाग में क्वीन विक्टोरिया के लिए संगीत प्रस्तुत करनेवाले पहले संगीतकार थे, जिनके बाद सखावत हुसैन को एडोल्फ हिटलर द्वारा आमंत्रित किया गया था, लेकिन रवि शंकर और अली अकबर खाँ के पश्चिमी देशों में लगातार प्रदर्शन से ही भारतीय शास्त्रीय संगीत को पश्चिम में पहचान मिली। हालाँकि अली अकबर खाँ को भी संगीत समुदाय और पश्चिम के कद्रदानों के बीच रवि शंकर जितना ही सम्मान प्राप्त है, कम बहिर्मुखी होने और प्रचार को लेकर उतना सजग न रहने के कारण वह उतना बड़ा ब्रांड नाम नहीं बन पाए।

हरिप्रसाद का मानना है कि इन दोनों ने न केवल पश्चिम में भारतीय संगीत को फैलाया, बल्कि पश्चिमी दुनिया को भारत तथा भारतीय संस्कृति को संपूर्ण रूप में देखने पर विवश कर दिया। वे इस बात पर विस्मित थे कि किस तरह कोई अपनी आँखें बंद करके घंटों तक स्मरण से बजा सकता है, जबकि पश्चिमी शास्त्रीय संगीत की पाँच मिनट की प्रस्तुति को भी कागज पर पढ़कर किया जाता है। उनके अनुसार, ''जब एक भारतीय संगीतकार अपनी आँखें बंद करता है तो वह भौतिक दुनिया की ओर से भी आँखें बंद कर लेता है और संगीत को उत्पन्न करने के लिए अपने भीतर की गहराई में चला जाता है। योग, ध्यान, शाकाहारी बनना और भारतीय शैली के कपड़े, सभी भारतीय संगीत के प्रसार के बाद फैले। यहाँ तक कि साधुओं व महात्माओं में दिलचस्पी और यूरोप व अमेरिका में इस्कॉन तथा अन्य मंदिरों की बाढ़ भी संगीत के बाद आई। यह सब देवी सरस्वती का चमत्कार है,'' हरिप्रसाद कहते हैं। ''इस बड़े बदलाव के पीछे उसी की ताकत है।''

हरिप्रसाद की पहली विदेश यात्रा हिंदी और बंगाली गीतों के एक प्रसिद्ध गायक हेमंत कुमार मुखर्जी की बदौलत सन् 1966 में हुई। वह हरिप्रसाद को अच्छी तरह जानते थे और रेडियो, थिएटर, सिनेमा व भारतीय शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में उनके कार्यकलापों से अच्छी तरह परिचित थे। हेमंत मुखर्जी को रवि शंकर के एक संबंधी बिरेन शंकर

द्वारा लंदन में आयोजित एक सांस्कृतिक प्रदर्शनी में रवींद्र संगीत गाने के लिए आमंत्रित किया गया था। उन्होंने सिफारिश की कि युवा और सुरीले बाँसुरी-वादक हरिप्रसाद को भी इस शो में शामिल किया जाए। वह एक बहुमुखी शो था, जिसमें भारत के विभिन्न भागों के नृत्य, नाटक, भारतीय शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत को शामिल किया गया था। राधाकांत नंदी को हेमंत मुखर्जी के साथ तबला-वादन करने के लिए रखा गया था। हवाई किराए और लोगों की लागत में बचत करने के लिए उन्हें हरिप्रसाद के साथ संगत को कहा गया। ये दोनों कलकत्ता के टॉलीगंज (जिसे अब बॉलीवुड की तर्ज पर 'टॉलीवुड' कहा जाता है) इलाके में फिल्म स्टुडियो में हरिप्रसाद की रिकॉर्डिंग के समय से एक-दूसरे को जानते थे, इसलिए राधाकांत नंदी एक शास्त्रीय संगीत प्रस्तुति के लिए हरिप्रसाद के साथ वादन करने की संभावना से आह्लादित थे।

हरिप्रसाद को बारह मिनट का वादन समय दिया गया था। वह एक अजनबी नया देश था, जिसके लोग अजनबी और नए थे। वहाँ का तापमान बहुत कम था, जो बाँस की बाँसुरी के लिए अच्छी बात नहीं होती, क्योंकि बाँस एक उष्णकटिबंधीय पौधा है और बाँसुरी ठंडे मौसम में शुष्क आवाज निकालती है। समूह के सदस्यों में पंजाबी गायक आसा सिंह मस्ताना, जो परंपरागत पंजाबी हीर की अपनी प्रस्तुति के लिए प्रसिद्ध थे और पंजाबी लोकगीत की मल्लिका सुरिंदर कौर भी थीं। चूँकि इन दोनों के पास ताल वाद्यों के अलावा कोई असली संगत नहीं थी, उन्होंने हरिप्रसाद से अनुरोध किया कि वे बारह मिनट के अपने सोलो समय के अलावा उनके साथ बाँसुरी बजाएँ। यह परफॉर्मेंस लंदन के रॉयल अल्बर्ट हॉल में होना था, जहाँ परफॉर्म करने के लिए विशिष्ट दर्जे की जरूरत होती थी और यह हरिप्रसाद का विदेश में पहला परफॉर्मेंस था। उन्हें अपनी किस्मत पर यकीन नहीं हो रहा था। वह निश्चित रूप से बहुत घबराए हुए थे। अक्तूबर या नवंबर का महीना था और लंदन में बहुत ठंड थी। यह तथ्य कि भारतीय उच्चायुक्त जीवराज मेहता, यहूदी मेनहिन और उनकी पत्नी डायना, जीन पियरे रामफल और रवि शंकर भी श्रोताओं में थे, से उनकी घबराहट कम नहीं हुई। हरिप्रसाद ने पहले आसा सिंह मस्ताना और सुरिंदर कौर का साथ दिया। गीत के बीच उनके पहले वादन की श्रोताओं में कोई प्रतिक्रिया नहीं आई। अब तक वे सिर्फ रवि शंकर का सितार और अली अकबर खा का सरोद सुनने के अभ्यस्त थे। गीत के बीच उनके अगले बाँसुरी-वादन की श्रोताओं ने उत्साह से तालियाँ बजाकर प्रतिक्रिया दी। जब तीसरी बार बजाने का अवसर आया, वह विदेशी श्रोताओं के बीच बजाने के आरंभिक मंच-भय से उबर चुके थे और अपना बेहतरीन प्रदर्शन कर रहे थे। आसा सिंह मस्ताना और सुरिंदर कौर दोनों ने स्नेह से मुसकराते हुए उनकी ओर देखा। वे उनसे अधिक बड़े व अनुभवी थे और उनके युवा उत्साह को उनकी घबराहट पर काबू पाते देख सकते थे। वे परफॉर्मरों के रूप में भी काफी लोकप्रिय थे और उनके गीत के बाद श्रोताओं ने खड़े होकर उनका अभिवादन किया।

दो अनुभवी गायकों के सुरक्षा कवच के साथ इस विदेश श्रोता वर्ग की प्रतिक्रिया को देख चुके हरिप्रसाद अब अपनी सोलो प्रस्तुति के लिए तैयार थे। उनका नाम घोषित किया गया और वह जोरदार तालियों के बीच मंच पर आए। पश्चिमी दुनिया और लंदन में रहनेवाले भारतीय मूल के लोग अपने देश के इस रोमांचकारी, ग्रामीण, भुला दिए गए वाद्य को सुनने के लिए तैयार थे। श्रोताओं को समझने में कष्ट न हो, इसलिए और एक त्रुटिहीन प्रदर्शन सुनिश्चित करने के लिए हरिप्रसाद ने सबसे सरल राग भोपाली और सबसे सरल लय चक्र तीन ताल चुना। तालियों और अपने नए आत्मविश्वास से उत्साहित हरिप्रसाद ने इस तरह वादन किया, मानो आज के बाद कोई कल नहीं है। वह राधाकांत नंदी के लिए भी एक नया अनुभव था। मूल रूप से वह बंगाली सिनेमा के एक तबला-वादक थे और भारतीय संगीत के हलके रूपों को ही बजाते थे। उन्होंने महसूस किया कि नृत्य ट्रुप के साथ कुछ शास्त्रीय प्रशिक्षित तबला-वादक हैं, इसलिए यह दिखाने को कि वह भी एक शास्त्रीय संगीतकार का साथ दे सकते हैं,

उन्होंने उस प्रदर्शन में अपनी जान डाल दी। 'बारह मिनट' का सोलो बीस मिनट के कॉन्सर्ट में समाप्त हुआ, जिसके बाद तालियाँ रुकीं नहीं। इलाहाबाद के साधारण लड़के हरिप्रसाद को 'एनकोर' या दुहराव के बारे में कोई जानकारी नहीं थी और उन्हें झुककर अभिवादन करने या उनके मामले में हाथ जोड़कर नमस्ते करने के लिए आयोजकों द्वारा मंच पर लगभग धकेला गया। हालाँकि उन्होंने दूसरी प्रस्तुति नहीं दी। चूँकि यह विदेश में प्रस्तुति देने का पहला मौका था, उनका समय, जो आठ मिनट ऊपर हो चुका था, समाप्त हो गया था और वह आयोजकों को यह महसूस नहीं कराना चाहते थे कि वह दूसरे कलाकारों को दिया गया समय खुद ले रहे हैं।

डायना एवं यहूदी मेनहिन के साथ।

यहूदी मेनहिन की पत्नी प्रसन्नचित्त उनके पास आईं, ''मुझे आपका वादन बहुत पसंद आया। आप कितने कम उम्र हैं!'' वह उनकी तारीफ करनेवाली एकमात्र यूरोपीय महिला नहीं थीं। एक कहानी है कि एक अति उत्साही ब्रिटिश महिला ने उनके बाँसुरी-वादन पर उत्साहित होकर उन्हें होंठों पर चूम लिया था। मैंने हरिप्रसादजी से पूछा कि क्या यह कहानी सच्ची है। पर उन्हें जवाब नहीं देना पड़ा। झुकी पलकों और स्कूली लड़के जैसी शरमीली मुसकराहट ने सब कह दिया। हरिप्रसाद स्वतंत्रता पूर्व भारत, पुराने भारत, के उत्पाद हैं। हालाँकि भारत आजाद था, वह अब भी एक अत्यंत रूढ़िवादी और संकीर्ण समुदाय था, जहाँ इस तरह का व्यवहार स्वीकार्य नहीं था। हरिप्रसाद ने विशेष रूप से मुझे इस घटना को पुस्तक में शामिल न करने के लिए कहा, लेकिन मैंने सिर्फ उस अमूल्य शरमीली मुसकराहट को देखने के लिए इसे पुस्तक में शामिल किया, जो इसका ड्राफ्ट पढ़ते समय उनके होंठों पर आएगी।

और मैं कामयाब रहा!

अपने विदेशी श्रोताओं पर काफी अच्छा प्रभाव छोड़ने पर संतुष्ट हरिप्रसाद ने अब अपना ध्यान अपने पेट पर दिया। वह इंग्लैंड में थे, भूखे थे और हर जगह खाने के लिए ब्रिटिश खाद्य पदार्थ थे। उस प्रकार की चीजों का वह उस समय भारत में सपना भी नहीं देख सकते थे। उन्होंने वह किया, जो हर भारतीय अपने पहले विदेश दौरे पर करता है, मन में पाउंडों को रुपयों में बदलना और यह कल्पना करना कि वह मामूली से कॉन्सर्ट फी का कितना अधिक-से-अधिक इस्तेमाल कर सकते हैं। रहने में जितनी हो सके उतनी बचत करना और अधिक-से-अधिक खरीदारी करना। मीठा पसंद होने के कारण उन्होंने अपने लिए पेस्ट्रियाँ और मफिन खरीदे। साथ ही उन्होंने अपनी पत्नी के लिए फ्रेंच शिफॉन, फ्रेंच परफ्यूम एवं स्पेनिश केसर खरीदा और बंबई में अपने तबला-वादक के लिए स्कॉच व्हिस्की की बोतल ली। उन दिनों ऐसी विलासिताएँ भारत में अमीर और प्रसिद्ध लोग ही कर सकते थे।

बंबई लौटने पर हरिप्रसाद का कद बढ़ गया। वह उन चुनिंदा भारतीय शास्त्रीय संगीतकारों में थे, जिन्होंने लंदन में प्रस्तुति दी थी और उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि हर कोई इस बारे में जान ले, मित्र, परिवार और फिल्मी दुनिया। जब भी वह मंच पर बाँसुरी-वादन करने जाते तो आग्रह करते कि आयोजक श्रोताओं के सामने उनकी 'फॉरेन रिटर्न्ड' स्टेटस को साफ-साफ घोषित करें।

व्हिस्की और परफ्यूम के अलावा वह अपने साथ इससे भी कहीं मूल्यवान् चीज लाए, यह जानकारी कि पश्चिम

में भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए एक बहुत बड़ा बाजार है, जो बस फायदा उठाए जाने का इंतजार ही कर रहा है। रवि शंकर और अली अकबर खाँ ने रास्ता साफ कर दिया था, लेकिन अब भी वह साहसिक और सुरीलों के लिए खाली इलाका था। खासकर बाँसुरी के लिए बाजार पूरी तरह खुला था। हरिप्रसाद अपने वाद्य को पूरी दुनिया के सामने इस रूप में पेश करना चाहते थे, जैसा पहले कभी न किया गया हो, जो सितार, सरोद और भारतीय शास्त्रीय गायन के टक्कर का हो। इसके लिए उन्हें अपनी कला में निष्णात होने, अपने काम को परिष्कृत करने और अवसर के दस्तक पर तैयार रहने की जरूरत थी। वह जीवन का महत्त्वपूर्ण मोड़ था, क्योंकि उन्होंने अपने सामने असीमित संभावनाएँ देखीं। एक अधिक लौकिक, लेकिन उतना ही बाध्यकारी कारण यह था कि भारतीय रुपयों में बदले जाने पर उन्हें दी गई छोटी कॉन्सर्ट फी भी बड़ी रकम हो गई। इसी समय वह तालीम और मार्गदर्शन के लिए गुरु माँ अन्नपूर्णा देवी की ओर मुड़े। उनकी सतर्क निगरानी में उन्होंने खुद को सीधे मियाँ तानसेन के घराने से सख्त प्रशिक्षण में डुबो लिया, जैसा कि अध्याय 'परिवर्तन : गुरु माँ से पहले और आगे' में उल्लेख किया गया है।

सन् 1971 में हरिप्रसाद ने स्वीडन में पहली अंतरराष्ट्रीय कामयाबी पाई। वह शिवकुमार शर्मा के साथ सफर कर रहे थे और उन्हें स्टॉकहोम में एक रिकॉर्डिंग कंपनी का प्रस्ताव मिला। वह उन्हें रिकॉर्ड करना चाहते थे, क्योंकि बाँसुरी एक आसानी से पहचान में आनेवाला वाद्य था, जो किसी-न-किसी रूप में हर देश में मौजूद होता है। दूसरी ओर, संतूर एक ऐसा वाद्य था जिस पर स्वीडन जैसा देश पैसा लगाने का खतरा नहीं उठाना चाहता था। यह एक विचित्र स्थिति थी, क्योंकि वह और शिवकुमार शर्मा एक साथ दौरा कर रहे थे और उपयुक्त यही था कि साथ रिकॉर्ड करते। उन्होंने एजेंट रीटा नॉक्स को यह समस्या बताई, लेकिन रिकॉर्ड कंपनी ने अपना रुख बदलने से इनकार कर दिया। कभी हार न माननेवाले हरिप्रसाद सबसे व्यावहारिक समाधान लेकर आए, जो अब ऐतिहासिक बन चुका है, बाँसुरी और संतूर की जुगलबंदी। दोनों मूल रूप से भारत के लोक वाद्य हैं और उनकी टोनल विशेषताएँ एक-दूसरे के अनुकूल हैं। हरिप्रसाद और शिवकुमार शर्मा ने कई फिल्मी साउंडट्रैकों एवं ऐतिहासिक एलबम 'कॉल ऑफ द वैली' पर एक-दूसरे के साथ बजाया है और इसलिए वे एक-दूसरे की संगीत संबंधी शैली और मिजाज से परिचित थे। 'जुगलबंदी' नामक इस एलबम में भारतीय शास्त्रीय संगीत के सबसे लोकगीत प्रकार के राग हैं, झिंझोती और पीलू। वह रागों का आदर्श चयन था और इसका नतीजा ताजा हवा के झोंके की तरह आया। यह विदेशी कंपनी से भारतीय कंपनी (एच.एम.वी.) द्वारा एक भारतीय शास्त्रीय एलबम के अधिकार खरीदे जाने के शुरुआती मामलों में से भी एक है।

सन् 1974 तक हरिप्रसाद यूरोप की खूब यात्राएँ कर रहे थे, लेकिन अमेरिका अब भी उनसे दूर था। उन्होंने सुन रखा था कि वह अवसरों की धरती है और वहाँ जाने के लिए उत्सुक थे। अन्नपूर्णा देवी के सान्निध्य में उनकी तालीम उनके परफॉर्मेंसों में दिख रही थी। भारत और यूरोप में उनके बाँसुरी-वादन को न केवल स्वीकार किया जा रहा था, बल्कि उसे सराहना मिल रही थी। फिल्मी उद्योग और विदेश-यात्राओं से हो रही कमाई ने उनमें काफी आत्मविश्वास ला दिया और उनमें जीवन की बेहतरीन चीजों की इच्छा जगने लगी, जो दिखती थी। मोटे और तोंद के साथ वह उस पहलवान की तरह बिलकुल भी नहीं दिखते थे, जैसा उनके पिता ने उन्हें बनाना चाहा था। वह कला और आर्थिक दोनों रूपों में विकास कर रहे थे।

इस मोड़ पर उन्हें सबसे बड़ा अंतरराष्ट्रीय अवसर मिला, रवि शंकर और पूर्व बीटल जॉर्ज हैरिसन के साथ एक टूर।

हालाँकि जॉर्ज हैरिसन ने कुछ समय से मंच पर बजाना छोड़ दिया था और स्टुडियो को अपनी कला की

अभिव्यक्ति का माध्यम मानते थे, यह माना जाता है कि उनके गुरु और मित्र रवि शंकर की ओर से आयोजित 'कॉन्सर्ट फॉर बँगलादेश' ने मंच पर कला के प्रदर्शन की उनकी इच्छा को फिर से जगा दिया। यह कॉन्सर्ट 1अगस्त, 1971 को मेडिसन स्क्वायर गार्डन, न्यूयॉर्क में आयोजित हुआ और उसकी रिकॉर्डिंग एक तिहरे एलबम के रूप में रिलीज की गई। बीटल्स के अलग हो जाने और जॉर्ज हैरिसन द्वारा अपना रिकॉर्डिंग लेबल डार्क हॉर्स बनाए जाने के बाद अमेरिका का दौरा अपरिहार्य लग रहा था। भारत से रवि शंकर और उनके मित्रों की भरोसेमंद प्रतिभाओं के साथ उसे मजबूत बनाने से बेहतर और कौन सा तरीका हो सकता था। अन्य रॉक स्थलों के बीच वुडस्टॉक में उनका प्रदर्शन पहले ही रवि शंकर को अमेरिका में एक महान् परफॉर्मर बना चुका था। उन्होंने लक्ष्मी शंकर और उनकी बेटी विजी, तबला उस्ताद अल्लारक्खा, मृदंगम-वादक टी. वी.गोपालकृष्ण, वायलिन-वादक एल. सुब्रह्मण्यम, संतूर-वादक शिवकुमार शर्मा और निश्चित रूप से बाँसुरी पर हरिप्रसाद सहित उन्होंने पंद्रह सदस्यों का एक समूह बनाया।

पश्चिमी संगीतकारों की उपलब्धियाँ उतनी ही प्रभावशाली थीं। उनमें पूर्व गायक रे चार्ल्स के पूर्व शिष्य, बीटल्स के मित्र और उनके 'लेट इट बी' एलबम में कीबोर्ड वादक बिली प्रेस्टन थे। फिर उसमें सैक्सोफोन वादक, बाँसुरी-वादक, अपने बैंड एल. ए. एक्सप्रेस के मुखिया और महान् गायकों जोनी मिशेल और कैरोल किंग के लिए पार्श्व संगीतकार टॉम स्कॉट थे। वह कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी, लॉस एंजिलिस में रवि शंकर के एक शिष्य हरिहर राव के सान्निध्य में भारतीय संगीत के छात्र भी थे और मुलाकात से पहले से ही हरिप्रसाद के कैसेट सुनते रहे थे। साथ ही, उसमें ताल-वादक एमिली रिचर्ड्स भी थे। वह भी हरिहर राव के शिष्य थे।

हैरिसन का निवास, 120 कमरोंवाला विक्टोरियाई न्यू-गोथिक मेंशन, फ्रेयर पार्क, जो हेनली-ऑन-थेम्स के निकट था, सर फ्रैंक क्रिस्प द्वारा बनवाया गया था और हैरिसन द्वारा 14 जनवरी, 1970 को खरीदा गया था। इसे ही रवि शंकर की टीम द्वारा रिहर्सल करने और रिकॉर्डिंग के लिए 'प्रैक्टिस पैड' के रूप में इस्तेमाल किया गया। एक गेस्ट-रूम को 16 ट्रैक टेप आधारित रिकॉर्डिंग सिस्टम लगाते हुए एक रिकॉर्डिंग स्टुडियो में बदल दिया गया। वह सिस्टम उस समय ईएमआई के प्रसिद्ध ऐबी (Abbey) रोड स्टुडियो से भी बढ़िया माना जाता था। उस कमरे में रिकॉर्ड किए जानेवाले हैरिसन के एलबमों पर आम तौर एफ.पी.एस.एच.ओ.टी. या फ्रेयर पार्क स्टुडियो, हेनली-ऑन-थेम्स उल्लिखित होता था। प्रैक्टिस सेशन इतना अच्छा चला कि उनकी 'शंकर फैमिली ऐंड फ्रेंड्स' नामक एक एलपी बनाई गई, जिसके कवर पर हरिप्रसाद को मजाकिया तरीके से एक पश्चिमी बाँसुरी (जो उन्होंने कभी नहीं बजाई) को अपने होंठों पर रखे दिखाया गया है।

अमेरिका में वे पहले लॉस एंजिलिस गए, जहाँ हैरिसन को अपना एलबम डार्क हॉर्स पूरा करना था, जिस पर वह डार्क हॉर्स के वितरक ए. एंड एम. रिकॉर्ड्स के स्टुडियो में लगभग एक साल से काम कर रहे थे। यहीं पर हरिप्रसाद टॉम स्कॉट से मिले और वे अच्छे मित्र बन गए। वे काफी समय संगीत से जुड़ी चर्चाओं और पश्चिमी बाँसुरी तथा बाँस की बाँसुरी के गुणों-अवगुणों की चर्चा करते हुए बिताते थे। हरिप्रसाद को याद है कि वह एक दिन भोजन पर स्कॉट के घर गए थे और उनके अस्तबल में कुछ खूबसूरत घोड़े देखे थे। वह स्कॉट की पत्नी से भी मिले, जिन्हें वह इस तरह याद करते हैं, ''बहुत लंबी, टॉम स्कॉट से भी लंबी।''

हैरिसन के साथ का टूर एक महत्त्वाकांक्षी तीन सप्ताह का टूर था, जिसमें वैंकूवर से लॉस एंजिलिस तक महाद्वीप का पूरा उत्तरी भाग कवर करना था। रवि शंकर की टीम ने दूसरे शहरों में भी प्रदर्शन किया, कुल मिलाकर यूरोप में छह और अमेरिका में बावन। हैरिसन के टूर की व्यवस्था बिली ग्राहम को सौंपी गई थी। प्रसिद्ध फिलमोर थिएटर्स के मालिक, कई पुरस्कार प्राप्त करनेवाले और सन् 1973 में वाटकिंस ग्लेन की 'समर जैम',

जिसे अब तक का एक सबसे बड़ा रॉक फेस्टिवल माना जाता है, सहित कई रॉक कंसर्टों के आयोजक बिली ग्राहम को अमेरिकी संगीत उद्योग का सबसे परोपकारी, फिर भी सबसे सख्त व्यवसायी माना जाता था। 25 अक्तूबर, 1991 को एक हेलीकॉप्टर दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई। उनकी कंपनी बिली ग्राहम प्रजेंट्स (बी.जी.पी.) के लिए यह साल का तीसरा बड़ा कॉन्सर्ट टूर था। पहले दो बॉब डिलन का 'कमबैक' टूर और क्रासबी, स्टील्स, नैश और यंग का रीयूनियन टूर था। हरिप्रसाद उनके निजी हवाई जहाज में यात्रा करते हुए विस्मित थे, जिसके बाहर 'ओम' का प्रतीक बना हुआ था और उसके अंदर छोटे-छोटे बिस्तर लगे हुए थे। 'रोलिंग स्टोन' पत्रिका के एक लेख के अनुसार, वैंकूवर में मंच के दोनों ओर प्रकाशित इस ओम के चिह्न ने पी.एन.ई. कोलिसियम के प्रेस बॉक्स में पत्रकारों को अनुमान लगाने पर मजबूर कर दिया था कि वह भारतीय डॉलर का चिह्न है या उसका अर्थ 'धूम्रपान निषेध' है।

गुरु-शिष्य संबंध के मंचीय प्रदर्शन, जिसमें हैरिसन ने झुककर रवि शंकर के पाँव छुए, के बावजूद वह जॉर्ज हैरिसन के बैंड के लिए अनिवार्य रूप से एक उद्घाटक गतिविधि थी और काफी अच्छी थी। सिएटल में रवि शंकर के 'डिस्प्यूट एंड वॉयलेंस' को सुनने हुए और उन्हें ऑर्केस्ट्रा संचालित करते देखते हुए एक युवक ने पूरी तरह शुरुआती '70 के दशक की शैली में कहा, ''अगर आपको ईश्वर से बात करनी है तो यही तरीका होगा।''

हरिप्रसाद आज भी उस टूर के समय प्रबंधन से विस्मित हैं, जिसमें संगीतकारों के आराम और यथासंभव क्षमता स्तर सुनिश्चित करने के लिए छोटी-से-छोटी बात पर ध्यान दिया गया था। भोजन के शौकीन हरिप्रसाद एक भी दिन भारतीय भोजन के बिना नहीं रह सकते। भारतीय संगीतकारों के लिए भारतीय रसोइए और अंग्रेज व अमेरिकन संगीतकारों के लिए स्थानीय रसोइए रखे गए थे।

जब एक शहर में कॉन्सर्ट चल रहा होता था तो रसोईघर के सामानों से भरे दो ट्रक अगले गंतव्य के लिए भेज दिए जाते थे और रसोइए रास्ते में ही भोजन तैयार करते हुए जाते थे, ताकि जब संगीतकार विमान द्वारा वहाँ पहुँचें तो उन्हें ताजा व गरम भोजन तैयार मिले।

(ऊपर) जॉर्ज हैरीसन के बैंड के साथ, (नीचे) फोटो के पीछे हैरीसन द्वारा हरिप्रसाद के लिए लिखी टिप्पणी।

हवाई अड्डे पर हर किसी को उसके होटल के कमरे की चाबी दे दी गई। वाद्य को ट्यून करने के लिए भी लोग रखे गए थे, ताकि संगीतकार जब ऑडिटोरियम में पहुँचें तो उनके वाद्य पहले से ट्यून होकर मंच पर पहुँच गए हों। हर किसी के पास हरिप्रसाद की बाँसुरी जैसा वाद्य नहीं होता, जिसे ट्यूनिंग की जरूरत न हो। दो रंगों के क्लॉथ हैंगर

थे, एक ऐसे कपड़ों के लिए, जिन्हें धोने की जरूरत थी और दूसरा उन कपड़ों के लिए, जिन्हें सिर्फ इस्त्री करने की जरूरत हो। यह कहने की जरूरत नहीं कि कॉन्सर्ट के लिए कपड़े हमेशा ग्रीन रूम में तैयार रहते थे। मंच के पीछे एक पूरा मनोरंजन एरिया था, जिसमें संगीतकार उस समय कैरम और टेबल टेनिस जैसे खेलों के साथ मनोरंजन कर सकते थे, जब उनकी मंच पर जरूरत न हो। तब से अब तक हरिप्रसाद ने पूरी दुनिया में बजाया, लेकिन इस उच्च स्तर की व्यवस्था पुन: देखने को नहीं मिली।

हरिप्रसाद के मित्र और 'बड़े भाई' शिवकुमार शर्मा, जो उनके साथ इस टूर पर थे, एक कार की सवारी कभी नहीं भूलेंगे, जो उन्होंने तबला उस्ताद अल्लारक्खा के साथ की थी। रवि शंकर ने लॉस एंजिलिस से कैलिफोर्निया के किसी स्थान तक जाने के लिए उनके लिए किराए पर एक कार ली। हमेशा कार के दीवाने हरिप्रसाद ने खुद ड्राइव करने पर जोर दिया, जबकि उन्होंने पहले कभी अमेरिका में कार नहीं चलाई थी। वह एक नई कार, एक नया देश था और वह पहली बार सड़क के दाहिनी ओर ड्राइव कर रहे थे। लॉस एंजिलिस से साढ़े तीन घंटे में मार्गदर्शन के लिए किसी रोड मैप के बिना और याद किए पते के साथ रोमांचप्रिय हरिप्रसाद ने उन्हें सुरक्षित गंतव्य पर पहुँचा दिया। उस समय रात के लगभग दो बज चुके थे।

''मुझे नहीं मालूम कि उन्होंने ऐसा कैसे किया?'' विस्मित शिवकुमार शर्मा कहते हैं।

अमेरिका में कार चलाने की हरिप्रसाद की अपनी स्मृति उतनी अच्छी नहीं है। वे सब दिन में ए. एंड एम. स्टूडियो में काम करते थे और अपने होटल से चलकर आते व जाते थे, क्योंकि वह बगल में था, लेकिन हरिप्रसाद शाम को खाली बैठे-बैठे बोर हो रहे थे, इसलिए उन्होंने जॉर्ज हैरिसन से अनुरोध किया कि उनके लिए एक कार की व्यवस्था करा दें, जिसमें वह शहर में घूम-फिर सकें और साथ ही खरीदारी या दर्शनीय स्थलों की सैर पर जा सकें। हैरिसन ने एक बिलकुल नई फोर्ड मुस्टंग किराए पर ली और हरिप्रसाद उस्ताद अल्लारक्खा को घुमाने ले गए। भारत में निम्न टेक्नोलॉजीवाली एंबेसडर और फिएट वगैरह चलाने के बाद अमेरिकी कार चलाना एक सपने की तरह था, गति, एक्सीलरेशन, सरल स्टीयरिंग और आरामदेह यात्रा। इससे पहले कि वह जान पाते, कार एक खतरनाक तेज गति पर चल रही थी। वे एक चौराहे पर पहुँचे और हरिप्रसाद ने 'स्टॉप' का संकेत नहीं देखा। उनकी स्थिति की कल्पना कीजिए, जब उन्होंने अपने सामने अठारह पहियों की एक गाड़ी देखी। दोनों वाहनों ने तेज ब्रेक मारे और एक-दूसरे से कुछ इंच दूर जाकर रुके। घबराए अल्लारक्खा कार से बाहर निकल आए। धड़कते दिल और माथे पर पसीने के साथ उन्होंने प्रण किया कि वह कभी हरिप्रसाद द्वारा चलाई जा रही कार में नहीं बैठेंगे।

रविशंकर के साथ टूर के अति पेशेवर रुख के विपरीत सिक्के के दूसरी ओर उनके भारतीय साथी थे। जिन्होंने बार-बार उनकी मासूमियत और भरोसेमंद स्वभाव का फायदा उठाया। उनमें से अधिकतर ऐसे थे, जो एक भारतीय फिल्मी सितारे को देखने के लिए 200 मील ड्राइव करके 100 डॉलर खर्च कर सकते थे, लेकिन भारतीय शास्त्रीय संगीत के बारे में कुछ नहीं जानते थे। उसके लिए एक पैसा तक खर्च नहीं कर सकते और शास्त्रीय संगीतकारों से व्यवहार करते समय जरूरी तहजीब के बारे में कुछ नहीं जानते। वे अकसर हरिप्रसाद और उनके साथियों को हवाई अड्डे पर घंटों इंतजार करा देते और फिर कोई एक उन्हें लेने आता तथा किसी होटल में नहीं, बल्कि अपने बच्चों के शोरगुल और कुत्ते व बिल्ली के गंध से भरे अपने अस्त-व्यस्त घर में ले जाता। हरिप्रसाद के सामने रखी गई माँगें हास्यास्पद होती थीं। किसी ऑडिटोरियम की बजाय उन्हें किसी के लिविंग रूम में बजाने को कहा जाता। उन परफॉर्मेंसों का कोई प्रचार नहीं किया जाता और सूचना का एकमात्र माध्यम फोन था, जो मुख्य रूप से मित्रों व संबंधियों को किया जाता। घर पर एक कलाकार का होना अकसर सिर्फ अपनी बुद्धिजीविता और भारतीय संस्कृति

से जुड़ाव प्रदर्शित करने का प्रयास होता, इसलिए सभी आमंत्रितों को जितनी तसवीरें हो सकें, लेने के लिए प्रेरित किया जाता, जिससे वह संगीत बैठक तमाशे में बदल जाती। एक अवसर पर उन्हें बैठने और बाँसुरी-वादन के लिए एक कुरसी दी गई। जब उन्होंने विनम्रता से बताया कि भारतीय शास्त्रीय संगीतकार प्रस्तुति के लिए फर्श पर बैठते हैं तो जमीन पर उनके लिए एक सफेद चादर बिछा दी गई, कोई गद्दे नहीं, कोई गलीचा नहीं। वह कहते, ''माफ कीजिए, हमें पता नहीं था कि आप फर्श पर बैठेंगे।'' हरिप्रसाद भारतीयों द्वारा इस प्रकार के ज्ञान के अभाव या अज्ञानता के आवरण में दिलचस्पी के अभाव पर क्षुब्ध हैं। एक और मौके पर उन्हें अपना नाम बुलाए जाने पर कमरे में भगवान् कृष्ण की तरह होंठों पर बाँसुरी रखे नृत्य करते हुए कमरे में आने को कहा गया, ताकि शो में रोमांच डाला जा सके। अकसर उन्हें दी जानेवाली राशि कही गई राशि से काफी कम होती थी।

रहने की खराब व्यवस्था, बासी भोजन और बेकार व्यवस्थाओं के बावजूद हरिप्रसाद ने सन् 1975 से 1980 तक पाँच लंबे वर्षों तक आयोजकों पर भरोसा करते हुए अमेरिका की अपनी यात्राएँ जारी रखीं। वह अमेरिका को जीतने के लिए प्रतिबद्ध थे, चाहे उन्हें कितना भी संघर्ष क्यों न करना पड़े। जब मैंने उनसे पूछा कि वे कौन लोग थे, उन्होंने जवाब देने से इनकार कर दिया। वह इतने विनम्र हैं कि किसी का नाम नहीं ले सकते और साथ ही उन्हें संदेह का लाभ देने में पीछे नहीं हटते। ''शायद उन्हें इससे अधिक जानकारी नहीं थी।'' वह तर्क देते हैं। ''कम-से-कम उन्होंने मेरी मदद करनी चाही। अपनी जीवनी में किसी का नाम डालते हुए उसपर दोष क्यों लगाना?''

उन्हें अब भी अमेरिका में बाँसुरी-वादन करने के लिए उनमें से कई के प्रस्ताव आते हैं, लेकिन अब वह व्यवस्था और शुल्क के बारे में बहुत स्पष्ट हैं, ''मुझे यह भी बताना पड़ता है कि किस प्रकार का होटल चाहिए, अन्यथा मुझे किसी भारतीय मूल के अमेरिकी के स्वामित्ववाले किसी मोटल में ठूँस दिया जाता है।'' वह पच्चीस वर्ष पहले जितने भोले नहीं हैं। दुनिया भर में सबसे प्रतिष्ठित स्थानों पर अपनी कला का प्रदर्शन कर चुके किसी के ड्राइंग रूम में सिर्फ इसलिए बजाने की कोई वजह नहीं दिखती कि वह एक मित्र या संबंधी है, जो कभी भारत में रहता था। ग्रेट ब्रिटेन में उन्होंने रॉयल अल्बर्ट हॉल, रॉयल फेस्टिवल हॉल, क्वीन एलिजाबेथ हॉल, परसेल रूम, बाथ फेस्टिवल, एडिनबर्ग फेस्टिवल और बहुत से अन्य स्थानों पर प्रदर्शन किया है, जिनका उन्हें नाम तक याद नहीं। उन्हें जिन अन्य महत्त्वपूर्ण स्थलों पर बाँसुरी-वादन करने का अवसर मिला है, उनमें कारनेगी हॉल, लिंकन सेंटर, मेडिसन स्क्वायर, हांगकांग कल्चरल सेंटर, सिडनी में द ओपेरा हाउस, द एडिलेड फेस्टिवल, टोकियो में नेशनल थिएटर शामिल हैं। उन्हें मास्को के प्रसिद्ध बोलशोई थिएटर में प्रदर्शन करनेवाले पहले भारतीय शास्त्रीय संगीतकार होने का गौरव प्राप्त है।

इतने वर्षों में बहुत कुछ बदल चुका है, लेकिन कुल मिलाकर अमेरिकी उनके प्रति उदार रहे हैं। सरकार ने उन्हें एक ग्रीन कार्ड दिया है, बाल्टीमोर के मेयर ने उन्हें अपने शहर की मानद सदस्यता के साथ उन्हें सम्मानित किया है और सन् 1998 में सैन फ्रांसिस्को के मेयर ने 25 जुलाई को 'पं. हरिप्रसाद चौरसिया दिवस' घोषित किया। वहाँ भारतीय परिवार भी हैं, जो अब उन्हें अमेरिका में परफॉर्म करने के लिए बुलाते हैं और भारत का एक सबसे वरिष्ठ संगीतकार तथा बाँसुरी का दूत होने के नाते उन्हें वह सम्मान, श्रद्धा और मूलभूत सुविधाएँ देते हैं, जिनके वह हकदार हैं।

इसका एक उदाहरण श्मामला राजेंद्र हैं, लौह इरादोंवाली महिला। रसायन-शास्त्र में पी-एच.डी.और विधि में जे.डी. (डॉक्टर ऑफ जुरिस्प्रूडेंस) उपाधियाँ प्राप्त श्यामला डेनविल, कैलिफोर्निया में रहती हैं, जहाँ प्रैक्टिसिंग अटार्नी हैं। वह लगभग आठ वर्षों तक यूनिवर्सिटी ऑफ मिनिसोटा में रसायन-शास्त्र की प्रोफेसर थीं, जिसके बाद उन्होंने लिंग और राष्ट्रीय मूल के आधार पर भेदभाव करने के लिए यूनिवर्सिटी के खिलाफ एक मामला दायर किया

और जीत गईं। वह अमेरिकी के कानून के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण मामला था, जो लगभग सात या आठ वर्ष चला था और उसने अमेरिका के शैक्षिक हलकों में स्तब्धता ला दी थी। वर्ष 1980 में एक ऐतिहासिक फैसला सुनाया गया, जिसे 'राजेंद्र डिक्री' कहा जाता है, जिसमें यूनिवर्सिटी को पहले भेदभाव की शिकार हो चुकी महिलाओं को बाकी का वेतन, प्रमोशन और अन्य चीजों का भुगतान करने के लिए कहा गया। उसने लगभग 3,500 दावेदारों के लिए रास्ता खोल दिया, जिन्होंने डिक्री के परिणामस्वरूप यूनिवर्सिटी से क्षतिपूर्ति के रूप में लगभग 4 करोड़ डॉलर प्राप्त किए। सेटलमेंट की शर्तों के तहत उन्हें यूनिवर्सिटी से 1,00,000 डॉलर मिले, जबकि उनके वकीलों को कथित रूप से 20 लाख डॉलर मिले, जो उस समय एक नागरिक अधिकार मामले में दिया गया सबसे अधिक शुल्क था।

श्यामला संगीतकार और संगीत-प्रेमी भी हैं, जो अमेरिका में हरिप्रसाद के कॉन्सर्ट आयोजित करती हैं और कभी-कभार तानपुरा पर उनका साथ भी देती हैं। हरिप्रसाद के संगीत से उनका परिचय रिकॉर्डिंगों से हुआ, जो उन्होंने सन् 1981 में मद्रास (अब चेन्नई) में वीणा-वादक स्व. क्षिति बाबू के घर में सुने थे। एक पारिवारिक मित्र क्षिति बाबू उनके गुरु और शिक्षक थे। उन्होंने उनसे हरिप्रसाद का संगीत सुनने और मिलने का आग्रह किया। पहली बार हरिप्रसाद को सन् 1987 में न्यूयॉर्क में टाउन हॉल में सुना। उनके संगीत और उनकी उपस्थिति से विभोर वह उनसे मिलना चाहती थीं, लेकिन इसके लिए उन्हें कुछ साल इंतजार करना पड़ा। अंततः वह उनसे तब मिल पाईं, जब वह सैन जोस में प्रदर्शन कर रहे थे और वह तत्काल उनकी विनम्रता व सरल प्रकृति पर मुग्ध हो गईं। दोनों ने कुछ बातें कीं और उन्होंने हरिप्रसाद को अपना बिजनेस कार्ड दिया, साथ ही उनके तथा उनके संगीतकारों के लिए वीजा दिलाने में मदद करने का प्रस्ताव रखा। उन्होंने हरिप्रसाद को अमेरिका की आगे की यात्राओं में अपने घर पर रहने के लिए भी आमंत्रित किया और उनके पूरे परिवार को खुश करने के लिए वह तब से ऐसा करते आ रहे हैं। उन्हें हरिप्रसाद के शुरुआती कंसर्टों, जिनमें वह शामिल हुई थीं, में से एक की एक घटना याद आती है। उनके अपने शब्दों में, ''मैं उनके एक कॉन्सर्ट में थी और एक महिला ने कहा कि उनके पास ऐसे महान् उस्ताद के लिए कोई शब्द नहीं हैं और पूछा कि क्या वह अपने बारे में कुछ शब्द कहना चाहेंगे? उन्होंने विनोदप्रियता से श्रोताओं की ओर मुड़ते हुए कहा, 'मैं हरिप्रसाद चौरसिया हूँ। मैं एक बाँसुरी-वादक हूँ।' बस, वहाँ तालियों की गड़गड़ाहट गूँजने लगी। मेरा मुँह खुला-का-खुला रह गया। मेरे अनुभव में पहली बार एक सेलिब्रिटी ने अपना परिचय सिर्फ नौ शब्दों में दिया था। उन्हें यकीन था कि उनकी बाँसुरी और उनका संगीत बाकी चीजें बोल देंगे।''

अपने एक कॉन्सर्ट के बाद वह श्यामला से व्यवस्था के बारे में शिकायत कर रहे थे, जिसे श्यामला ने स्वीकार किया कि निम्न श्रेणी का था। अचानक वह उनकी ओर मुड़े और कहा, ''आप क्यों नहीं ये कॉन्सर्ट आयोजित करतीं?'' विस्मित होकर उन्होंने जवाब दिया, ''हरिजी, क्या आप गंभीरता से कह रहे हैं? मैं सिर्फ एक मामूली वकील हूँ। कॉन्सर्ट आयोजित करने के बारे में मुझे कुछ नहीं पता है, खासकर इतने महान् उस्ताद के लिए?'' जो लोग हरिप्रसाद को जानते हैं, वे यह भी जानते हैं कि वह कितना आग्रह कर सकते हैं। उन्हें ना सुनने की आदत नहीं है और वह जानते हैं कि अपने सरल तरीके से आपको भरोसा दिलाने के लिए किस तरह सही जगह जोर डालना है, आपको उसका पता भी नहीं चलता। श्यामला उनके सौम्य आग्रह से झुक गईं और बाकी, जैसा कि कहा जाता है, इतिहास है। पिछले लगभग बारह वर्षों से वह अमेरिका और कनाडा में उनके लिए कंसर्ट व कार्यशालाएँ आयोजित कर रही हैं। वह उनके कानूनी मामले भी देखती हैं। उनके और उनके साथियों के लिए वीजा का प्रबंध करना भी इनके कार्यों में शामिल है।

उन्होंने हरिप्रसाद के लिए कई कॉन्सर्ट आयोजित किए हैं, लेकिन वह जिसे सबसे खुशी से याद करती हैं, उसमें

हरिप्रसाद और लैरी कॉएल (गिटार), जॉन वुबेनहॉर्स्ट (कीबोर्ड), जॉर्ज ब्रुक्स (सैक्सोफोन), विक्कू विनायकराम (घटम) और स्वपन चौधुरी (तबला) थे। वह एक बड़ा कॉन्सर्ट था और उन्होंने उत्साह में आकर 3,700 की सीटिंग क्षमतावाला सबसे बड़ा हॉल, मैसोनिक ऑडिटोरियम बुक कर दिया। उन्हें चिंता के मारे नींद नहीं आ रही थी कि हॉल को कैसे भरा जाए। हरिप्रसाद कॉन्सर्ट से कुछ दिन पहले आए और चुपचाप देखते रहे कि किस तरह वह एक ही समय अलग-अलग जगह दौड़ रही थीं, लगातार फोन कॉल कर रही थीं; संगीतकारों को संबंधित होटलों से उठाना, उन्हें रिहर्सलों के लिए घर लाना, वापस छोड़ना और बाल्टियाँ भरकर चाय बनाना। कॉन्सर्ट से एक दिन पहले वे सब उनका बनाया भोजन करने बैठे, हरिप्रसाद को छोड़कर। हरिप्रसाद ने उन्हें बुलाया और कहा, ''अब बैठकर हमारे साथ भोजन कीजिए।'' उन्होंने हरिप्रसाद से कहा कि उन्हें बहुत से काम करने हैं और बाद में खा लेंगी, लेकिन हरिप्रसाद ने कुछ नहीं सुना, ''जब तक आप यहाँ आकर मेरे साथ भोजन नहीं करेंगी, मैं नहीं खाऊँगा, बस। मैं पिछले तीन दिनों से आपको देख रहा हूँ, खासकर इस सुबह। आप हमारा ध्यान रखने के लिए दौड़-भाग कर रही हैं और खुद एक मिनट के लिए नहीं बैठतीं। मैं चाहता हूँ कि आप थोड़ा आराम करें। अब बैठिए, कुछ खाइए और फिर आप जो भी कर रही हैं, वह कर सकती हैं। मैं भोजन नहीं करूँगा, जब तक आप साथ नहीं देंगी।''

श्यामला राजेंद्र कहती हैं, ''उन्होंने तब तक नहीं खाया, जब तक कि मैंने उनके साथ भोजन नहीं किया। मैं उनकी उदारता और परवाह करनेवाले स्वभाव से बहुत अभिभूत हुई। भोजन की तो छोड़िए, मुझे लगता था कि उन्होंने मेरी कड़ी मेहनत की ओर ध्यान नहीं दिया होगा। वह कॉन्सर्ट बहुत कामयाब रहा। हरिजी ने तब से कई बार इन दोनों (जॉर्ज ब्रुक्स और लैरी कॉएल) के साथ काम किया है।''

उस कॉन्सर्ट को रिकॉर्ड किया गया और लंदन में उसकी सी.डी. रिलीज की गई। उसके बाद बारबिकान सेंटर में एक और कॉन्सर्ट हुआ। तब से हरिप्रसाद की जॉर्ज ब्रुक्स के साथ बढ़िया भागीदारी रही है। ब्रुक्स, जिन्होंने न्यू इंग्लैंड कंजर्वेटरी में पश्चिमी शास्त्रीय संगीत और जैज का अध्ययन किया, ने नई दिल्ली में पं. प्राणनाथ से खयाल भी सीखा है। उनका 'सम्मिट' नामक अपना एक फ्यूजन बैंड है, जिसमें कृष्णा भट्ट (सितार), जाकिर हुसैन (तबला), फरीद हक (गिटार) और काई एखहर्ट (बास) हैं। पश्चिम के अधिकांश संगीतकारों की तरह उन्होंने भी पहली बार हरिप्रसाद का संगीत जाकिर हुसैन के फ्यूजन एलबम 'मेकिंग म्यूजिक' में सुना।

''मैंने पहली बार हरिजी का संगीत सुना और मुग्ध हो गया। उनकी ध्वनि इतनी शक्तिशाली, फिर भी इतनी सूक्ष्म थी, और उनमें कुछ ही स्वरों में किसी राग का भाव अभिव्यक्त करने की क्षमता थी। उम्मीद थी कि किसी दिन मुझे उनके साथ परफॉर्म करने का अवसर मिलेगा।'' जॉर्ज ब्रुक्स ने मुझे एक टेलीफोन इंटरव्यू में बताया, ''और जब श्यामला ने मुझे हरिजी के साथ परफॉर्म करने के लिए आमंत्रित किया तो वह एक सपने के साकार होने की तरह था। हम सन् 1999 या 2000 में मैसोनिक हॉल कॉन्सर्ट के लिए रिहर्सलों पर मिले। इस कॉन्सर्ट के लिए कुल रिहर्सल समय दो दिनों में कुछ घंटे ही था। हरिजी सहजता से बाहर आनेवाले सौंदर्य पर यकीन करते हैं, रिहर्सलों पर नहीं।''

उन्होंने कैलिफोर्निया, न्यूयॉर्क, शिकागो, इंग्लैंड और फ्रांस में विभिन्न स्थलों पर साथ मिलकर काम किया है। सन् 2002 में हरिप्रसाद, जॉर्ज ब्रुक्स, लैरी कॉएल और जाकिर हुसैन ने एक लेबानीज आउड-वादक चारबेल रौहाना के साथ दुबई में परफॉर्म किया। सन् 2006 में हरिप्रसाद और जॉर्ज ब्रुक्स के बैंड सम्मिट ने जॉर्ज वाशिंगटन यूनिवर्सिटी, कंसास स्टेट यूनिवर्सिटी और सैन फ्रांसिस्को के हरबस्ट थिएटर में बजाया। जॉर्ज ब्रुक्स हरिप्रसाद के साथ अपने संपर्क को 'पश्चिमी झलक के साथ भारतीय शास्त्रीय संगीत की ओर अधिक झुकाव' के रूप में बताते

हैं। अब तक सारा संगीत राग आधारित रहा है, हालाँकि जॉर्ज ब्रुक्स चाहते हैं कि किसी दिन हरिप्रसाद अपने अधिक पश्चिमी शैली के संगीत पर परफॉर्म करें। उन्होंने जो राग बजाए हैं, उनमें यमन, किरवानी, जोग, वाचस्पति, हंसध्वनि और शिवरंजनी शामिल हैं। कुछ हिस्सों की रिहर्सल की जाती है, लेकिन अधिकांश संगीत सहज उद्भूत होता है। इसी समय जॉर्ज उसमें उतरते हैं और एक 'सवाल-जवाब' तरीके से हरिप्रसाद का अनुसरण करते हैं। हरिप्रसाद और उनके संगीत पर जॉर्ज कहते हैं, ''हालाँकि भारतीय संगीत को आमतौर पर एक हारमोनिक संगीत के रूप में नहीं देखा जाता है, हरिजी सावधानी से ऐसे सुर-ताल गढ़ते हुए जाज संगीतकारों का 'हारमोनिक टेंशन' निर्मित करते हैं, जो पश्चिमी संगीत के अभ्यस्त कान राग के अंतर्निहित हारमोनिक बनावटों के रूप में सुनते हैं। हालाँकि भारतीय शास्त्रीय संगीत में इन हारमोनिक ढाँचों का वर्णन करने के लिए शब्दावली नहीं है, यह स्पष्ट है कि हरिजी उन्हें सुनते हैं और खूबसूरती से अभिव्यक्त करते हैं।''

जॉर्ज ब्रुक्स की यह टिप्पणी फ्यूजन के क्षेत्र में हरिप्रसाद की कामयाबी की वजह को स्पष्ट करती है। एक भारतीय धुन को वह इस तरह पेश करते हैं कि वह बेमेल लगे बिना अपने पश्चिमी सुर के साथ संगत लगता है।

''मंच पर आने की प्रतीक्षा में आप उनकी उँगलियाँ बाँसुरी पर फिरते, संगीत को ग्रहण करते, उसका विश्लेषण करते और भावी संदर्भ के लिए अपने दिमाग में कहीं उसे रखते देख सकते हैं। हरिजी के बगल के एक होटल के कमरे में रहते हुए मैंने महसूस किया कि वह हर समय रियाज करते रहते हैं। संगीत में गहराई से डूबे हुए हैं। उसके बारे में सोचते हैं, जिस पर काम करते हैं, अन्वेषण और विकास करते रहते हैं। हर समय संगीत की सदा बहती धारा में डूबे रहना चाहते हैं। वह एक विरोधाभासी हैं। हालाँकि जाज और पश्चिमी शास्त्रीय संगीत को सावधानी और गहराई से सुनते हैं, मुझे लगता है कि हरिजी को अपनी व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के लिए भारतीय शास्त्रीय संगीत से बाहर देखने की जरूरत नहीं पड़ती। मुझे लगता है कि हरिजी और कई महान् भारतीय शास्त्रीय कलाकारों के लिए राग एक संपूर्ण और पूर्ण विकसित कला-रूप है। पश्चिमी संगीतकार इतने संतुष्ट नहीं होते और इसलिए हमेशा अभिव्यक्ति के नए रूपों की तलाश में रहते हैं।''

''हरिजी मजे के लिए लोगों को उकसाना पसंद करते हैं।'' जॉर्ज ने फोन पर मुझे बताया? ''एक शाम एक कॉन्सर्ट के बाद रात के भोजन से निबटकर उन्होंने मुझसे कहा, 'जॉर्ज, आपको राग छायानट सीखना चाहिए।' 'हरिजी, क्या हम उस पर परफॉर्म करने जा रहे हैं?' मैंने पूछा। 'नहीं, मैं कभी छायानट नहीं बजाता, लेकिन आपको वह सीखना चाहिए। कभी आपका बेटा आपसे उसके बारे में पूछ सकता है और अगर आप जवाब न दे पाए तो आपको बुरा लगेगा।''

नवंबर 2002 में किसी समय जॉर्ज ने हरिप्रसाद को फोन करके पूछा कि लंदन में उनके होनेवाले कॉन्सर्ट के लिए किन रागों को लेना है। हरिप्रसाद उतने ही सहज थे, ''जॉर्ज, आप सभी राग जानते हैं?'' उन्होंने जवाब दिया, ''राग यमन हो सकता है।'' हरिप्रसाद की फ्लाइट विलंब से पहुँची और उस शाम के परफॉर्मेंस के लिए रिहर्सल एक छोटे से रेस्तराँ में नाश्ते के साथ हुई, जब हरिप्रसाद बंधिश गा रहे थे, विजय घाटे मेज बजाते हुए लय दे रहे थे और दूसरे बस धुन को सुन और याद कर रहे थे, फिर हरिप्रसाद सोने के लिए अपने होटल के कमरे में चले गए, क्योंकि वह थके हुए थे और ठीक शो से पहले जगे।

एक और दिलचस्प संगीत संयोजन एक हार्प वादक और डच-हंगेरियन माता-पिता की बेटी ग्वेनेथ वेंटिंक के साथ हुआ। वह हरिप्रसाद से काफी लंबी हैं तथा उनकी हार्प और भी लंबी है। एम्सटर्डम में उनके अपार्टमेंट तक छोटी सी सीढ़ियाँ चढ़ते हुए मैं सोच रहा था कि वह उसे कमरे में कैसे ले जाती हैं। वह हार्प बहुत खूबसूरत है, नायलोन के तारों एवं फुट पैडलों के साथ पॉलिश की हुई लकड़ी और सोने से बनी यह हार्प किसी कलाकार का

सपना है और वह पूरी खूबसूरती व संवेदनशीलता से उसे बजाती है, जो ऐसे सुंदर वाद्ययंत्र के बिलकुल अनुकूल है।

संगीत से जुड़े माता-पिता से जनमी ग्वेनेथ ने पश्चिमी शास्त्रीय संगीत सीखा था। बचपन में एक कॉन्सर्ट में उन्होंने पहली बार एक हार्प देखी और फैसला किया कि उन्हें वही वाद्य बजाना है। यूट्रक्ट के म्यूजिक कंजर्वेटरी में उनके सबक पाँच साल की उम्र से शुरू हुए और उन्होंने छह वर्ष की उम्र से अपना शुरुआती परफॉर्मेंस देना शुरू कर दिया था। सोलह वर्ष की आयु में उन्होंने हाई स्कूल पास किया और साथ ही इजरायल में आयोजित दुनिया की एक सबसे बड़ी हार्प प्रतियोगिता भी जीती।

वह कई बार भारत आई हैं। पहली बार एक किशोरी के रूप में उन्होंने राजस्थान में ध्यान सीखने की कोशिश की। उनका दूसरा भारत आगमन अधिक लंबा और संगीत पर अधिक केंद्रित था। उन्होंने सितार सीखा और कई भारतीय शास्त्रीय कंसर्टों में गईं। वह डच म्यूजिक प्राइज की भी विजेता रहीं, जो नीदरलैंड्स सरकार द्वारा तीन वर्षीय एक परियोजना के अंत में दिया जानेवाला सबसे प्रतिष्ठित संगीत संबंधी पुरस्कार है। परियोजना में उनकी मदद करने का काम जॉन फ्लोर को सौंपा गया, जिनको हरिप्रसाद को रॉटरडम कंजर्वेटरी में लाने का श्रेय जाता है। जॉन फ्लोर ने उनका परिचय हरिप्रसाद से कराया और उनका साथ में पहला कॉन्सर्ट न्यूयॉर्क में 'समर्पण' नाम से हुआ, जिसमें जॉर्ज ब्रुक्स (सैक्सोफोन), विजय घाटे (तबला) और श्यामला राजेंद्र (तानपुरा) शामिल थे और उसके बाद कई कॉन्सर्ट हुए, जिनमें एक लंदन के क्वीन एलिजाबेथ हॉल, लिले (फ्रांस) के ओपेरा हाउस और एक एम्सटर्डम में हुआ।

''न्यूयॉर्क का कॉन्सर्ट डरावना था,'' मेरे पूछने पर वह हँसने लगीं, ''पाँच की उम्र से संगीत बजानेवाली पश्चिमी शास्त्रीय संगीतकार के रूप में मैं संगीत पढ़ने की अभ्यस्त थी और उसे छोड़ना बहुत मुश्किल है,'' न्यूयॉर्क के लिए विमान में सवार होने से पहले उन्होंने पूछा, ''हरिजी, हम क्या बजाने जा रहे हैं?'' इसका जवाब उन्होंने अपने चिर-परिचित शरारती लहजे में देते हुए कहा, ''हम संगीत बजाएँगे।'' ग्वेनेथ ने अपना आग्रह जारी रखा, ''हाँ, हरिजी, लेकिन आपको नहीं लगता कि हमें एक कंपोजिशन लिखना चाहिए?'' उन्होंने कहा, ''बिलकुल, मैं विमान में उसे लिखूँगा।'' लेकिन एक बार विमान में चढ़ने के बाद वह तुरंत सो गए, जबकि अत्यंत घबराई ग्वेनेथ उनकी बगल में बैठी रहीं। फ्लाइट के उतरने से लगभग पैंतालीस मिनट पहले उन्होंने आँखें खोलीं, ग्वेनेथ से कलम माँगा और अभी-अभी सोचे गए कंपोजिशन को गुनगुनाते हुए एक कागज पर उतारकर उन्हें दिया। सौभाग्य से कॉन्सर्ट से पहले अभी एक पूरा दिन बाकी था, इसलिए वह जॉर्ज ब्रुक्स के पास गईं, जिन्होंने पश्चिमी नोटेशन में उसे लिखने में मदद की। उनकी संगीत शिक्षा में ठीक-ठीक कार्यक्रम और रिहर्सलों की जरूरत होती थी, इसलिए यह उनके लिए एक बिलकुल नया अनुभव था, ''हरिजी के साथ सबकुछ बहुत सरल और शुद्ध होता है। हमने डेढ़ घंटे तक बजाया और कॉन्सर्ट समाप्त होने के बाद मैं आश्चर्यचकित थी, क्योंकि ऐसा लग रहा था, मानो हमने अभी-अभी शुरू किया था!''

16 मई, 2005 को मैनहट्टन के वाल्डोर्फ-एस्टोरिया के ग्रैंड बॉलरूम में आयोजित वह कॉन्सर्ट एक स्प्रिंग बेनिफिट गाला का ग्रैंड फिनाले था और उससे अमेरिकन इंडिया फाउंडेशन (ए.आई.एफ.) के लिए लगभग 10 लाख डॉलर एकत्रित करने में मदद मिली। वर्ष 2001 में बिल क्लिंटन और अटल बिहारी वाजपेयी की ओर से ए.आई.एफ. मूल रूप से गुजरात के भूकंप प्रभावित इलाकों के पुनर्निर्माण में मदद के लिए स्थापित किया गया था। इस कॉन्सर्ट को रिकॉर्ड करके नवरस रिकॉर्ड्स द्वारा 'किरवानी बाई समर्पण : मेसेज ऑफ द बर्ड्स' के रूप में रिलीज किया गया।

ग्वेनेथ लोगों के साथ हरिजी के संपर्क को भी बहुत अलग पाती हैं, ''कंसर्टों के बाद जब हम भोजन के लिए किसी रेस्तराँ में जाते हैं (आमतौर पर एक भारतीय रेस्तराँ में) तो लोग उन्हें जैसा सम्मान देते हैं और वह उन्हें जिस तरह की इज्जत देते हैं, उसे देखना बहुत अच्छा लगता है।''

ब्रुक्स और कॉएल के साथ हरिप्रसाद के पूर्व-पश्चिम संयोग से प्रेरित श्यामला राजेंद्र ने उन्हें एक अधिक लोकप्रिय शास्त्रीय संगीतकार के साथ लाने का फैसला किया। उन्होंने लेबनीज/सिसिलियन माता-पिता की संतान एवं एक ब्राजीलियन कंपोजर एग्बर्टो गिस्मोंटी का संगीत सुना और पसंद किया था। उन्होंने फोन पर उनसे बात की और फिर मिलने तथा हरिप्रसाद के साथ एक जुगलबंदी करने का प्रस्ताव रखने के लिए रियो गईं। वह बहुत खुश हुए और तुरंत तैयार हो गए। इसके बाद उन्होंने यह प्रस्ताव हरिप्रसाद के सामने रखा। वह भी काफी उत्साहित हुए। उन्होंने तबला पर विजय घाटे एवं ताल वाद्य पर शिवमणि को लिया और उसे 'म्यूजिक विदाउट बाउंड्रीज' शीर्षक दिया, जिसे हरिप्रसाद के बेटे राजीव से लिया।

यह कॉन्सर्ट डेवीज सिंफनी हॉल में आयोजित हुआ, जो सैन फ्रांसिस्को में एक प्रतिष्ठित और विशिष्ट स्थान है। हरिप्रसाद वहाँ प्रस्तुत किए जानेवाले पहले भारतीय संगीतकार थे। कंसर्ट से पहले हरिप्रसाद और एग्बर्टो गिस्मोंटी को 7 सितंबर, 2000 को बर्कले में के.पी.एफ.ए.—एफ.एम. रेडियो के 'म्यूजिक ऑफ द वर्ल्ड शो' में लाइव लाया गया। इस शो की मेजबानी जेन हैवेन कर रहे थे, जिन्होंने इन दोनों का 'दो संत, दो जादूगर : संगीत के उस्ताद' कहकर परिचय दिया।

वर्ष 2004 में श्यामला ने हरिप्रसाद और पखावज पर भवानी शंकर के साथ अमेरिका और कनाडा का बीस दिन का टूर बनाया, जिसमें उनकी एक युवा शिष्या देवप्रिया चटर्जी और किशोर तबला-वादिका 'तबला की शहजादी' रिम्पा सिवा शामिल थीं। श्यामला ने इस टूर का नाम 'मेस्ट्रोज ऑफ टुडे एंड टुमारो' रखा। यह टूर बहुत सफल रहा। रिम्पा सिवा ने अपनी कला-मर्मज्ञता और उँगलियों की दक्षता से श्रोताओं को मोह लिया। प्रेस, श्रोताओं और समीक्षकों ने दोनों युवा लड़कियों के तारीफ के पुल बाँध दिए। साथ ही उन्होंने हरिप्रसाद की भी तारीफ की, जो इतने वरिष्ठ कलाकार होते हुए भी देवप्रिया एवं रिम्पा जैसे उभरते युवा कलाकारों को बढ़ावा दे रहे थे और उन्हें अमेरिकी श्रोताओं के आगे प्रस्तुत कर रहे थे। उन्होंने अपनी इच्छा से उन्हें प्रमुखता दी और अपनी क्षमता दिखाने का अवसर दिया। रिम्पा और कुछ हद तक देवप्रिया को श्रोताओं से कई आर्थिक पुरस्कार मिले।

न्यू मेक्सिको की भूमि पर नारियल फोड़ते हुए।

श्यामला ने अलबुकर्की से 45 मील दक्षिण-पश्चिम में ग्रामीण न्यू मेक्सिको में लगभग 20 एकड़ जमीन भी खरीदी है, ताकि हरिप्रसाद वहाँ पर एक बाँसुरी गुरुकुल बना सकें। भगवान् कृष्ण के वृंदावन की तरह उस स्थान को बनाने की उनकी विस्तृत योजनाएँ हैं, जहाँ मोर और हिरन स्वतंत्र विचरण करते हों और विद्यार्थी बड़े वृक्षों की छाया में संगीत सीखें, लेकिन फिलहाल वह सपने से अधिक कुछ नहीं है। उनकी वैश्विक प्रतिबद्धताएँ उन्हें अमेरिका में पढ़ाने से रोकती हैं और उनकी उपस्थिति की गारंटी के बिना निर्माण के लिए आवश्यक फंड जुटाना

असंभव है। हरिप्रसाद और उनकी पत्नी कुछ वर्ष पहले जमीन देखने गए थे। उन्होंने वहाँ एक छोटी सी पूजा करके नारियल फोड़ा, जो आमतौर पर निर्माण आरंभ करने से पहले किया जानेवाला एक शुभ भारतीय रिवाज है। आशा करते हैं कि उस जमीन पर भी किसी दिन गुरुकुल होगा।

जिस संगठन के माध्यम से अमेरिका में हरिप्रसाद के कार्यकलापों का प्रबंधन किया जाता है, उसे बृंदावन गुरुकुल इंक (बी.जी.आई.) कहा जाता है, जो सन् 1996 में स्थापित एक गैर-लाभकारी निगम है, जिसके संस्थापक और सी.ई.ओ. हरिप्रसाद हैं तथा श्यामला उसकी अध्यक्षा व कानूनी सलाहकार हैं। हरिप्रसाद के अपने कॉन्सर्ट टूरों की व्यवस्था करने के अलावा उन्होंने समय-समय पर शास्त्रीय गायन, बाँसुरी, तबला और अन्य वाद्यों में कार्यशालाएँ भी आयोजित की हैं। कोनार्क सेंटर बी.जी.आई. का हाल में स्थापित प्रयास है, जिसका उद्‌देश्य तनाव प्रबंधन और संपूर्ण स्वास्थ्य प्रबंधन करना है। यह ऐसे लोगों के लिए है, जो संगीत के गंभीर विद्यार्थी नहीं हैं, लेकिन जो फिर भी योग व ध्यान के साथ संगीत सुनना या सीखना चाहते हैं। श्यामला उसे जारी रखने के लिए पर्याप्त अनुदान प्राप्त करने की प्रक्रिया में हैं।

तेज कारों और तेज ड्राइविंग के साथ हरिप्रसाद की दीवानगी का श्यामला को भी प्रत्यक्ष अनुभव है। वर्ष 2002 में श्यामला, हरिप्रसाद और विजय घाटे टूर पर थे। उनका एक शनिवार को शिकागो में कॉन्सर्ट था, रविवार को डेनवेर में और उसके बाद अगले शनिवार तक कोई कॉन्सर्ट नहीं था। श्यामला ने हरिप्रसाद को तीन विकल्प दिए। पहला, डेनवेर में रुककर शहर और आस-पास के इलाकों को देखना, दूसरा, पाँच दिनों के लिए विमान से सैन फ्रांसिस्को जाना और तीसरा, तीन दिनों के लिए लॉस वेगास तक ड्राइव करके जाना। जैसी कि उम्मीद थी, उन्होंने तीसरा विकल्प चुना। डेनवेर और लॉस वेगास के बीच 700 मील की दूरी, जिसमें एक ओर से डेढ़ दिन लगते, तक ड्राइव करने के विचार से हरिप्रसाद प्रसन्न हो गए। वह दोनों ओर से कम-से-कम आधी दूरी तक खुद ड्राइव करना चाहते थे। डेनवेर और लॉस वेगास के बीच गति की कोई सीमा नहीं है; लेकिन अधिकतम 75 मील प्रति घंटा (112 कि.मी. प्रति घंटा) तक चलाने की हिदायत दी जाती है। हरिप्रसाद को लगभग 90 मील की रफ्तार तक सीमित रखने में श्यामला को काफी मेहनत करनी पड़ रही थी। वह 80 मील प्रति घंटा की रफ्तार से चल रहे 18 पहियोंवाले ट्रकों से आगे निकल रहे थे। हर बार जब हरिप्रसाद उनमें से किसी एक को पीछे छोड़ते, वैन खतरनाक तरीके से हवा के दबाव में हिलती। पीछे बैठे विजय घाटे का दिल हलक में अटका हुआ था। हर कुछ समय बाद वह श्यामला की ओर उम्मीद से देखते हुए उनसे अनुरोध करते कि हरिप्रसाद को हटाकर खुद गाड़ी चलाएँ। वे सुरक्षित और स्वस्थ लॉस वेगास पहुँच गए और जैसा कि श्यामला कहती हैं, ''हमने लॉस वेगास में खूब आनंद उठाया। हरिजी ने स्लॉट मशीनों पर जुआ खेला और कुछ डॉलर जीते। उस दौरे का मुख्य आकर्षण 'ओ' नामक 'सर्क डु सोलील' का एक शो था, जो एक अद्‌भुत वाटर बैले और एक्रोबैटिक्स शो था। हरिजी के साथ रहना बहुत मजेदार था।''

हाँ, एक वरिष्ठ शास्त्रीय संगीतकार और बाँसुरी के पंडित हरिप्रसाद चौरसिया को स्लॉट मशीनों पर खेलते और खतरनाक गति पर गाड़ी चलाते देखने की कल्पना करना असंभव है, लेकिन वह हम सबकी तरह आम आदमी हैं और जो लोग उन्हें जानते हैं, वे यकीन के साथ कहते हैं कि वह किसी निपुण ड्राइवर की तरह चलाते हैं। रिकॉर्ड के लिए, हालाँकि नियमित रूप से नहीं पीते, वह कभी-कभार अत्यंत शुष्क रेड वाइन का आनंद उठाना पसंद करते हैं, जिसे वह आयुर्वैदिक द्रव द्रक्षासव का पश्चिमी संस्करण मानते हैं।

जाकिर हुसैन के साथ हरिप्रसाद के लंबे संबंध से वास्तव में खूबसूरत कुछ संगीत उत्पन्न हुआ है, जो जाकिर के अत्यंत सराहे गए एलबम 'मेकिंग म्यूजिक' से शुरू हुआ था। उसे ओस्लो के रेनबो स्टुडियो में सन् 1986-87 में

रिकॉर्ड किया गया था, जिसमें फ्यूजन गुरु 'महाविष्णु' जॉन मैक्लाफ्लिन गिटार पर और जान गारबारेक सैक्सोफोन पर थे। कई पश्चिमी संगीतकारों और हरिप्रसाद के अधिकतर यूरोपीय विद्यार्थियों ने उनका संगीत पहली बार इसी एलबम द्वारा सुना और फ्यूजन के बारे में बात होने पर इसी का संदर्भ दिया जाता है।

यहाँ जॉन मैक्लाफ्लिन के साथ शुरू हुए संबंध ने इन दोनों द्वारा एक कॉन्सर्ट को प्रेरित किया, जिसे हरिप्रसाद के बेटे राजीव चौरसिया ने आयोजित किया था। हालाँकि हरिप्रसाद जाकिर और मैक्लाफ्लिन के फ्यूजन बैंड शक्ति के सदस्य नहीं हैं, आप उन्हें उनके सितंबर 1997 के यू.के. टूर पर एक विशेष अतिथि की भूमिका में सुन सकते हैं, जिसे 'रिमेंबर शक्ति' नामक दो सी.डी. के एक सेट में रिलीज किया गया था।

जाकिर और हरिप्रसाद के विश्व संगीत प्रयासों में बुस्तान अब्राहम नामक एक इजराइली बैंड के चौथे एलबम 'फनार' में अतिथि भूमिका भी शामिल है। इस एलबम में हरिप्रसाद ने अन्य वाद्य यंत्रों के साथ फिट होने के लिए एक खासतौर पर 'विस्तृत' (Broad) बाँसुरी की ध्वनि उत्पन्न की है, जो दूसरे वाद्य-यंत्रों, जैसे आउड, क्वानून, दुरबाक्कारिक और केजोन के साथ फिट हो जाती है, जिससे कुल मिलाकर जो ध्वनि उत्पन्न होती है, वह बहुत अरेबिक/मध्य-पूर्वी है। हरिप्रसाद ने ग्रीक गिटार-वादक मैकिस एबलिएनाइटिस के एक एलबम 'बहार' के पंद्रह में से छह ट्रैकों में भी बाँसुरी-वादन किया है, जिसका एक हिस्सा ग्रीस में और एक हिस्सा मुंबई में रिकॉर्ड किया गया है।

हरिप्रसाद ने इंग्लैंड में दो सिंफनी बनाईं, एक बी.बी.सी. के लिए और दूसरी बकिंगहम रॉयल बैले कृष्णा के लिए। कृष्णा को मिश्रित प्रतिक्रिया मिली, जैसा कि बैले पत्रिका में टेरी एमोस की इस समीक्षा से स्पष्ट है—'संगीत हरिप्रसाद चौरसिया ने बनाया था और एमा हल्दीपुर ने ऑर्केस्ट्रा दिया था। समीक्षकों द्वारा उसकी हँसी उड़ाई गई और कुछ ने उसे 'बॉलीवुड' कहा। शायद ऐसा ही था, लेकिन मैंने कई स्थानों पर बहुत खुशनुमा एवं अधिकांशत: बहुत सुरीला पाया और मुझे वह बहुत पसंद आया।''

हरिप्रसाद की सबसे खूबसूरत संगीत रचना रॉटरडम कंजर्वेटरी में उनके लंबे समय के दौरान बोरियत से उत्पन्न हुई। सप्ताह के दौरान वह दुनिया भर के विद्यार्थियों को संगीत सिखाने में व्यस्त रहते थे, लेकिन सप्ताहांतों, ईस्टर और अन्य अवकाशों के दौरान कुछ काम न होने से उनके जैसे सक्रिय व्यक्ति को बहुत परेशानी होती है। एकरसता के ऐसे ही एक असहनीय काल के दौरान उन्होंने एक कंचेरटो बनाना शुरू किया। वह अकसर एक ऐसी संगीत रचना बनाने का सपना देखते थे, जिसमें पश्चिम और पूर्व की शास्त्रीय परंपराओं का विलय हो। अपने खाली समय में लगातार काम करते हुए उनके दिमाग में विचार आने लगे और धुनें अपने आप बनने लगीं। उन्होंने अपने सहायक हेनरी टोरनियर को वे धुनें सुनाईं। अत्यंत उत्साहित हेनरी अपने साथ वे धुनें पेरिस ले गए और कुछ शास्त्रीय संगीतकारों को सुनाया। उसके बाद उन धुनों को एक पोलीफोनिक आयाम और हर गति को एक भिन्न शैली देने के लिए कंपोजर पाब्लो क्युएको की प्रतिभा की मदद ली गई। जाज पियानो-वादक और कंपोजर पैट्रिशियो विलारोल को धुनों के ऑर्केस्ट्रा संबंधी भागों और यह सुनिश्चित करने का काम सौंपा गया कि परिष्कृत हिस्से लिखित भागों से अधिक दूर न जाएँ। तबले पर संगत शुभंकर बनर्जी ने दी, जबकि ऑर्केस्ट्रा का पृष्ठभूमि संगीत ल'ऑर्केस्ट्रे ट्रांसेस यूरोपीनेज ने दिया, जिन्होंने 1996 से 26 और 27 फरवरी, 1999 को पेरिस के थिएटर द ला विले में फाइनल कॉन्सर्ट तक पूरी परियोजना के दौरान बिना थके मेहनत की। इस शो को 'आदि अनंत' नाम दिया गया, जिसका संस्कृत में मतलब अंत के बिना शुरुआत होता है। बाँसुरी, तबला और चैंबर ऑर्केस्ट्रा के रूप में इसे रिकॉर्ड किया गया और नवरस द्वारा 'आदि अनंत' के रूप में रिलीज किया गया। खूबसूरती और तकनीकी क्षमता के अर्थों में वह अपनी तरह के अन्य कंचेटो की बराबरी में ठहरता है, जैसे रवि शंकर की 'कंचेरटो फॉर

सितार एंड स्ट्रिंग्स', केन हंट के 'लाइनर नोट्स' बहुत खूबसूरत हैं, जो फ्यूजन के प्रेमियों के लिए पढ़ना जरूरी है।

हरिप्रसाद की संगीत प्रतिभा दुनिया भर में फैली लगती है। अगर वह कहीं पर संगीत की शिक्षा नहीं दे रहे होते हैं तो उनका कोई विद्यार्थी या सहयोगी उनका झंडा लहराता रहता है। इटली में वह लॉरेंजो स्क्वीलारी हैं, जो अपनी पत्नी और सात बच्चों के साथ देश के उत्तरी भाग में एक फार्म में रहते हैं और विसेंजा के कंजर्वेटरी में बाँसुरी सिखाते हैं। सन् 1958 में अल्बा में जनमे लॉरेंजो ने सिल्वर फ्लूट और सैक्सोफोन बजाते हुए शुरुआत की। उन्होंने बीस की उम्र में भारत की यात्रा की। सन् 1978 में पश्चिम के युवाओं के लिए 'अपने अस्तित्व की खोज में' एक लोकप्रिय यात्रा की। यहीं पर पहली बार भारतीय शास्त्रीय संगीत के सौंदर्य का अनुभव किया। उसके तुरंत बाद जापान के दौरे पर वह उस्ताद अली अकबर खाँ के एक शिष्य से मिले और पहली बार खाँ साहब की रिकॉर्डिंग सुनी। वह अली अकबर खाँ के संगीत की गहराई और भव्यता से इतने प्रभावित थे कि वह अली अकबर खाँ से शास्त्रीय गायन सीखने के लिए सैन रफएल में उनके कॉलेज में गए और डलास स्मिथ से बाँसुरी सीखी। सन् 1983 में वह अली अकबर कॉलेज में हरिप्रसाद से मिले। निम्नलिखित अंश मुझे भेजे गए उनके ई-मेल का है—

''मैं सन् 1983 के वसंत में हरिजी से मिला। वह अली अकबर कॉलेज में आए थे और उन्होंने अपने कॉन्सर्ट के लिए एक तानपुरा-वादक माँगा था। चूँकि मैं एकमात्र बाँसुरी का विद्यार्थी था, मुझे उनका साथ देने को कहा गया। उस समय तक कैलिफोर्निया की जनता हरिजी से परिचित नहीं थी। खाँ साहब ने मुझे बताया था कि वह उनकी बहन के साथ पढ़े हैं और वह एक उत्कृष्ट संगीतकार हैं। उनका कॉन्सर्ट सम्मोहित करनेवाला था। उन्होंने राग भूपाली इस तरीके से सुनाया कि मुझे आज भी अच्छी तरह याद है। उस कॉन्सर्ट में मैंने फैसला किया कि मैं अपनी बाकी जिंदगी बाँसुरी बजाऊँगा। जब मैंने हरिजी से बात की तो उन्हें बताया कि मैं अपने लिए बाँसुरियाँ बनाने की कोशिश कर रहा हूँ और उन्होंने तत्काल उन्हें देखना व आजमाना चाहा। मुझे याद है कि उन्होंने कहा था कि सही सुर निकालनेवाली बाँसुरी पाना कितना जरूरी, मगर कितना मुश्किल है। मैं यह सुनकर प्रभावित हुआ कि ऐसा उस्ताद लगातार बेहतर बाँसुरियों की तलाश में है। अब तक मैंने कभी उन्हें एक ही बाँसुरी से दो कंसर्टों में बजाते हुए नहीं देखा।

''मैंने सन् 1990 तक कैलिफोर्निया में उस्ताद अली अकबर खाँ के साथ पढ़ाई की। इस बीच मेरी पहली बेटी का जन्म हुआ और मुझे इटली में अपने परिवार के साथ बसने की जरूरत महसूस हुई। मैंने गाँव में एक छोटा खेत खरीदा और अपना परिवार शुरू किया, जिसमें सात बच्चे आए, चार लड़के और तीन लड़कियाँ। रियाज करते रहने के लिए तथा सीखी हुई चीज को और बेहतर करने के लिए मैंने अधिक-से-अधिक बाँसुरियाँ बनानी शुरू कर दीं, जो आखिरकार एक पूर्णकालिक व्यवसाय बन गया। मैं अब भी हर गरमियों में अली अकबर कॉलेज जाता हूँ और हर दो या तीन सालों पर बाँस की तलाश में भारत जाता हूँ और यथासंभव वहाँ के कंसर्टों में हरिजी से मिलने की कोशिश करता हूँ। मैं सबसे पहले हरिजी से सन् 1995 में रॉटरडम कंजर्वेटरी में मिला। मुझे याद है कि उन्होंने सुबह हमें सिखाना शुरू किया और शाम तक नहीं रुके। जो कॉन्सर्ट मुझे सबसे उल्लेखनीय लगा, वह कलकत्ता में सन् 1996 में हुआ। उन्होंने एक निजी समारोह में बाँसुरी-वादन किया था। वह एक दूसरे कॉन्सर्ट से मध्य रात्रि के बाद आए थे। श्रोताओं का उत्साह समाप्त हो चुका था, लेकिन जैसे ही उन्होंने बजाना शुरू किया, वहाँ का वातावरण जादू में बदल गया। वह एक अद्भुत रात थी। कॉन्सर्ट के बाद मुझे एक तीसरे कॉन्सर्ट में साथ ले गए, जो कलकत्ता के दूसरे छोर पर था, जहाँ उन्होंने भोर तक बाँसुरी-वादन किया। सुबह-सुबह उन्होंने मुझे मेरे गेस्टहाउस के पास छोड़ा और हवाई अड्डे के लिए निकल गए। उस समय और अब भी उनकी ऊर्जा अविश्वसनीय है।

''वर्ष 2002 में विसेंजा कंजर्वेटरी ने भारतीय शास्त्रीय अध्ययन में एक यूनिवर्सिटी कोर्स शुरू किया और मुझे बाँसुरी के शिक्षक की नौकरी का प्रस्ताव दिया। पिछले छह वर्षों के क्रम में लगभग 60 विद्यार्थी मेरी बाँसुरी कक्षाओं में आए हैं। वहाँ हिंदी, संस्कृत, एथनोम्यूजिकोलॉजी, भारतीय इतिहास, भारतीय संगीत सिद्धांत, तबला, सितार और शास्त्रीय गायन जैसे दूसरे विषय भी हैं। वह तीन साल का कोर्स है, जिसमें दो वर्ष की विशेषज्ञता है। मैं दो बार अपनी कंजर्वेटरी में हरिजी के लिए कॉन्सर्ट और एक मास्टर कक्षा आयोजित करने में खुशकिस्मत रहा। इस साल (वर्ष 2007) मैं विस्मित हो गया, जब कॉन्सर्ट से पहले शाम को उन्होंने मुझे मंच पर अपना साथ देने को कहा। वह एक यादगार अनुभव था। मैं बहुत घबराया हुआ था, लेकिन वह बहुत नम्र व सहयोगपूर्ण थे और मुझे आत्मविश्वास दिला रहे थे। कंजर्वेटरी में हमारे तबला शिक्षक फेडेरिको सानेसी ने हमारा साथ दिया। श्रोता ज्यादातर इटली से आए थे और हरिजी को दो इटेलियन संगीतकारों के साथ परफॉर्म करते देखकर बहुत उत्साहित थे। वह भी बहुत प्रसन्न थे। इस वर्ष मई में लगभग पच्चीस लोग उनकी मास्टर कक्षा में आए, जिनकी संख्या ने उन्हें भी प्रभावित किया। सब लोग उनके सिखाने से उत्साहित और अत्यंत प्रेरित थे, जो रचनात्मकता और आजादी पर जोर देते हैं। उनकी प्रसिद्धि इटली में फैल रही है, जिससे हमारी कंजर्वेटरी मेरे देश के संगीत-प्रेमियों को आकृष्ट कर रही है। हम उन्हें फिर से आमंत्रित करना चाहते हैं, क्योंकि उन्होंने भारत और इटली के बीच संपर्क स्थापित करने में मदद की है।''

कनाडा में कैथरीन पॉटर नामक उनकी एक छात्रा है, जो बाँसुरी बजाती और सिखाती है। बचपन में कैथरीन ने रिकॉर्डर बजाने से शुरुआत की, क्योंकि वह उनके लिए सहज था। उन्होंने बचपन में पियानो भी सीखा। युवावस्था में सिल्वर फ्लूट सीखना शुरू किया, लेकिन खुद को एक पश्चिमी संगीतकार नहीं मानतीं। वह महसूस करती हैं कि बाँसुरी उनकी असली आवाज है। उनके पास एक सिल्वर फ्लूट है, जो साथ रखती हैं, लेकिन कभी नहीं बजातीं। उन्होंने फ्रेंच में बी.ए. की डिग्री, शिक्षण की डिग्री, संगीत शिक्षण की डिग्री, संगीत में अंडरग्रेजुएट डिग्री और हरिप्रसाद चौरसिया पर एक थीसिस के साथ एथनोम्यूजिकोलॉजी में मास्टर्स डिग्री प्राप्त की है। फिर भी वह अपनी किसी भी उपलब्धि को असली शिक्षा नहीं मानतीं। वह कहती हैं, ''मैंने एशिया की अपनी यात्राओं में उससे काफी अधिक सीखा है। मेरी सबसे बड़ी शिक्षा वह रही है, जो मैंने गुरुजी से कक्षा में या मंच पर उनके साथ बैठकर तानपुरा बजाते हुए, उन्हें बाँसुरी-वादन करते हुए, उन्हें एक ही राग को प्रस्तुत करने के नए तरीके विकसित करते देखते हुए, उन्हें श्रोताओं के साथ संपर्क करते हुए और उन्हें संगीत की ओर आकृष्ट करते देखते हुए सीखा है।''

कैथरीन पहली बार सन् 1982 में भारत आईं और वाराणसी में कुछ महीनों तक बाँसुरी सीखी। बाजार में बजता 'कॉल ऑफ द वैली' का कैसेट हरिप्रसाद के संगीत से उनका पहला परिचय था। उस वर्ष बाद में कनाडा वापस जाते हुए वह एम्सटर्डम में रुकीं हरिप्रसाद वहाँ एक चर्च में बाँसुरी बजा रहे थे। उन्होंने सब लोगों के जाने तक इंतजार किया, फिर उनसे मिलीं। उन्होंने बैठकर बातें कीं। हरिप्रसाद ने उन्हें बताया कि वह अगले वसंत में कनाडा में होंगे और कैथरीन को सिखाकर उन्हें खुशी होगी। तब से वह उनसे सीख रही हैं। भारतीय संगीत के प्रति उनका समर्पण उल्लेखनीय है। वह सन् 1989 के बाद से नियमित रूप से भारत आ रही हैं, तब तक हरिप्रसाद ने गुरुकुल स्थापित नहीं किया था। वह एक चॉल में रहती थीं और एक म्यूनिसिपल पार्क के एक खाली कमरे में संगीत के सबक लेती थीं। सन् 1995 तक सिखाने का स्थान बदलकर एक म्यूनिसिपल स्कूल की एक कक्षा हो गया। वह शायद सबक रिकॉर्ड करनेवाली उनकी पहली विद्यार्थी है, जिसे उन्होंने अपनी थीसिस के लिए इस्तेमाल किया। एक पश्चिमी संगीतकार के रूप में एक इतने ख्यात पंडित से नि:शुल्क सीखना एक अलग चीज थी। जब पहली बार उन्होंने हरिप्रसाद को पैसे देने का प्रस्ताव रखा तो वह काफी गंभीर हो गए और उनसे कहा, ''मैं दो वजहों से

अपने विद्यार्थियों से पैसे नहीं लेता। पहला, जब किसी रिश्ते में पैसा आ जाता है तो वह रिश्ता खराब हो जाता है। दूसरे, जब कोई विद्यार्थी मुझे पैसे देता है तो उसे लगता है कि वह मुझे और कुछ देने के लिए जवाबदेह नहीं है। मैं सिखाने के बदले में सिर्फ यह चाहता हूँ कि आप अच्छी तरह सीखें और अच्छा प्रदर्शन करें, आपको मुझे वह देना है।'' कैथरीन महसूस करती हैं कि वह उनकी जीवन भर के लिए ऋणी हो गई हैं, क्योंकि वह कभी भी उतना अच्छा बजाने में सफल नहीं हो पाएँगी, जितना वह चाहते हैं।

भारत के अपने असंख्य दौरों के दौरान उन्होंने हरिप्रसाद और उनके परिवार के साथ अच्छा-खासा समय बिताया है। होली, दीवाली, नववर्ष, राजीव का विवाह वह परिवार के एक सदस्य की तरह रही हैं। कई इंटरव्यू के दौरान हरिप्रसाद की बगल में रही हैं और वह उनका परिचय इस तरह कराना पसंद करते हैं, ''मेरी छात्रा, कैथरीन पॉटर। यह कनाडा की हैं, लेकिन दिल से एक भारतीय हैं। मुझे लगता है कि ईश्वर ने गलती से इन्हें कनाडा में पैदा कर दिया।''

कैथरीन ने टोरंटो में कई बार और साथ ही न्यूयॉर्क, बोस्टन, मुंबई, मांट्रियल तथा नोवा स्कोटिया में भी उनके साथ प्रस्तुति दी है। 'दुनिया प्रोजेक्ट' नामक उनका अपना फ्यूजन बैंड है और उन्होंने म्यूजिक टुडे लेबल पर भारत में एक सी.डी. रिलीज की है। वर्ष 2007 में उन्होंने मांट्रियल में अपने बैंड के साथ परफॉर्म करने के लिए हरिप्रसाद को आमंत्रित किया। कॉन्सर्ट से एक दिन पहले हरिप्रसाद ने एक प्रेस इंटरव्यू दिया, जिसने कैथरीन की आँखों में आँसू भर दिए। उन्होंने कहा, ''वह अद्‌भुत बाँसुरी बजाती हैं और सिर्फ मेरी छात्रा नहीं, बल्कि मेरी मित्र और बेटी हैं।'' वह कॉन्सर्ट 28 जुलाई को हुआ, जो गुरु पूर्णिमा का दिन था, जिस दिन भारत में सभी शिष्य अपने गुरुओं की पूजा करते हैं। कैथरीन ने हरिप्रसाद को फूल दिए और मंच पर एक छोटी सी पूजा भी की, जो कनाडा के लोगों के लिए आश्चर्यजनक थी। वर्ष 2008 के आरंभ में भारत के दौरे पर उनके बैंड ने नई दिल्ली, मुंबई और कोलकाता में प्रदर्शन किया, जहाँ वे 2008 जाजफेस्ट के शुरुआती बैंड थे।

हरिप्रसाद से नजदीकी रखनेवाले हर किसी की तरह कैथरीन ने भी कारों और भोजन के प्रति उनके प्रेम का अनुभव किया है। एक बार वह बोस्टन में उनसे मिलने गईं। हरिप्रसाद ने आग्रह किया कि उन्हें न्यू जर्सी में उस्ताद अली अकबर खाँ से मिलने जाना चाहिए। वह दोनों ओर से छह घंटे की यात्रा थी, जब कैथरीन अपनी कार चला रही थीं, हरिप्रसाद आगे उनकी बगल में बैठे थे और तबला-वादक शुभंकर बनर्जी पीछे बैठे थे। हरिप्रसाद ने दोनों युवाओं के लिए 'जिम्मेदारी' महसूस की, इससिए उन्होंने पैसे गिनकर हर टॉल ब्रिज पर तैयार रखते हुए उनकी मदद करने का फैसला किया। रास्ते में अचानक उन्होंने अली अकबर खाँ से मिलने की योजना छोड़ दी और उसकी बजाय अपनी पत्नी अनुराधा से मिलने चले गए, जो उस समय न्यूजर्सी में ही थीं, क्योंकि वह उड़िया ढंग की मछली बना रही थीं।

हरिप्रसाद के साथ कैथरीन के निकट संपर्क ने उनकी जटिल शख्सियत को सामने लाने में मदद की है, ''सीढ़ी का ऊपरी पायदान सबसे एकाकी होता है,'' यह कैथरीन की टिप्पणी है, ''गुरुजी अलग-अलग समय पर और अलग-अलग लोगों के साथ भिन्न व्यवहार करते हैं, लेकिन वह हमेशा एक सामाजिक संदर्भ में होता है। जब वह अमेरिका या कनाडा में होते हैं तो वह आराम कर सकते हैं, वह सहज रह सकते हैं; लेकिन जब वह भारत में होते हैं तो शिखर पर होने की वजह से उनके लिए एक ऊँचे गुरु का किरदार निभाना जरूरी होता है।''

हरिप्रसाद कभी जबरन आगे बढ़नेवालों में नहीं रहे हैं, फिर भी स्थितियाँ उनके अनुकूल रही हैं। वह धकियाने और चालें चलने के बिना अपना लक्ष्य प्राप्त करने और सही मित्र मिलने पर अपनी अच्छी किस्मत के लिए ईश्वर को धन्यवाद देते हैं। वह अपने आपको इस पृथ्वी का सबसे भाग्यशाली व्यक्ति मानते हैं। उनके सभी सपने पूरे हुए

हैं एक सपने को छोड़कर। उनका यह भी सपना था, हांगकांग में कला विद्यालय खोलना। हालाँकि इसे उनका सपना मानना पूरी तरह सही नहीं होगा। यह उनकी शिष्या अवीशा गोपालकृष्णन (कुलकर्णी) का सपना अधिक था, जिसमें वह शामिल हो गए।

सन् 1985 से 1989 तक अवीशा ने मास्को कंजर्वेटरी में अध्ययन किया। सन् 1987 में हरिप्रसाद भारत के फेस्टिवल में परफॉर्म करने के लिए मास्को में थे। अवीशा ने डिप्लोमेटिक संस्थान, जो भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई.ए.एस.) का समकक्ष है, में 'भारत' में विशेषज्ञता प्राप्त करनेवाले अपने 200 पूर्वी जर्मन मित्रों के लिए एक कॉन्सर्ट आयोजित किया। वह होनेवाले राजनयिकों का सख्त समूह था, जिन्हें शांत रहने और भावनाएँ प्रकट न करने का प्रशिक्षण दिया गया था, लेकिन कॉन्सर्ट के अंत में दृश्य बहुत भिन्न था।

''जर्मनों को रुलाना आसान नहीं है।'' अवीशा ने मुझसे बातचीत के दौरान कहा, ''लेकिन राग मारवा की गुरुजी की प्रस्तुति इतनी हृदयस्पर्शी थी कि उनमें से अधिकतर की आँखों में आँसू थे।''

उनके साथ हरिप्रसाद का सपना मुंबई में एक गुरुकुल खोलना था। अवीशा और उनके पिता ने उस पर काम करना शुरू कर दिया था, लेकिन वर्ष 1992 में अवीशा का विवाह हो गया और वह हांगकांग चली गईं, क्योंकि उनके पति वहीं रहते थे। उन्होंने हांगकांग में एक गुरुकुल स्थापित करते हुए हरिप्रसाद के सपने को भारत की सीमाओं के पार ले जाने का फैसला किया। उन्होंने उसका नाम 'बृंदावन एकेडमी ऑफ इंडियन क्लासिकल म्यूजिक एंड डांस' रखने का फैसला किया। 42/104 हेंग फा चुएन, हांगकांग में स्थित इस अकादमी का उद्घाटन 10 अक्तूबर, 1992 को प्रतिष्ठित हांगकांग कल्चरल सेंटर के कॉन्सर्ट हॉल में हरिप्रसाद के एक कॉन्सर्ट से हुआ। इस सेंटर में लगभग 2,000 लोगों के बैठने की क्षमता है, जो एशिया का सबसे बड़ा संस्थान है और जिसने दुनिया के कुछ बेहतरीन कलाकारों के कंसर्टों की मेजबानी की है। वह उस स्थान पर किसी भारतीय शास्त्रीय संगीतकार का पहला कॉन्सर्ट था। उसके बाद हर तीन महीने बाद अवीशा बेहतरीन स्थानों पर कॉन्सर्ट आयोजित करतीं। अकादमी 800 स्क्वायर फीट क्षेत्र में बना है, जिस पर एक बड़ा हॉल और दो कमरे हैं। एक को कार्यालय के रूप में और दूसरे को शिक्षकों के लिए शयन-कक्ष के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। अकादमी का रख-रखाव और देखभाल पूरी तरह अवीशा की जिम्मेदारी थी, जिन्होंने ट्यूशन फीस (जो लगभग 150 अमेरिकी डॉलर प्रतिमाह था) और अकादमी की सहायता करनेवाले भारतीय व्यवसायियों से प्राप्त डोनेशनों से उसके लिए फंड जुटाया। अतिरिक्त फंड बड़े कलाकारों जैसे शिवकुमार शर्मा, पं. जसराज, उस्ताद जाकिर हुसैन, डॉ. बालामुरली कृष्णा, पंडित हृदयनाथ मंगेशकर और गुरु केलुचरण महापात्र के कॉन्सर्ट आयोजित करते हुए जुटाए गए। इन कंसर्टों के लिए प्रायोजन आमतौर पर बैंकों, एयरलाइनों और हांगकांग सरकार की ओर से आया।

हांगकांग में दक्षिण भारतीयों की बड़ी संख्या है, जो उत्तर भारतीय या 'हिंदुस्तानी' शास्त्रीय संगीत उतना पसंद नहीं करते। संगीत दोनों समुदायों के लिए आनंददायक हो, इसके लिए अवीशा ने हरिप्रसाद और बालामुरली कृष्णा के सोलो वाला एक कार्यक्रम आयोजित किया। कॉन्सर्ट में हरिप्रसाद की बाँसुरी पर मुग्ध बालामुरली कृष्णा ने सौजन्यता से घोषित किया, ''मेरा नाम बालामुरली कृष्णा है, लेकिन आप मुझे 'बाला कृष्णा' बुला सकते हैं, क्योंकि उन्होंने (हरिप्रसाद) मेरी मुरली (बाँसुरी) चुरा ली है।'' यह वास्तव में एक साथी संगीतकार द्वारा सराहना की खूबसूरत अभिव्यक्ति थी। इसके बराबर लंदन में सिर्फ पं. जसराज के उद्गार थे, ''हरि ने हरि को प्रसाद में बाँसुरी दे दी।''

अकादमी के लिए सभी शिक्षक भारत से भेजे गए। शास्त्रीय गायन के लिए हरिप्रसाद की पत्नी अनुराधा और पं. जसराज के एक वरिष्ठ छात्र गार्गी सिद्धांत, नृत्य के लिए आनंदी रामचंद्रन और कस्तूरी को बुलाया गया, जबकि

अवीशा स्वयं सितार सिखाती थीं। हरिप्रसाद के इलाहाबाद के पुराने सहयोगी गुरुप्रसाद शर्मा भी अकादमी के शुरुआती वर्षों में एक शिक्षक थे, जब सिर्फ संगीत सिखाया जा रहा था। लोकप्रिय माँग द्वारा नृत्य कक्षाओं के समावेश से महिला शिक्षिकाएँ आईं, जिन्हें एक ही कमरे में रहना था। इसलिए अवीशा के पास दोनों क्षेत्रों में सिर्फ महिला शिक्षिकाएँ रखने के सिवा कोई विकल्प नहीं था।

विद्यार्थियों के चयन के लिए कोई निश्चित मानदंड नहीं था, क्योंकि यह हांगकांग में अपनी तरह की पहली अकादमी थी और उनका मुख्य उद्देश्य स्थानीय लोगों को भारतीय संगीत व नृत्य से परिचित कराना था। कुछ विद्यार्थी पहले से संगीतकार थे, जबकि अन्य पूरी तरह शुरुआत कर रहे थे। आमतौर पर एक समय में चार की संख्या तक विद्यार्थी होते थे, लेकिन अकादमी में कुल अस्सी विद्यार्थी थे। हरिप्रसाद वर्ष में कम-से-कम दो बार अकादमी जाते थे और विद्यार्थियों के साथ अनौपचारिक सत्र आयोजित करते थे। अवीशा ने चाइनीज यूनिवर्सिटी ऑफ हांगकांग, बैप्टिस्ट यूनिवर्सिटी, हांगकांग यूनिवर्सिटी और कई अंतरराष्ट्रीय विद्यालयों के संगीत विभागों में भी उनके व्याख्यानों की व्यवस्था की। कुछ विद्यार्थी अपने-अपने शिक्षकों के साथ लाइव परफॉर्मेंस देते थे और उन्हें 15वें फेस्टिवल ऑफ एशियन आर्ट्स और एशिया के एक सबसे प्रतिष्ठित फेस्टिवल हांगकांग आर्ट्स फेस्टिवल में भी परफॉर्मेंस देने का अवसर मिला।

हरिप्रसाद ने स्वयं फरवरी 1998 में हांगकांग आर्ट्स फेस्टिवल में प्रदर्शन किया। तबला पर जाकिर हुसैन के साथ उन्होंने दो सफल परफॉर्मेंस दिए। श्रोताओं ने खड़े होकर उन्हें सम्मान दिया और स्थानीय श्रोताओं तथा मीडिया की प्रतिक्रिया जोरदार रही। वह अवीशा के लिए एक विशेष रूप से दिलचस्प अनुभव था, जिन्होंने हरिप्रसाद के पीछे बैठकर तानपुरा बजाया। अगली सुबह उन्हें एक प्रमुख स्थानीय समाचार-पत्र 'द साउथ चाइना मॉर्निंग पोस्ट' के एक रिपोर्टर का फोन आया।

''क्या आप मानती हैं कि हरिप्रसाद चौरसिया सबसे अच्छे बाँसुरी-वादक हैं?''

''जी हाँ।''

''क्या आपको कॉन्सर्ट पसंद आया?''

''जी हाँ।''

''आप पिछली रात उनके परफॉर्मेंस से नाखुश क्यों थीं?''

''मैं उनकी परफॉर्मेंस से पूरी तरह खुश थी।''

''फिर आप अपना सिर बाएँ से दाएँ हिला उन्हें 'नहीं'-'नहीं' क्यों बोल रही थीं?''

उन्हें असली बात समझने में थोड़ा वक्त लगा। वह एक चीनी था, जिसका यह पहला भारतीय शास्त्रीय संगीत कॉन्सर्ट था और उसे यह पता नहीं था कि भारतीय लोग संगीत पर अपने सिर इसी तरह हिलाते रहे हैं और इस तरह दाद देते हैं।

अकादमी पहले कुछ साल काफी अच्छी तरह चली, लेकिन गति पकड़ने से पहले ही दो चीजें गलत हो गईं। पहला, 1997 में हांगकांग के वापस चीन जाने के साथ शिक्षकों के लिए वर्क परमिट पाना लगातार मुश्किल होता गया और फिर वर्ष 2000 में अवीशा को मुंबई वापस आना पड़ा, क्योंकि उनके पति का वहाँ स्थानांतरण हो गया था। वह अकादमी के लिए आखिरी झटका था, जिसे सिर्फ संगीत के प्रति अपने समर्पण और निष्ठा से चला रही थीं। इतनी बड़ी जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेनेवाला कोई और नहीं था। इसलिए अकादमी फिलहाल बंद हो गई है। अवीशा कहती हैं, ''अकादमी का लक्ष्य लोगों को पूरी तरह शुद्ध रूप में भारतीय संगीत और नृत्य सीखने का अवसर देना और उन्हें भारत के बेहतरीन संगीतकारों व नर्तकों से परिचित कराना था, जिस लक्ष्य को उसने

कामयाबी से पूर्ण किया। हालाँकि वह फिलहाल बंद हो गया है, मैं निकट भविष्य में किसी समय वहाँ कॉन्सर्ट आयोजित करना फिर से शुरू करने की उम्मीद करती हूँ।''

अवीशा ने भी भोजन के प्रति हरिप्रसाद के प्रेम का अनुभव किया है और देखा है कि चाहे जहाँ भी हों, वह अपने हाथों से खाना पसंद करते हैं। वे एक परफॉर्मेंस के लिए नई दिल्ली में थे, जब हरिप्रसाद ने अवीशा से कहा, ''मैं आपको एक अच्छी जगह भोजन कराऊँगा।'' अवीशा के मध्य वर्गीय दिमाग के लिए 'अच्छी जगह' का मतलब स्पष्ट रूप से एक पंचतारा होटल था। हरिप्रसाद ने वहाँ से गुजर रहे एक साइकिल रिक्शा को रोका और उसे कुछ निर्देश दिए। रिक्शा चालक ने तीस रुपए माँगे, लेकिन हरिप्रसाद ने खूब झिक-झिक की और उसे पंद्रह रुपए पर ला दिया। 'गुरुजी क्या कर रहे हैं?' अवीशा ने सोचा, 'हम कितने लोग हैं और गरीब रिक्शेवाले को अपनी रिक्शा चलाने के लिए कितनी मेहनत करनी पड़ेगी।' वह अच्छी जगह एक छोटी सी गली का एक सड़क किनारे का ढाबा निकला, जहाँ बैठने की कोई जगह नहीं थी। शरारती मुसकराहट के साथ हरिप्रसाद ने रिक्शेवाले को पचास रुपए पकड़ाए, उसका कंधा थपथपाया और पैसे रखने को कहा। तब अवीशा को पता चला कि वह मोल-भाव मजे के लिए था। लगता था कि ढाबे के लोग उन्हें अच्छी तरह जानते थे और उन्होंने उन्हें बैठने के लिए एक बेंच दिया।

अवीशा के चेहरे की निराशा देखते हुए उन्होंने पूछा, ''लगता है, आपको यह जगह पसंद नहीं आई?''

''ऐसा नहीं है, गुरुजी,'' अवीशा ने ईमानदारी से जवाब दिया, ''जब आपने कहा कि आप मुझे एक अच्छी जगह ले जा रहे हैं, तो मुझे लगा कि हम किसी फाइव स्टार होटल में चल रहे हैं।'' हरिप्रसाद के वायदे के अनुरूप भोजन बहुत अच्छा था और उन्होंने चम्मच या काँटे का इस्तेमाल किए बिना पूरी, पराँठा, आलू भाजी, प्याज, हरी मिर्च, दोसा, लस्सी और जलेबी का भोजन किया। वह अपने हाथों से खाना पसंद करते हैं, चाहे वह सड़क किनारे की दुकान हो या कोई महल। टोकियो में उन्हें महल में आमंत्रित किया गया था और वहाँ भी उन्होंने काँटे-छुरी के बिना खाने पर जोर दिया। जब अवीशा ने उन्हें चम्मच का इस्तेमाल करने को कहा तो उन्होंने यह कहते हुए साफ इनकार कर दिया, ''मैं अपनी परंपरा का पालन करता हूँ। अगर लोगों को मेरे खाने का तरीका पसंद नहीं तो उन्हें मुझे बुलाना नहीं चाहिए।''

हरिप्रसाद के अन्य विदेशी शिक्षण कार्यकलापों में रूस, स्वीडन और फ्रांस में एक सप्ताह की कार्यशालाएँ हैं, जो वर्ष में एक बार होती हैं। सन् 1993 में हरिप्रसाद ने जापान का दौरा किया और फिर सिओल में परफॉर्म किया। उस टूर का आयोजन हिरोशी नागासाकी नामक एक जापानी बाँसुरी-वादक द्वारा किया गया था। पहले हरिप्रसाद द्वारा एक सोलो परफॉर्मेंस और उसके बाद एक कोरियाई बाँसुरी-वादक के साथ जुगलबंदी होनी थी। हरिप्रसाद कॉन्सर्ट से एक दिन पहले रात के भोजन के लिए बाँसुरी-वादक के घर गए और उनसे पूछा, ''आपका लोक संगीत कैसा है?''

बाँसुरी-वादक ने अपनी बाँसुरी निकाली और एक छोटी सी धुन बजाई, जिसे हरिप्रसाद ने सिर्फ सुना, क्योंकि वह अपनी बाँसुरी साथ लेकर नहीं गए थे। अगले दिन ऑडिटोरियम में उन्होंने स्मरण से वह धुन बजाते हुए और उसे पहले कभी बजाए बिना उस पर प्रस्तुति देते हुए कोरियाई संगीतकार सहित हर किसी को चकित कर दिया। जब परदा उठा और उन्होंने श्रोताओं को वह धुन सुनाई तो स्थानीय लोगों को एक भारतीय संगीतकार द्वारा एक भारतीय बाँसुरी पर अपना लोक संगीत सुनकर बहुत अच्छा लगा।

8 दिसंबर, 1998 को हरिप्रसाद और शिवकुमार शर्मा को ओस्लो में नोबेल शांति पुरस्कार समारोह में संगीत प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया गया। तबले पर इन दोनों का साथ कोलकाता के शुभंकर बनर्जी दे रहे थे। उन्हें तीस मिनट का समय दिया गया था, क्योंकि वहाँ दुनिया भर के कई कलाकार थे, जिनमें एल्टन जॉन, एनरिक

इगलेसियास और शानिया ट्वेन शामिल थे। हरिप्रसाद अपनी पुत्रवधू पुष्पांजलि को अपने लिए तानपुरा बजाने के लिए उस समारोह में साथ ले गए। उन्होंने कहा, ''मुझे लगा कि यह उसके लिए एक अच्छा अनुभव होगा और साथ ही मुंबई में दैनिक घरेलू कामों से भी उसे अवकाश मिल जाएगा।'' एक पेशेवर गायिका न होने के बावजूद पुष्पांजलि काफी सुर में गा सकती हैं और हरिप्रसाद ने उनकी अछूती प्रतिभा का पूरा लाभ उठाने का फैसला किया। उन्होंने महसूस किया कि उन्हें मिले थोड़े से समय में श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट करने के लिए कुछ 'अलग' करना पड़ेगा, इसलिए उन्होंने राग वाचस्पति में मध्यम ताल में एक बंदिश शुरू की और तेजी से झाला (द्रुत ताल) में चले गए। इस समय हरिप्रसाद ने पुष्पांजलि को संस्कृत के श्लोकों का पाठ करने को कहा, धीमी लय में। उसका प्रभाव अलौकिक था, तेज गति के संगीत में नियंत्रित गति श्लोकों का उच्चारण।

एक कोरियाई बाँसुरीवादक के साथ जुगलबंदी करते हुए।

''उससे श्रोता सम्मोहित हो गए।'' हरिप्रसाद कहते हैं। पुष्पांजलि ने बहुत चतुराई से शांति श्लोक चुने, जो अवसर के बिलकुल अनुकूल था। ऐसा लगता है कि यह विचार मूल रूप से पुष्पांजलि की माताजी का था।

यह पूरा प्रसंग हरिप्रसाद के अनुरूप है। वह प्रतिभा को गहराई से निकाल लेते हैं। वह लोगों पर भरोसा करते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि वह बस भरोसा करते हैं और जब भरोसा उनके जैसी ऊँची शख्सियत का होता है तो लोग अपने पूरे दिल से नतीजे देते हैं, वरना कौन प्रतिष्ठित नोबेल शांति पुरस्कारों में पुष्पांजलि जैसी नौसिखिया को ले जाना, उसे पहली बार गाने के लिए अंतरराष्ट्रीय जनता के सामने रखना चाहेगा, जिसके बाद श्रोता सम्मोहित रह जाते हैं और अधिक सुनने की माँग करते हैं।

विदेश में हरिप्रसाद के सबसे दिलचस्प दिनों में से एक किसी मैडम ऑब्रयॉट की बदौलत फ्रांस के केएन नामक एक शहर में था। केएन में किसी सर्जन की पत्नी ऑब्रयॉट एक टूर ऑपरेटर की तरह थीं और पर्यटकों के समूहों को फ्रांस से भारत लाती थीं। वह टूर आयोजित करती थीं और बदले में उन्हें खुद देश को देखने का मौका मिलता था। कुछ यात्राओं के बाद उन्हें भारत के बारे में अच्छी जानकारी हो गई। हरिप्रसाद को पता नहीं है कि ऑब्रयॉट को उनका टेलीफोन नंबर कैसे मिला, लेकिन उन्होंने एक दिन हरिप्रसाद को फोन किया और अपने टूरिस्ट मित्रों के लिए पंद्रह मिनट का परफॉर्मेंस देने का अनुरोध किया।

''हम आपकी इच्छानुसार भुगतान करने को तैयार हैं।'' उन्होंने कहा।

''मुझे पैसे नहीं चाहिए,'' हरिप्रसाद बोले, ''लेकिन संगीत सुनने के लिए आपका स्वागत है।''

हरिप्रसाद का घर उतना बड़ा नहीं था कि वहाँ एक टूरिस्ट ग्रुप समा सकता, इसलिए उन्होंने अपने मित्र शिवकुमार शर्मा को फोन किया। शिव की पत्नी मनोरमा ने तुरंत उनकी बात मान ली। शर्मा परिवार का ड्राइंग रूम काफी बड़ा और सुसज्जित था। कुछ फूलदानों और कुछ चाय व भारतीय जलपानों ने व्यवस्था को संपूर्ण बना दिया। फ्रांसीसी पर्यटकों से भरी एक बस झमाझम बारिश में शर्मा निवास पहुँची। हरिप्रसाद ने लगभग आधे घंटे की प्रस्तुति दी, जिसके बाद जलपान प्रस्तुत किया गया।

जब मैडम ऑब्रयॉट ने पाया कि हरिप्रसाद कुछ सप्ताह में एक कॉन्सर्ट के लिए पेरिस जाने वाले हैं, तो उन्होंने

उन्हें केएन में परफॉर्म करने का न्योता दिया, जहाँ पेरिस से छोटी सी रेल यात्रा के बाद पहुँचा जा सकता है। उन्होंने वहाँ अपने संपर्कों का इस्तेमाल करके एक ही दिन तीन कार्यक्रम आयोजित किए, जिनमें से पहला एक परफॉर्मेंस था, जिसके बाद स्कूली बच्चों के लिए एक इंटरेक्टिव सत्र हुआ, ''बच्चों के लिए आपको सुनना और आपसे सवाल पूछना उनके लिए अच्छा रहेगा।'' मैडम ऑब्रयॉट ने उनसे कहा। वह हरिप्रसाद के लिए एक नई चीज थी और वह उसमें शामिल होकर प्रसन्न थे। चूँकि वह एक छोटा शहर था, उन्हें दिए गए पैसे बहुत अधिक नहीं थे, लेकिन बच्चों से भरे ऑडिटोरियम में आपसी बातचीत का विचार उनके लिए बहुत प्रलोभन भरा था। हरिप्रसाद ने हमेशा से अपने भविष्य और भारतीय शास्त्रीय संगीत के भविष्य में निवेश के रूप में बच्चों के लिए प्रदर्शन करना पसंद किया है, इसलिए उन्होंने बिना हिचकिचाहट के यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इसके अलावा, फ्रांस में अभी तक उन्होंने जीत हासिल नहीं की थी और पेरिस तक का उनका खर्च पहले ही दिया जा चुका था, इसलिए एक और कॉन्सर्ट करना और एक नया शहर देखना अच्छा रहेगा।

दिन की शुरुआत में मैडम ऑब्रयॉट ने उनके लिए एक कार भेजी। उनके सहयोगियों में दुभाषिया जोहाना, हॉलैंड निवासी तबला-वादक जमीर अहमद और तानपुरा बजाने के लिए फ्रेंच बोलनेवाली अमेरिकी महिला शामिल थे। हरिप्रसाद सुबह साढ़े नौ बजे ऑडिटोरियम में पहुँचे और उसे बच्चों से खचाखच भरा पाया। कुछ बैठे थे, कुछ शोर मचाते हुए इधर से उधर दौड़ रहे थे और कुछ सीटों की कमी के कारण रास्ते में खड़े थे। कुल मिलाकर छह से आठ वर्ष के लगभग 2,000 बच्चे थे, जो विभिन्न स्कूलों से भारतीय संगीत और संस्कृति के बारे में सीखने के लिए इस शैक्षिक पिकनिक के लिए जमा हुए थे। पहली बार उन्होंने इतने बच्चों का सामना किया था और उनकी ऊर्जा से हरिप्रसाद वहाँ प्रवेश करते ही घबरा गए। बच्चों से भरे कमरे में बातचीत करना कोई बच्चों का खेल नहीं है, जो उन्हें जल्द ही पता चल गया।

उन्होंने उस अवसर तथा दिन के उस प्रहर के लिए राग जैत चुना और लगभग पंद्रह मिनट तक बाँसुरी-वादन किया। उसके बाद उन्होंने बच्चों को संगीत के विभिन्न पक्ष समझाए। सबसे पहले शास्त्रीय संगीत का समय सिद्धांत पढ़ाया, जिसमें यह बताया जाता है कि विभिन्न राग दिन के विभिन्न समयों में क्यों बजाए जाते हैं। इसके बाद उन्होंने समझाया कि बाँसुरी कैसे बनाई जाती है और उसे कैसे बजाया जाता है, मुद्रा, फूँक और उँगलियों की गति, फिर उन्होंने यह समझाया कि आलाप क्यों बजाया जाता है, राग के लिए एक ढाँचा बनाने और साथ ही श्रोताओं के कानों को आनेवाली धुनों के लिए तैयार करने के लिए। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि अलग-अलग संगीतकार कैसे एक ही राग को अलग-अलग स्वर रूपों से भिन्न तरीके से पेश कर सकते हैं। अंत में वह तबला पर आए और समझाया कि कैसे संगीतकार उसके द्वारा राग को जीवंत बनाते हैं।

''हम तबले से संगीत में जीवन डालते हैं, फिर वह आगे बढ़ता है। हम तबले को स्टिक्स से नहीं बजा सकते, जैसे आप ड्रम बजाते हैं। हम उसे उँगलियों से बजाते हैं और वह हमसे बातें करता है। उसकी अपनी एक भाषा है।'' उन्होंने दुभाषिए के माध्यम से समझाया। उन्होंने तबला के बोलों को गाकर बताया, धा, धिन, ते, कत आदि, जबकि जहीर अहमद ने उन्हें तबले पर बजाया। वहाँ बिलकुल सन्नाटा था, क्योंकि विद्यार्थी और शिक्षक सभी सम्मोहित होकर एक बोलनेवाले भारतीय ड्रम को सुन रहे थे। कुछ इतने साहसी थे कि वह वाद्यों और संगीतकारों को नजदीक से देखने के लिए मंच पर पहुँच गए।

इसके बाद बच्चों की ओर से सवालों के ढेर लग गए।

''आप आँखें बंद कर के क्यों बजाते हैं?'' एक बच्चे ने पूछा।

''यह प्रार्थना की तरह होता है। हम ईश्वर के लिए बजाते हैं। जब आप चर्च जाते हैं तो आप चुपचाप बैठकर

ऑर्गन बजाते हैं और ईश्वर के लिए गाते हैं। इसलिए हम भी अपना संगीत बजाते समय चुपचाप बैठते हैं और कूदते-फाँदते नहीं।''

''आप तबला को इतनी जोर से क्यों पीटते हैं?'' दूसरे ने पूछा।

''हम उस पर बीच में प्रहार नहीं करते, सिर्फ उसे ट्यून करने के लिए किनारों पर थपकी देते हैं, जिस प्रकार आप गिटार और वायलिन जैसे अपने वाद्यों को ट्यून करते हैं।''

''फिर आप अपनी बाँसुरी को ट्यून क्यों नहीं करते?'' तुरंत सवाल दागा गया। एक बच्चे को यह समझाना मुश्किल था कि बाँसुरी में एक पूर्व निर्धारित स्केल होता है और उसे ट्यूनिंग की जरूरत नहीं पड़ती।

कुछ सवालों ने हरिप्रसाद को चित कर दिया, जैसे आप फर्श पर क्यों बैठते हैं, कुरसी पर क्यों नहीं?आपके माथे पर यह लाल निशान (तिलक) क्यों है?आप ऐसे कपड़े क्यों पहनते हैं, शर्ट और पैंट क्यों नहीं?क्या आपके स्कूलों में ऐसा ही संगीत सिखाया जाता है? वे नहीं मान सकते थे कि संगीत गुरुकुल या घराना जैसी कोई चीज हो सकती है, जहाँ विद्यार्थियों को सिर्फ संगीत सिखाया जाता है। सवाल आते रहे, लेकिन उनका जवाब देने का समय नहीं था। मैडम ऑब्रयॉट अगले स्थान पर समय पर पहुँचने के लिए चिंतित थीं, इसलिए उन्होंने विद्यार्थियों से कहा कि वे अपने नामों के साथ कागज पर अपने सवाल लिख लें, ताकि हरिप्रसाद शाम को अपने होटल के कमरे में उनका जवाब दे सकें। उस शाम हरिप्रसाद ने पेरिस लौटने से पहले लगभग 250 कागजों पर जवाब लिखे।

अगला कार्यक्रम आकार और श्रोताओं के अर्थों में इससे बिलकुल अलग था। ऑडिटोरियम में एक छोटा सा मंच और थोड़े से श्रोता थे। इसमें सिर्फ संगीतकारों, संगीतविदों, संगीत शिक्षकों, कंपोजरों और प्रेस को आमंत्रित किया गया था। यहाँ भी हरिप्रसाद ने सवाल-जवाब सत्र शुरू होने से पहले लगभग 15 या 20 मिनट तक बाँसुरी-वादन किया। जैसी कि उम्मीद थी, सवाल स्कूली बच्चों के सवालों से बिलकुल अलग थे। यह श्रोता वर्ग भारतीय शास्त्रीय संगीत के सिद्धांतों में अधिक दिलचस्पी रखता था, अर्थात् तालीम की प्रणाली, श्रुतियों का निर्धारण, किसी राग का वादन और उसे बजाते हुए ध्यान में रखे जानेवाले व्याकरणीय नियम। कुछ अन्य सवाल भी थे, जिनका उनके पास उपयुक्त जवाब नहीं था। भारतीय संगीत का उद्‌भव कहाँ हुआ? उसकी शुरुआत किस सदी या युग से मानी जा सकती है?उसे किसने शुरू किया?वह शास्त्रीय गायन के साथ शुरू हुआ या वाद्य संगीत से?पहला भारतीय वाद्य कौन सा था? उन्होंने अपनी ओर से बेहतर जवाब दिए, लेकिन जिन विषयों पर उन्हें पूरा विश्वास नहीं था, उसे उन्होंने सच्चाई से यह कहा, ''मैं एक परफॉर्मिंग संगीतकार हूँ, कोई संगीतविद् नहीं, इसलिए मैं जवाब नहीं दे सकता।''

शाम का तीसरा कार्यक्रम छह से साढ़े सात बजे तक एक लाइव कॉन्सर्ट था। उसमें संगीतकार, संगीतविद् और 150 स्कूली बच्चे अपने माता-पिता के साथ शामिल थे, जिन्होंने उस सुबह उन्हें सुना था और उन्हें फिर से सुनना चाहते थे। उन्होंने राग यमन बजाया और बाद में स्थानीय व्यंजनों का आनंद उठाने एक फ्रेंच रेस्तराँ में गए। रात के भोजन के बाद वह छोटे से कागज के टुकड़ों पर लिखे बच्चों के सवालों के जवाब देने के लिए अपने होटल के कमरे में गए। अंत में लगभग रात दस बजे उन्हें वापस पेरिस ले जाया गया। वह उस दिन को कभी नहीं भूलेंगे, क्योंकि उस दिन उन्हें बारह घंटे के समय में विभिन्न प्रकार की चीजें करने को कहा गया था।

अगर आप लगातार सफर करना चाहते हैं तो यात्रा करनेवाले संगीतकार के रूप में जीवन मजेदार हो सकता है। हरिप्रसाद दुनिया भर की सैर करना पसंद करते हैं और जब उन्हें कोई फ्लाइट पकड़नी होती है तो आप उनमें एक स्पष्ट बदलाव देख सकते हैं। उनके चहेरे पर एक अलग सी मुसकराहट आपको यह अहसास दिलाती है कि वह उस शहर से और वहाँ के लोगों से दूर जा रहे हैं तथा मानसिक रूप से अपने गंतव्य पर पहुँच चुके होते हैं।

हालाँकि उनकी यात्राएँ कठिनाइयों और जोखिमों के बिना नहीं रही हैं। पेरिस में अलग-अलग समय पर दो घटनाएँ हुईं, जिन्हें पसंदीदा भयावह घटनाएँ बताते हैं।

इनमें से पहली घटना वर्ष 1975 में हुई, जब वह और शिवकुमार शर्मा साथ यूरोप का भ्रमण कर रहे थे। वह एक ठिठुरानेवाला ठंडा दिन था और हरिप्रसाद को तेज ज्वर था। 104 डिग्री तापमान के साथ बोलने या हिलने में असमर्थ हरिप्रसाद ने शिवकुमार शर्मा को उस शाम उनके बिना अकेले परफॉर्म करने को कहा। ''मैं आयोजकों से क्या कहूँगा? वे बहुत निराश होंगे।'' शिवकुमार शर्मा ने कहा। वह हरिप्रसाद के स्वास्थ्य के साथ-साथ ऑडिटोरियम में अकेले जाने पर पूछे जानेवाले सवालों के बारे में चिंतित थे। उनका कोई स्वास्थ्य बीमा नहीं था और किसी प्रकार की दवाइयों की प्रिस्क्रिप्शन नहीं थी। वहाँ महेश नाम का उनका एक मित्र था, जिसने हरिप्रसाद को कोई दवाई दी। हालाँकि ज्वर नहीं उतरा, लेकिन उन्हें थोड़ा आराम महसूस हुआ। महेश और शिवकुमार ने उन्हें किसी तरह ऑडिटोरियम में पहुँचाया।

''मुझे लगा कि वह मेरा आखिरी दिन है।'' हरिप्रसाद ने कहा, ''मैंने ज्वर के साथ लगभग 40 मिनट तक बाँसुरी-वादन किया और फिर ढेर हो गया। खुशकिस्मती से अगले तीन दिनों तक हमारे कॉन्सर्ट नहीं थे, इसलिए मैं यात्रा जारी रखने के लिए ठीक-ठाक हो गया था।''

एक और घटना, जिसने उन्हें हक्का-बक्का कर दिया था, वह पेरिस के हवाई अड्डे पर '80 के दशक की शुरुआत में घटी थी। वह यूरोप और कनाडा के पैंतालीस दिनों के भ्रमण का पहला पड़ाव था। उन्हें ओडियन थिएटर में प्रस्तुति देनी थी। वह यूरोप में भारतीय शास्त्रीय संगीत के शुरुआती समारोहों में से एक और निश्चित रूप से भारत से बाहर पहला चौबीस घंटे लंबा भारतीय संगीत कॉन्सर्ट था। उसे 'मंडप्पा' द्वारा आयोजित किया गया था और प्रभारी महिला मेलिना थीं। उसमें भारतीय संगीत के सभी रूप शामिल किए गए थे, जिनमें डागर बंधुओं द्वारा ध्रुपद से लेकर खयाल, ठुमरी और वाद्य संगीत सबकुछ शामिल था।

हरिप्रसाद शाम पाँच बजे हवाई अड्डा पहुँचे और उन्हें साढ़े सात बजे प्रस्तुति देनी थी। आयोजकों ने उनका स्वागत करने के लिए एक महिला को भेजा था। हरिप्रसाद एक ट्रॉली में अपना सामान और एक छोटे से पाउच, जिसे वह हमेशा अपने हाथ में रखते हैं, में अपने पैसे, टिकट, पासपोर्ट, डायरी और दूसरे दस्तावेज लेकर इमिग्रेशन से निकले। उन्होंने महिला के साथ हाथ मिलाने के लिए उस पाउच को अपने बाकी सामान के ऊपर रख दिया और उसी पल वह पाउच गायब हो गया। हरिप्रसाद स्तब्ध रह गए। उन्हें यकीन नहीं हो रहा था कि ऐसी घटना उनके साथ हो रही है। ऐसी दुर्घटनाएँ हमेशा दूसरे लोगों के साथ होती थीं। उन्हें लेने गई महिला ने जोर दिया कि वह पहले ऑडिटोरियम चलें और परफॉर्मेंस के बाद अपने चोरी हुए दस्तावेजों की चिंता करें। उन्हें उस संकट से निकालना उसके एजेंडे में नहीं था। उन दिनों कोई यूरोपीय संघ नहीं था और आपको हर देश के लिए अलग वीजा की जरूरत होती थी। वह पैसे किसी से माँग सकते थे या उधार ले सकते थे और किसी तरह काम चला सकते थे, लेकिन पासपोर्ट, वीजा, टिकट और विभिन्न शहरों के आयोजकों से संपर्क करने का कोई तरीका न होने के कारण उन्हें लगा कि वह पेरिस में लंबे समय तक फँस सकते हैं। इससे भी बदतर यह कि उनके सारे कागजात जा चुके थे तो उनके पास यह साबित करने का कोई तरीका नहीं था कि वह हरिप्रसाद चौरसिया हैं। अगर वह समय पर सभी परफॉर्मेंसों के लिए नहीं पहुँच पाए तो उन्हें क्षतिपूर्ति में बहुत सारे पैसे देने पड़ते। पेरिस के एक व्यक्ति की सलाह पर वह पहले हवाई अड्डे के अंदर स्थित पुलिस स्टेशन गए और शिकायत दर्ज कराई, जिसके लिए उन्हें एक रसीद दी गई। इस बात पर संतुष्ट कि उनके पास अपनी दुर्दशा के लिए दिखाने को कुछ है, वह थिएटर पहुँचे। हॉल इटली, स्पेन, बेल्जियम, लक्जमबर्ग एवं यूरोप के कई और जगहों के लोगों से खचाखच भरा था। सदमे में मौजूद

हरिप्रसाद कॉन्सर्ट में थे, लेकिन उनका दिमाग कहीं और था। पश्चिमी दर्शकों ने तालियाँ बजाईं, भारतीयों ने अपनी 'वाह-वाह' की और बाद में उन्हें ऑटोग्राफ के लिए घेर लिया, लेकिन हरिप्रसाद को कुछ भी दिखाई, सुनाई या महसूस नहीं हो रहा था। वह स्तब्ध थे और भारतीय दूतावास के खुलने का इंतजार कर रहे थे।

अगला दिन सोमवार था। हरिप्रसाद जल्दी उठे। वह रात भर अधिक सो नहीं पाए थे। एक भारतीय व्यवसायी, जिसे पहले हरिप्रसाद को हवाई अड्डे तक छोड़ने का काम सौंपा गया था, ने खोए दस्तावेजों को हासिल करने में मदद करने का प्रस्ताव रखा। सबसे पहले वे दूतावास गए। फ्रांस में भारतीय राजदूत का रवैया अत्यंत सहानुभूतिपूर्ण और सहयोगपूर्ण था। उन्होंने हरिप्रसाद के बारे में सुन रखा था और जानते थे कि वह एक प्रतिष्ठित भारतीय संगीतकार हैं। '80 के दशक की शुरुआत में भारतीय दूरसंचार की जो स्थिति थी, उसमें बंबई के पासपोर्ट ऑफिस को टेलीफोन और टेलेक्स संदेश भेजना बहुत मुश्किल काम था, लेकिन उन्होंने तुरंत काम शुरू कर दिया। हरिप्रसाद को अपनी किस्मत पर यकीन नहीं हुआ, जब उन्हें दो घंटे से कम समय में एक नया पासपोर्ट पकड़ाया गया।

''अब आप फ्रेंच इमिग्रेशन विभाग में जाकर अपने पासपोर्ट पर फ्रांस में अपनी एंट्री की मुहर लगवाइए।'' राजदूत ने उन्हें सलाह दी, ''आप देश से नहीं जा सकते, जब तक कि आप पहले यह साबित न करें कि आप यहाँ आए थे। अगर आप आज दोपहर चार बजे तक वह करवा सकें तो कल हम वीजा पर काम कर सकते हैं।''

यह साबित करना बहुत हास्यास्पद था कि वह फ्रांस में थे, जब वह शारीरिक रूप से वहाँ मौजूद थे, लेकिन कानून का मामला यही है। राजदूत ने पहले ही इमिग्रेशन अधिकारियों को फोन कर दिया था, इसलिए उनके पासपोर्ट पर मुहर लगवाने में सिर्फ कुछ मिनट लगे। एक भारतीय शास्त्रीय संगीतकार के प्रति सम्मान दिखाते हुए राजदूत ने अपने स्टाफ को हरिप्रसाद का टिकट पुन: जारी करवाने की प्रक्रिया शुरू करने के लिए भी कहा। राजदूत के कार्यालय का एक टेलेक्स एयर इंडिया के लिए टिकट फिर से जारी करने के लिए पर्याप्त था और उस शाम उनके पेरिस कार्यालय में टिकट हरिप्रसाद का इंतजार कर रहा था। अगला दिन पहले दिन की तरह ही अच्छा रहा। राजदूत ने अन्य दूतावासों को आवश्यक फोन कॉल किए और चार में से तीन वीजा बिना किसी कठिनाई के दे दिए गए।

सिर्फ स्वीडन दूतावास में उन्हें कठिनाई हुई। अनुरोध करने से लेकर फुसलाने तक उन्होंने हर कोशिश की, लेकिन उसकी प्रतिक्रिया थी, ''नहीं-नहीं, पेरिस से कोई वीजा नहीं। वीजा के लिए भारत में स्वीडिश दूतावास में जाइए!'' हरिप्रसाद पहले ही सुबह से तीन दूतावासों में संकेत की भाषा में बात करते परेशान हो चुके थे और उनका धैर्य समाप्त हो रहा था। उन्होंने पाया कि हालाँकि जिन दूतावासों में वह गए थे, उसके कुछ लोग अंग्रेजी जानते थे, लेकिन वे अपनी भाषा में बात कर रहे थे। वे सिर्फ यह कहने के लिए अंग्रेजी का सहारा लेते थे, 'आपको लगता है कि मैं बेवकूफ हूँ।' आखिरकार हरिप्रसाद ने पुराने भारतीय तरीके का शोर-शराबा आजमाया, जिसने तत्काल दूतावास के वरिष्ठ अधिकारियों को अपने-अपने क्यूबिकलों से बाहर निकलने और यह जानने के लिए प्रेरित किया कि यह शोर-गुल किस बात का है। हरिप्रसाद ने तुरंत स्थिति का फायदा उठाया और उन्हें वे तीन वीजा दिखाए, जो उन्हें सुबह-सुबह मिल गए थे और उनसे पूछा कि उन्हें एक स्वीडिश वीजा देने में क्या परेशानी है। सौभाग्य से वे अधिकारी अपने अधीनस्थों से कहीं अधिक समझदार थे। उनमें से एक उन्हें अपने कमरे में ले गया और उनकी समस्या पूछी। उनकी माँग को सही और उचित पाते हुए उसने वीजा जारी करवा दिया।

''आपको तब बहुत परेशानी हुई होगी, जब उन्होंने जान-बूझकर आपसे अंग्रेजी में बात करने से इनकार कर दिया?'' मैंने हरिप्रसाद से पूछा।

वह हालाँकि हमेशा की तरह इसके बारे में कुछ अच्छा कहने में सफल रहे। उन्होंने बहुत गंभीरता से जवाब दिया, ''ऐसा ही होना चाहिए। लोगों को अपनी मातृभाषा से प्यार करना चाहिए। केवल हम भारतीय ही अपनी मातृभाषा की बजाय अंग्रेजी बोलना अधिक पसंद करते हैं। सारी परेशानी के बावजूद मैं ईश्वर का शुक्रगुजार हूँ कि मेरे सभी दस्तावेज डेढ़ दिनों के भीतर फिर से जारी हो गए और मैं अपना यात्रा कार्यक्रम जारी रख सकता था। उस प्रक्रिया में वैसे कई सप्ताह लग जाते।''

यदि हरिप्रसाद बाँसुरी के निर्विवाद बादशाह हैं तो उनके पश्चिमी प्रतिद्वंदी निश्चित रूप से इयान एंडरसन होंगे। गायक, कंपोजर, बाँसुरी-वादक, गिटार-वादक, महान् रॉक बैंड जेथरो टल्ल के संस्थापक सदस्य और मुख्य गीतकार इयान एंडरसन ने सन् 1967 में बैंड की शुरुआत के बाद से ब्रिटिश रॉक को सबसे अधिक बौद्धिकता और काव्यात्मक कल्पना-शक्ति प्रदान की है। सीधे-सीधे रॉक फ्रेजिंग से लेकर 'बाउरी' पर जे.एस. बाख के अपने रूपांतरण तक एंडरसन का बाँसुरी-वादन हमेशा अनूठा और वैयक्तिक रहा है। उनकी उपस्थिति सुनिश्चित करती है कि जेथरो टल्ल हमेशा जेथरो टल्ल जैसी लगती है, जबकि उसमें इतने लोग बदल गए कि वह बैंड के एकमात्र मूल सदस्य हैं। इन दोनों की एक जुगलबंदी अपरिहार्य थी, जो दो महान् लोगों का मिलन था और जब हरिप्रसाद एवं एंडरसन ने आखिरकार साथ बाँसुरी-वादन किया तो श्रोता यह सोचने पर मजबूर हो गए कि कॉन्सर्ट पहले क्यों न आयोजित किया गया।

हरिप्रसाद दर्जनों भिन्न-भिन्न कार्यकलापों में संलग्न होते हैं और इयान एंडरसन साल में लगभग 100 कंसर्टों में परफॉर्म करते हैं, इसलिए इनमें से किसी पर छोड़े जाने पर यह कॉन्सर्ट कभी नहीं हो पाता। अगली पीढ़ी को यह करना पड़ा। हरिप्रसाद के पुत्र राजीव को यह महान् कार्यक्रम करवाने का श्रेय जाता है। उन्हें यह करने में चार साल लगे, क्योंकि जैसा कि एंडरसन कहते हैं, ''राजीव चौरसिया ने काफी पहले मुझसे संपर्क किया था, लेकिन मैं तब टूरों में बहुत व्यस्त था। मुझे अपना परिवार चलाना था।''

'जेथरो टल्ल हरिप्रसाद चौरसिया डेजर्ट फ्यूजन कॉन्सर्ट' के नाम से उनका पहला परफॉर्मेंस दुबई के मीना सियाही ऑडिटोरियम में 29 जनवरी, 2004 को हुआ। मैं उन भाग्यशालियों में था, जिन्हें 31 जनवरी और 1 फरवरी, 2004 को मुंबई में एन.सी.पी.ए. में आयोजित उनके दोनों कंसर्टों को सुनने का अवसर मिला। वे बेहतरीन शो थे, जिसे समझदारी से तीन भागों में विभाजित किया गया था, ताकि फ्यूजनवाले भाग में जाने से पहले श्रोताओं को पूर्वी और पश्चिमी दोनों घटकों का आनंद दिया जा सके। पहला हिस्सा हरिप्रसाद का सोलो था, जिसमें उन्होंने राग दुर्गा बजाया। दूसरे हिस्से में जेथरो टल्ल ने अपना संगीत बजाया और उसे अपरिहार्य व अनिवार्य 'लोकोमोटिव ब्रेथ' से खत्म किया। यह एक दार्शनिक गीत है, जो जीवन की अनवरत अनंत यात्रा पर आधारित है। तीसरा और आखिरी सेट, जिसके लिए हर किसी की साँसें रुकी हुई थीं, लगभग एक घंटे का फ्यूजन था, जिसमें मुख्यत: राग जोग में हरिप्रसाद द्वारा कंपोज किए गए एक मूलभूत ढाँचे पर मौलिक प्रस्तुति थी। हालाँकि दोनों एक-दूसरे के क्षेत्र में गए। हरिप्रसाद के रॉक पेश करने से अधिक एंडरसन द्वारा राग प्रस्तुत करना स्पष्ट हो रहा था, जो दोनों के लिए सही रहा। ये दोनों बहुत ही मनोरंजक कॉन्सर्ट रहे। प्रशंसकों के लिए दुनिया के दो महानतम बाँसुरी-वादकों को एक ही मंच पर देखना, दो बिलकुल भिन्न संगीत विधाओं को मिलते हुए सुनना और बिलकुल भिन्न टोनल गुणवत्ता वाले दो भिन्न बाँसुरियों को साथ में सुनना एक अद्‌भुत दृश्य था। जब 'आउटलुक' पत्रिका द्वारा एंडरसन से पूछा गया कि क्या फ्यूजन का प्रयास एक समझौता होगा, तो उन्होंने परिचित ब्रिटिश विनोदप्रियता में जवाब दिया, ''संगीत की समानता महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि संगीत की भिन्नता महत्त्वपूर्ण है। इसलिए मैं उम्मीद करता हूँ कि हम शार्डेने के एक गिलास के साथ बिस्तर पर दोस्ती नहीं बढ़ाएँगे।''

हरिप्रसाद ने कई विधाओं में कई संगीतकारों के साथ दुनिया भर में बाँसुरी-वादन किया है। उनकी संगीत संबंधी सार्वभौमिकता को बयान करने का बेहतरीन तरीका यह उद्धरण है—

''श्री हरिप्रसाद चौरसिया इस पृथ्वी के सबसे उल्लेखनीय संगीतकारों में एक हैं और दुनिया भर में पसंद किए जाते हैं। उनकी राष्ट्रीयता भारतीय हो सकती है, लेकिन उनका संगीत वास्तव में विश्वव्यापी है।''

जॉन मैकलॉलिन

27 मार्च, 2008

❑

गुरुकुल और आदर्श गुरु

अपने सर्वोच्च स्तर पर अध्यापन कला एक प्राप्त कौशल है, जिसे समय, धैर्य और अभ्यास से माँजा जाता है। सरलतम रूप में वह एक सहज प्रवृत्ति है। शेर अपने बच्चों को शिकार करना सिखाता है और पक्षी अपने बच्चों को उड़ना सिखाते हैं। भारतीय संस्कृति में हाल तक बेटे से उम्मीद की जाती थी कि वह पिता का पेशा अपनाएगा और हर माँ अपनी बेटी में अपनी पाक-कला के गुण भरना चाहती थी। अपनी विरासत अगली पीढ़ी को थमाने की यह अंतर्निहित, सहज आवश्यकता ही संगीत शिक्षा की घराना व्यवस्था का आधार है, जिसने बहुत से पंडित और उस्ताद पैदा किए हैं। घराना का शाब्दिक अर्थ है, घर-परिवार और जैसा कि इस नाम से स्पष्ट है, ये घराने वहाँ विकसित हुए, जहाँ संगीत शिक्षा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित की जाती थी। पाश्चात्य संगीत की दुनिया में ऐसी कोई मिसाल नहीं है।

घरानों के संस्थापक जनकों की यह आलोचना होने के बावजूद कि वे अपने परिवारों से बाहर किसी संगीत प्रतिभा के प्रति असहिष्णु रहे हैं, घरानों ने बिना शक पीढ़ियों तक भारतीय शास्त्रीय संगीत का संरक्षण और विकास किया है। हालाँकि रेडियो, ग्रामोफोन रिकॉर्डों, कैसेटों, टेलीविजन और सी.डी. के तीव्र प्रसार ने कलाकारों को दूसरे घरानों के संगीत तक पहुँचने में समर्थ बनाया है तथा इन घरानों की विशेषताओं को अपनी शैली में ढालते हुए इस मिश्रण को श्रोता और परफॉर्मर के नजरिए से अधिक दिलचस्प, वैयक्तिक और आनंददायक बनाकर घरानों की सख्त संरचना को छिन्न-भिन्न कर दिया है। इन सबके बावजूद या शायद इसी वजह से, पुरानी कहावत 'गुरु बिन ज्ञान नहीं' अब भी मायने रखती है। गुरु आपको मूल चीजें सिखाता है, आपके भीतर की प्रतिभा को जगाता है और विभिन्न शैलियों के साथ प्रयोग करने के दौरान आपको राह से भटकने से बचाता है।

हरिप्रसाद अपने आप में एक आधुनिक घराना हैं। उन्होंने पं.राजाराम से शास्त्रीय गायन सीखना शुरू किया, बाँसुरी की बुनियादी चीजें पं. भोलानाथ प्रसन्ना से सीखीं, भारतीय शास्त्रीय संगीत की बारीकियाँ आकाशवाणी कटक में भुवनेश्वर मिश्रा एवं अन्य लोगों से सीखीं और आकाशवाणी कटक के पुस्तकालय में पुराने उस्तादों की रिकॉर्डिंग सुनते हुए इस पेशे की काफी बारीकियाँ खुद सीखीं। फिल्मों, रेडियो, थिएटर और नृत्य-नाटिकाओं के लिए अत्यंत सटीकता से छोटे सोलो बजाने की जरूरत ने पिच की उनकी समझ को पैना बना दिया। एक शास्त्रीय संगीतकार के रूप में निर्णायक कायापलट अन्नपूर्णा देवी की छत्र-छाया में हुई। वह अपने कटक के दिनों से ही बाँसुरी-वादकों को प्रशिक्षण देते आ रहे हैं, इसलिए अपना एक गुरुकुल स्थापित करने की उनकी इच्छा में कोई हैरत की बात नहीं है।

गुरुकुल के समीप मार्ग-चिह्न।

ऐतिहासिक रूप से हरिप्रसाद अपना संगीत संस्थान स्थापित करनेवाले दूसरे पहलवान से संगीतकार बने व्यक्ति हैं। पहला नाम मौला बख्श घिसे खाँ (1833-1896) का है, जिन्होंने लगातार बड़ौदा के तीन शासकों खाँडेराव गायकवाड़, मल्हारराव गायकवाड़ और सयाजीराव गायकवाड़ के दरबार में काम किया। मौला बख्श घिसे खाँ ने

1 फरवरी, 1886 को अपना संगीत विद्यालय स्थापित किया। हरिप्रसाद चौरसिया ने वर्ष 2002 में अपने गुरुकुल की स्थापना की।

गुरुकुल के निकट चौराहों पर वृंदावन, वेणु चौक का संकेत चिह्न है। यह दिलचस्प है कि बाँसुरी का गुरुकुल वृंदावन नामक इलाके में हो, जो भारतीय मनोविज्ञान में भगवान् कृष्ण से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है और 'वेणु' बाँसुरी के लिए संस्कृत शब्द है। यह भी उतना ही दिलचस्प है कि हरिप्रसाद का गुरुकुल हरिद्वार मार्ग नामक सड़क पर हो। संयोग या दैवी इच्छा, असल में इसमें से कोई नहीं। गुरुकुल के बारे में लोगों को जानकारी देने के लिए हरिप्रसाद ने एक अनुरोध किया, जिसे स्थानीय नगर निगम अधिकारियों ने सहजता से मान लिया।

हरिप्रसाद के आधिकारिक जीवनीकार के रूप में मुझे गुरुकुल के वार्षिक उत्सव जन्माष्टमी समारोह में शामिल होने का न्यौता दिया गया। हरिप्रसाद भगवान् कृष्ण के पक्के भक्त हैं और हर साल वह अपने इष्ट देव का जन्म समारोह खूब धूमधाम से मनाते हैं। गुरुकुल की स्थापना से पहले यह समारोह खार के उनके घर में मनाया जाता था।

3 सितंबर, 2007, सोमवार को सुबह के अखबारों में इस संदेश के साथ हरिप्रसाद की एक बड़ी सी तसवीर थी—'मध्यरात्रि की इस दावत का आनंद उठाएँ। जन्माष्टमी समारोहों के एक भाग के रूप में बाँसुरी-वादक पं. हरिप्रसाद चौरसिया और उनके वृंदावन गुरुकुल के छात्र 24 घंटे के एक कॉन्सर्ट में देवताओं और मनुष्यों दोनों को एक समान मंत्रमुग्ध करेंगे। यह समारोह मध्यरात्रि में अपने चरम पर पहुँचेगा, क्योंकि उस समय भगवान् कृष्ण का जन्म होगा।'

भारी भीड़ बारिश के बावजूद वहाँ पहुँची। गुरुकुल परिसर के भीतर का मंदिर खचाखच भरा हुआ था। हरिप्रसाद अपनी धोती और गंजी में भगवान् कृष्ण की मूर्ति के आगे बैठे थे। उनके कंधे पर भगवा गमछा था और वह पूरी तरह कृष्ण भक्त नजर आ रहे थे। भगवान् कृष्ण के भजनों के साथ उत्सव शुरू हुआ। मध्यरात्रि के समय एक युवा पुरोहित की अगुआई में हरिप्रसाद और उनके परिवार ने मंगल आरती तथा पूजा की। हरिप्रसाद के बगल में बैठे थे पं. शिवकुमार शर्मा, जिन्हें वह बड़ा भाई मानते हैं।

रस्में खत्म होने पर हरिप्रसाद ने अपने प्यारे भगवान् के आगे बैठकर बाँसुरी बजाई और पिछले साल की खुशियों के लिए उनका आभार जताते हुए आनेवाले साल के लिए उनके आशीर्वाद की कामना की। प्रेम, श्रद्धा, समर्पण दुनिया भर के संगीतकार इनकी बातें करते हैं, लेकिन हरिप्रसाद इन्हें जीते हैं। साल में एक बार चौबीस घंटे का बाँसुरी रिले होता है और निश्चित रूप से यह दुनिया में अपनी तरह का पहला उत्सव है। हरिप्रसाद ने स्वयं राग खमाज से शुरू करते हुए साढ़े पाँच घंटे का मैराथन सत्र बजाया। उनके विद्यार्थियों ने इस पर एक चुटकुला बना रखा है। वे कहते हैं कि जन्माष्टमी के दिन ऐसा लगता है, मानो गुरुजी देश के सभी बाँसुरी-वादकों की ओर से रियाज कर रहे हैं। बाँसुरियों के इस दुर्जेय युद्ध में एक-एक करके उनके सीनियर छात्र उनके साथ शामिल हुए राकेश चौरसिया, रूपक कुलकर्णी, सुनील अवचट, संतोष संत और दूसरे छात्र। रागदारी खुद हरिप्रसाद द्वारा व्यक्तिगत रूप से या उनके एक छात्र द्वारा किया गया, जबकि बंदिश सभी बाँसुरी-वादकों द्वारा एक साथ मिलकर बजाई गई। जिन विद्यार्थियों को माइक्रोफोन नहीं दिए गए थे, उन्होंने भी चारों ओर बैठक बंदिश बजाई या बस वादी और सम-वादी सुर लगाए। इसका प्रभाव अद्वितीय था, जिसमें संगीतकार और श्रोता दोनों एक प्रकार के सम्मोहन की स्थिति में थे। मैं सोचने पर मजबूर हो गया, ''अगर इससे भगवान् कृष्ण का आशीर्वाद नहीं मिल सकता तो और किसी से नहीं मिल सकता।''

एक राग दूसरे राग में मिल गया, खमाज, मारू बिहाग, मियाँ की मल्हार। हरिप्रसाद ने राग भैरवी के साथ भोर

का स्वागत किया। छह बजे वह अपने विद्यार्थियों को मोरचा सँभालने के लिए सौंपकर उठे और भोजन करके तथा कुछ आराम करके फिर से उनके साथ शामिल हुए। एक 69 वर्षीय व्यक्ति के लिए यह स्टेमिना का अद्भुत प्रदर्शन था, जिसका श्रेय हरिप्रसाद पहलवान के रूप में अपनी शुरुआत को देते हैं। दिन भर उन्होंने बीच-बीच में दो घंटे की अवधियों में बाँसुरी बजाई। इस बीच व्यवस्था देखते रहे और अतिथियों का स्वागत भी करते रहे। भारतीय शास्त्रीय संगीत की 'टाइम थ्योरी' के हिसाब से विद्यार्थियों ने दिन के विभिन्न समय पर या प्रहरों पर बजाए जानेवाले विभिन्न राग बजाए। अहीर भैरव, अहीर ललित, वसंत मुखारी, शुद्ध सारंग, मधुवंती और यमन, चौबीस घंटे की शृंखला की खूबसूरत कड़ियाँ, जो राग वाचस्पति के साथ खत्म हुआ। इस उत्सव के लिए आमंत्रित किए गए पं. जसराज इसमें शामिल नहीं हो पाए, क्योंकि वह अहमदाबाद में परफॉर्म कर रहे थे। उनकी बेटी दुर्गा जसराज आईं और अपने सेलफोन पर अपने पिता को फोन लगाया, ताकि वह व्यक्तिगत रूप से इस अवसर पर हरिप्रसाद को शुभकामना दे सकें। हरिप्रसाद ने पं. जसराज से कुशल-क्षेम की बातें कीं और कहा, ''मुझे बहुत अच्छा लगता अगर आप यहाँ हमारे लिए गा पाते।'' पं. जसराज ने तुरंत उनकी बात मानी और हरिप्रसाद की बाँसुरी के लिए एक श्लोक गाया। वह एक अद्भुत पल था।

हरिप्रसाद के पुत्र राजीव ने सेलफोन का स्पीकर ऑन कर दिया और उसे हरिप्रसाद के माइक्रोफोन के पास रखा। हरिप्रसाद ने बाँसुरी पर राग वाचस्पति के कुछ सुर बजाए और पं. जसराज ने अपनी आवाज से उसका अनुकरण किया। वहाँ उपस्थित लोग रोमांचित थे। यह प्राचीन और नवीन, परंपरा और प्रौद्योगिकी का उपयुक्त मेल था। दूरसंचार से जुड़े दो अलग-अलग शहरों में भगवान् कृष्ण का जन्मोत्सव मना रहे दो महान् शास्त्रीय संगीतकार।

''यह मेरी किताब के लिए बहुत अच्छा होगा।'' मैंने दुर्गा जसराज से फुसफुसाकर कहा। वह सहमति में मुसकराईं।

''अगली बार टेलीकॉन्फ्रेंस से प्रोग्राम करेंगे।'' उन्होंने मजाक करते हुए कहा। वह छोटी सी जुगलबंदी लगभग पाँच मिनट चली और फिर वापस पूरे जोर से राग वाचस्पति और बाँसुरियों पर लौट आए। संगीत मध्यरात्रि को खत्म हुआ, जब वादक थके हुए, लेकिन फिर भी प्रसन्न लग रहे थे। उत्सव का आखिरी हिस्सा फिर से मंगल आरती का था और उसके बाद प्रसाद वितरण हुआ।

वहाँ बैठकर इतना खूबसूरत बाँसुरी-वादन सुनना एक रोमांचक अनुभव था। यह एक अलग तरीके का बाँसुरी घराना था, अलग यह कि दोनों ओर वंश परंपरा का अभाव था। हरिप्रसाद के पिता संगीतकार नहीं थे और उनके बच्चों में भी कोई पेशेवर बाँसुरी-वादक नहीं है। सभी विद्यार्थी भारत और दुनिया के अलग-अलग हिस्सों से आए थे। बाँसुरी बजानेवाला उनका एकमात्र रक्त संबंधी उनका भतीजा राकेश चौरसिया है।

गुरुकुल की कहानी सन् 1988 में शुरू हुई, जब राजीव गांधी भारत के प्रधानमंत्री थे। उनके कार्यकाल में जापान में एक भारत उत्सव आयोजित किया गया। हरिप्रसाद को प्रधानमंत्री कार्यालय से एक फोन आया कि राजीव गांधी चाहते हैं कि वह उत्सव में भाग लें और यह सुझाव दिया गया कि वह प्रधानमंत्री के विमान में जापान तक का सफर करें। इस अनुरोध को हरिप्रसाद ने खुशी-खुशी मान लिया। वह हर किसी के लिए सामान्य लेगरूम से अधिक के साथ टोकियो की एक सुखद यात्रा थी। प्रधानमंत्री के साथ सिर्फ प्रेस सचिव और कुछ प्रेस के लोग ही उस विमान में थे। जैसी कि उम्मीद थी, इस यात्रा में कोई सुरक्षा या इमिग्रेशन मुश्किलें नहीं आईं। यह कार्यक्रम टोकियो के नेशनल थिएटर में आयोजित किया गया था। यह एक नृत्य प्रस्तुति से शुरू हुआ, जिसके बाद हरिप्रसाद का बाँसुरी-वादन था और अंत में राजीव गांधी का भाषण। जापानी लोग दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के इस आकर्षक युवा नेता से प्रभावित लगे और जोरदार तालियाँ बजीं। संध्या का समापन शैंपेन और रात्रिभोज से हुआ, जिसमें

राजीव गांधी के अनुरोध पर सभी कलाकारों को आमंत्रित किया गया था।

रात्रिभोज में राजीव गांधी ने अपनी आम सम्मोहक शैली में हरिप्रसाद से कहा, ''आपका प्रोग्राम बहुत अच्छा हुआ'' जिसके जवाब में हरिप्रसाद ने कहा, ''हमारा क्या अच्छा हुआ। सबसे ज्यादा तालियाँ तो आपको मिलीं।'' जाने से पहले राजीव गांधी ने कहा, ''कभी कोई जरूरत हो तो मिलिएगा।''

वह सन् 1990 का साल था और हरिप्रसाद एक कॉन्सर्ट के लिए नई दिल्ली में थे, जब उन्हें राजीव गांधी के शब्द याद आए। उनकी पत्नी अनुराधा उनके साथ थीं और प्रधानमंत्री से मिलने के लिए उन्हें अधिक मनाने की जरूरत नहीं थी। वे प्रधानमंत्री आवास पर पहुँचे, जहाँ राजीव गांधी ने बहुत गर्मजोशी से उनका स्वागत किया। हरिप्रसाद ने हिचकिचाते हुए, लेकिन आशा के साथ जमीन के एक टुकड़े की इच्छा जाहिर की, जिस पर वह गुरुकुल बना सकें। राजीव गांधी के सचिव जॉर्ज को बुलाया गया। वह न्यू ओखला इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट ऑथोरिटी, जो अब नोएडा के नाम से लोकप्रिय है, के एक ब्लूप्रिंट के साथ आए। उस इलाके का विकास अब भी चल रहा था और वह अभी जैसा चहल-पहलवाला क्षेत्र नहीं था। राजीव गांधी ने गुरुकुल के लिए 20 एकड़ जमीन देने का प्रस्ताव रखा। दुर्भाग्य से सिर्फ एक समस्या थी। हरिप्रसाद को बंबई छोड़कर दिल्ली आना पड़ता, जिससे उन्हें बॉलीवुड का अपना काम छोड़ना पड़ता और उसके साथ मिलनेवाले लाभ से वह वंचित हो जाते। इसके अलावा, अब तक हरिप्रसाद बंबइया हो चुके थे और वह अपने उस प्रिय शहर से बाहर जाने के विचार से डरते थे। उन्होंने ईमानदारी से यह सारी स्थिति राजीव गांधी को बता दी, जिन्होंने सहानुभूति से उनकी समस्या सुनी और एक फोन किया, फिर राजीव गांधी ने मुसकराते हुए कहा, ''चिंता न करें। आपको बंबई में कुछ जमीनें दिखाई जाएँगी। अपनी जरूरत के हिसाब से आप उनमें से पसंद कर लें।''

बंबई लौटने के बाद हरिप्रसाद से मुख्यमंत्री कार्यालय ने संपर्क किया और उन्हें कई प्लॉट दिखाए गए। जुहू इलाके में 800 वर्ग गज का प्लॉट एक रुपया प्रतिवर्ष के टोकन किराए पर निन्यानबे साल के लीज पर फाइनल किया गया। उससे पहले संगठन को एक चैरिटेबल ट्रस्ट के नाम पर पंजीकृत किया जाना था। उसी के अनुसार वृंदावन चैरिटेबल ट्रस्ट बनाया गया, जिसके संस्थापक ट्रस्टी हरिप्रसाद और कार्यकारी ट्रस्टी उनकी एक अत्यंत विशिष्ट शिष्या सितारवादक अवीशा कुलकर्णी थीं। अवीशा के पिता अरविंद कुलकर्णी ने ट्रस्ट को पंजीकृत कराया। इस घटनाक्रम से हरिप्रसाद बहुत प्रसन्न थे और वह प्रधानमंत्री का शुक्रिया अदा करने नई दिल्ली भी गए, लेकिन एक बार शुरुआती जोश के ठंडा होने के बाद उन्हें यह अहसास हुआ कि उनके पास बहुत अच्छी जमीन है, लेकिन अपनी पसंद का संस्थान बनाने के लिए उनके पास कोई पैसा नहीं था।

अगले नौ या दस सालों तक वह जमीन वहीं रही, जिसका पैसे के अभाव में उपयोग नहीं किया गया। कुछ लोगों ने सुझाव दिया कि वह इमारत के लिए पैसे जुटाने के लिए वहाँ खूब सारे कॉन्सर्ट आयोजित करें। उस समय कंसर्टों से हजारों की रकम जमा हो सकती थी, लेकिन जरूरत लाखों की थी। संगीत समुदाय के दोस्तों जैसे किशोरी अमोनकर, पं. जसराज और अमजद अली खाँ ने इसमें मदद की, लेकिन फिर भी जरूरत के हिसाब से रकम जमा नहीं हो सकी। इस बीच भू-राजस्व विभाग ने इस बारे में पड़ताल करनी शुरू कर दी। सरकार द्वारा आवंटित जमीन पर आवंटन की तिथि से तीन सालों के अंदर निर्माण हो जाना चाहिए, अन्यथा वह रद हो जाती है। हालाँकि ऐसी कारगवाई नहीं की गई, क्योंकि वह जमीन सांस्कृतिक उद्देश्य के लिए थी, लेकिन लगातार इसका डर बना हुआ था।

बंबई के ताज होटल में वकीलों की एक कॉन्फ्रेंस के लिए हरिप्रसाद की एक प्रस्तुति ने सबकुछ बदल दिया। दर्शकों में ताज ग्रुप ऑफ होटल्स की स्वामी कंपनी इंडियन होटल्स लि. के अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक अजित

केरकर भी थे। वह संगीत के बड़े प्रेमी थे और महान् गायिका केसरबाई केरकर के वंशज थे। शो के बाद वह हरिप्रसाद से मिले और पूछा कि क्या वह भविष्य में ऐसे कॉन्फ्रेंसों के लिए बजाने में दिलचस्पी रखते हैं और अगले एक-दो महीने की उनकी योजनाएँ क्या हैं?

''मेरा अमेरिका का एक महीने का टूर है, लेकिन आयोजकों ने अब तक टिकट के पैसे नहीं भेजे हैं।'' हरिप्रसाद ने कहा

''अमेरिका में रहने का क्या बंदोबस्त है?'' अजित केरकर ने पूछा।

''मैं लोगों के घरों में रहूँगा।'' हरिप्रसाद ने जवाब दिया।

''कल अपने पासपोर्ट के साथ मुझसे मिलिए और देखते हैं कि क्या व्यवस्था हो पाती है।'' अजित केरकर ने कहा।

अब बंद हो चुका पैन अमेरिकन एयरलाइंस का कार्यालय ताज होटल के परिसर में ही था। हरिप्रसाद का टिकट उनके बिना एक भी पैसे खर्च किए जारी कर दिया गया। जिन-जिन अमेरिकी शहरों में ताज का अन्य होटलों से गठजोड़ था, वहाँ होटल की व्यवस्था भी नि:शुल्क कर दी गई। यह सब श्री केरकर की उदारता के कारण हुआ। अमेरिका से लौटने के बाद हरिप्रसाद ने अजित केरकर को शुक्रिया कहने के लिए फोन किया। केरकर ने आग्रह किया कि हरिप्रसाद उनके साथ भोजन करें तो हरिप्रसाद ने कुछ दक्षिण भारतीय चीजें मँगाईं। इडली और वडा के नाश्ते पर अजित केरकर ने हरिप्रसाद से पूछा, ''तो एक संगीत-प्रेमी के रूप में मैं आपके लिए और क्या कर सकता हूँ?'' हरिप्रसाद ने अवसर का लाभ उठाते हुए उन्हें गुरुकुल की जमीन के बारे में बताया। अजित केरकर ने तत्काल एक प्लान तैयार किया, जिसमें ताज के पास बेसमेंट व प्रथम तल होगा और गुरुकुल के पास ऊपर के दो तल, जिसके निर्माण में ताज ग्रुप ऑफ होटल्स पैसा लगाएगा। इसे शुरुआत का एकमात्र तरीका मानते हुए हरिप्रसाद ने समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए और बेसमेंट का निर्माण तुरंत शुरू हो गया।

समझौते पर हस्ताक्षर के बाद हरिप्रसाद ने इस पर पुनर्विचार किया। उन्होंने भगवान् कृष्ण के वृंदावन की तर्ज पर एक गुरुकुल की कल्पना की थी, जबकि यहाँ पर उन्हें एक ब्यूटी सैलून, कुछ दुकानों और एक जंक फूड की दुकान के ऊपर दो तल मिल रहे थे। गुरुकुल के मंदिर की क्या पवित्रता रह जाती, अगर नीचे की दुकानें मांसाहारी भोजन परोसतीं? अगर नीचे के तलों पर खरीदारों का शोरगुल होता तो गुरुकुल के विद्यार्थियों के लिए किस तरह की शांति और मौन रह जाता?वह गुरु माँ को किस तरह यह समझा पाते कि उन्होंने अपना स्वर्ग किस नरक में बनाने के लिए चुना है? इन विचारों के दिमाग में गंभीरता से आने के साथ निराश हरिप्रसाद ने बेसमेंट का निर्माण पूरा होते देखा, ''हमको ऐसा लगा, जैसे हमने अपने आपको बेच दिया है।'' हरिप्रसाद आज भी अपने चेहरे पर पछतावे के भावों के साथ कहते हैं।

अचानक अजित केरकर ने ताज की अपनी नौकरी छोड़ दी। उनके जाने के साथ ही भवन का निर्माण लटक गया। स्थिति पहले से भी बदतर लगने लगी। उनके पास अपने गुरुकुल के लिए जमीन का एक टुकड़ा था, जो अब ताज ग्रुप ऑफ होटल्स के पास था। वहाँ एक अद्‌र्धनिर्मित इमारत थी, जिसके पूरा होने की संभावना दूर-दूर तक नहीं लग रही थी।

वह वास्तव में एक छिपा हुआ वरदान था, सिर्फ उस समय उन्हें उसका पता नहीं लगा।

तीन महीने बाद हरिप्रसाद भारत के राष्ट्रपति से अपना पद्‌मविभूषण पुरस्कार लेने राष्ट्रपति भवन में थे और वहाँ रतन टाटा अपना पद्‌मभूषण ग्रहण करने आए हुए थे। टाटा ने बंबई में बहुत से प्रेक्षागृह बनाए हैं, जैसे नेशनल सेंटर फॉर परफॉर्मिंग आर्ट्स (एन.सी.पी.ए.), ओपेरा हाउस और होमी भाभा ऑडिटोरियम। हरिप्रसाद को उन सबके

उद्घाटन के अवसर पर बाँसुरी-वादन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसलिए रतन टाटा हरिप्रसाद और उनके संगीत से परिचित थे। राष्ट्रपति भवन में रतन टाटा ने हरिप्रसाद को पहचाना और उन्हें 'बधाई' देते हुए अभिवादन किया, जिसके लिए हरिप्रसाद ने भी उन्हें बधाई देते हुए जवाब दिया।

यहाँ पर अवसर देखते हुए हरिप्रसाद ने पूछा, ''क्या मैं आपका थोड़ा समय ले सकता हूँ?''

''बिलकुल।''

हरिप्रसाद ने रतन टाटा के सामने अपनी स्थिति बताई, जिन्होंने कहा, ''कृपया मुझे बताइए कि आपको क्या चाहिए। एक अच्छे वास्तुविद् से आकलन कराकर मुझे अपना प्रस्ताव भेजिए।''

वापस बंबई आकर हरिप्रसाद ने लागत का अंदाजा लगाया और रतन टाटा के कार्यालय में प्रस्ताव भेज दिया। रतन टाटा ने सिर्फ एक सप्ताह के अंदर भवन निर्माण को मंजूरी दे दी। उन्होंने यहाँ तक पूछा कि क्या हरिप्रसाद गुरुकुल बनाने के लिए टाटा ग्रुप ऑफ कंपनीज की निर्माण शाखा की मदद लेना चाहते हैं या खुद निर्माण करवाना चाहते हैं? हरिप्रसाद ईंट-गारा के लिए अपना स्वर और ताल नहीं छोड़ सकते थे और वैसे भी वह कभी भी इस सौदे से पैसा नहीं कमाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने टाटा को निर्माण का काम सौंप दिया। एक वर्ष बाद वर्ष 2002 में उन्हें गुरुकुल की चाबियाँ सौंप दी गईं। वह बिलकुल वैसा ही था, जैसा चाहते थे, बेसमेंट में एक कॉन्सर्ट हॉल और स्टुडियो, भूतल पर मंदिर, एक कक्षा एवं एक रसोईघर और प्रथम तल पर उनका कार्यालय, उनका शयन-कक्ष और विद्यार्थियों के रहने का स्थान। कोई दुकान, कोई सैलून, कोई फास्ट फूड नहीं, बाँसुरी-वादकों की भावी पीढ़ी को तैयार करने के लिए पूरी तरह व्यावसायिकता से मुक्त एक स्थान।

उनके अधिकतर समकालीन अपने घरों से शिक्षा देकर संतुष्ट हैं। हरिप्रसाद को ऐसे विस्तृत गुरुकुल की जरूरत क्यों पड़ी? इस बारे में वह बिलकुल स्पष्ट हैं, ''जब मैं अपनी गुरु माँ अन्नपूर्णा देवी और उनके पिता बाबा अलाउद्दीन खाँ साहब के बारे में सोचता हूँ, मैं बहुत छोटा महसूस करता हूँ। उन्होंने अपने विद्यार्थियों के लिए इतना कुछ किया है, लेकिन मैंने कुछ नहीं किया। जब मैं गुरु माँ के पास जाता तो वह पहले मुझे भोजन करातीं, फिर सिखातीं। मैं अपनी स्टुडियो रिकॉर्डिंग खत्म करके सीधे उनके पास जाता था। सभी माताओं की तरह वह जानती थीं कि मैं भूखा होऊँगा और आग्रह करतीं कि पहले मैं कुछ खा लूँ। उन्होंने मुझसे एक भी पैसा लिये बिना मुझे प्यार, भोजन और संगीत शिक्षा दी। बाबा अलाउद्दीन खाँ साहब ने मइहर में रवि शंकर और तिमिर बारन जैसे विद्यार्थियों को उसी तरह भोजन कराया, कपड़े दिए, उनका पालन-पोषण किया और शिक्षा दी, जिस प्रकार उन्होंने अपने बेटे अली अकबर खाँ को आगे बढ़ाया। उन्होंने कभी एक पैसा नहीं लिया और बदले में किसी चीज की आशा नहीं की। वह एक सच्चे गुरु थे। अब जबकि मैंने एक संगीतकार के रूप में अपनी पहचान बना ली है, मैं भारतीय शास्त्रीय संगीत की दुनिया को कुछ लौटाना चाहता हूँ, जिसने मुझे इतना धन, नाम और आंतरिक संतोष दिया है। मेरी गुरु माँ और उनके पिता की तरह मैं भी संगीतकारों की एक पीढ़ी को आगे बढ़ाना चाहता हूँ। वे बिना एक भी पैसा दिए गुरुकुल में रहेंगे और मुझसे सीखेंगे। उन्हें आगे बढ़ते और अच्छे परफॉर्मरों में बदलते देखने की खुशी ही मेरा पारिश्रमिक है।''

यह ऐसा सपना है, जो निश्चित रूप से सच होता लग रहा है। गुरुकुल को रतन टाटा ट्रस्ट द्वारा 10 लाख रुपयों का एक बैंक फिक्स्ड डिपोजिट उपहार में दिया गया है। इस पर मिलनेवाले ब्याज से भवन की मरम्मत और रख-रखाव होता है। गुरुकुल ट्रस्ट बड़े-छोटे, भारत भर के व्यावसायिक घरानों की ओर से मिले अनुदानों से चलता है, जिसमें सबसे बड़ा अनुदान हरिप्रसाद ने स्वयं दिया है। मितव्ययी और किफायती हरिप्रसाद खुद देखते हैं कि जरूरत न पड़ने पर सभी पंखे और लाइट बंद हों और बहुत अधिक आवश्यकता न होने पर किसी एयर कंडीशनर का

इस्तेमाल न किया जाए। वह खुद एयर कंडीशनिंग पसंद नहीं करते और ताजा हवा पसंद करते हैं।

रेजीडेंट विद्यार्थी होने के लिए विद्यार्थी को 50,000 रुपए की वापस की जाने वाली राशि जमा करनी होती है। उसके बाद किसी भुगतान की जरूरत नहीं होती। भोजन और सभी सुविधाएँ गुरुकुल द्वारा उपलब्ध कराई जाती हैं। न्यूनतम प्रशिक्षण अवधि तीन साल है। विद्यार्थियों को निर्दिष्ट अवकाशों में ही घर जाने की अनुमति दी जाती है। तीन सालों के बाद विद्यार्थी के पास वहाँ और अधिक समय रहने या अपनी जमा की गई राशि के साथ वापस जाने का विकल्प होता है। यदि वह अनिवार्य तीन वर्षों की अवधि को पूरा किए बिना चला जाता है तो उसकी जमा राशि जब्त कर ली जाती है। ऐसा उन लोगों को आने से रोकने के लिए किया जाता है, जो गंभीर नहीं हैं और कुछ महीनों बाद संस्थान छोड़ देने की योजना रखते हैं। हरिप्रसाद अपनी ऊर्जा उन लोगों पर खर्च करना चाहते हैं, जो पूरा कोर्स करना चाहते हैं। रेजीडेंट के रूप में स्वीकार किए जाने से पहले आवेदकों की सावधानी से छानबीन की जाती है। संगीत संबंधी क्षमता के अलावा संगीत और गुरुकुल के प्रति उनका रवैया सही होना चाहिए।

टेलीविजन और भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण ने एक 'स्टार' संस्कृति बना दी है, जहाँ हर कोई ख्याति और संपत्ति के शॉर्टकट हासिल करना चाहता है। विद्यार्थी इससे सबसे अधिक पीड़ित होते हैं, क्योंकि वे स्वयं युवा और अधीर होते हैं और अति महत्त्वाकांक्षी माता-पिता द्वारा सीमाओं से परे धकेले जाते हैं। हरिप्रसाद यह सुनिश्चित करने के लिए माता-पिता से भी मिलते हैं कि क्या वे वास्तव में अपने बच्चों को परफॉर्मिंग कलाकार बनाने के इच्छुक हैं? विद्यार्थी का ध्यान बँटाने या चिंता के लिए घर पर कोई बीमार रिश्तेदार नहीं होना चाहिए। एक बार यहाँ आने पर पीछे मुड़कर नहीं देखना होता है। आप या तो कॉन्सर्ट बाँसुरी-वादक बनना चाहते हैं या नहीं।

एक बार स्वीकार कर लिये जाने के बाद विद्यार्थियों की तीन वर्षों की सख्त ट्रेनिंग होती है। उन्हें सुबह छह बजे जगना होता है और नहा-धोकर नाश्ते के लिए साढ़े सात बजे तक पहुँचना होता है। नाश्ते के बाद विद्यार्थी खुद रियाज करते हैं, जब तक कि हरिप्रसाद के कक्षा लेने का समय नहीं हो जाता, जो आमतौर पर ग्यारह बजे होता है। यह दो घंटे का सत्र होता है, जहाँ वह बाँसुरी-वादन करते हैं, जिसके बाद विद्यार्थी करते हैं। 'गुरुजी' की कक्षा के बाद दोपहर का भोजन होता है, जिसके बाद वे आपस में संगीत पर चर्चा करते हैं या बेसमेंट में स्थित पुस्तकालय में संगीत पर उपलब्ध पुस्तकें पढ़ सकते हैं। जूनियर छात्र अपने सीनियरों से मदद भी ले सकते हैं। दोपहर में आराम भी किया जा सकता है। संध्या में विद्यार्थी मंदिर में आरती के लिए एकत्र होते हैं। यदि आप भगवान् कृष्ण का वाद्य सीखना चाहते हैं तो उन्हें खुश रखना होगा। एक लंबे रियाज के बाद सोने का समय हो जाता है।

तीन सालों या अधिक की कड़ी मेहनत के बाद गुरुकुल विद्यार्थियों को कोई प्रमाणपत्र नहीं देता। कारण पूछे जाने पर हरिप्रसाद तुरंत जवाब देते हैं, ''क्या स्वामी हरिदास के पास कोई प्रमाणपत्र था? क्या मियाँ तानसेन ने अकबर के दरबार में बजाने के लिए अपनी डिग्री दिखाई थी?क्या किसी में हिम्मत है कि रवि शंकर, अली अकबर खाँ या लता मंगेशकर से प्रमाणपत्र माँग सके? मेरे पचास सालों के बाँसुरी-वादन में मैंने देखा है कि प्रमाणपत्र कागज के व्यर्थ टुकड़े होते हैं। जिनके पास वह होता है, वे आमतौर पर संगीत शिक्षक बनते हैं और घर-घर जाकर छोटे बच्चों को सिखाते हैं। जब मेरे विद्यार्थी मंच पर बजाएँगे तो संगीत खुद बोलेगा। उनका प्रदर्शन उनका मेरिट सर्टिफिकेट होगा। लोगों को अकसर प्रमाणपत्रों के आधार पर नौकरियाँ मिल जाती हैं, लेकिन वे प्रदर्शन नहीं कर सकते, क्योंकि उनके पास सिर्फ सर्टिफिकेट होता है और प्रतिभा या व्यावहारिक ज्ञान का अभाव होता है। गुरुकुल की प्रणाली व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित है। बेसमेंट में एक छोटा सा स्टुडियो है, जहाँ विद्यार्थी रिकॉर्ड करते हैं और अपने आपको सुनते हैं। शुरू से ही उन्हें माइक्रोफोन का सामना करना और श्रोताओं का सामना करना सिखाया

जाता है।''

सर रतन टाटा ट्रस्ट के अनुदान से वर्ष 2002 में निर्मित वृंदावन चैरिटेबल ट्रस्ट गुरुकुल में लगी आभार-प्रदर्शन पट्टिका।

हरिप्रसाद विद्यार्थियों को अपने जैसा तैयार करते हैं। वह पूर्ण आत्मसमर्पण चाहते हैं, जिस प्रकार उन्होंने अपने पूरे अस्तित्व को बाँसुरी को समर्पित कर दिया। उन्होंने एक संन्यासी की तरह अपने परिवार के साथ रहना छोड़ दिया है और अब गुरुकुल में रहते हैं (जब वह दुनिया का दौरा नहीं कर रहे होते हैं)। तीन बेटों के बाद वह अपने पृथ्वी ऋण (मातृ ऋण) से मुक्त हो गए हैं।

स्वभाव और जो अभिव्यक्ति की आजादी वह अपने छात्रों को देते हैं, उन अर्थों में हरिप्रसाद सबसे आदर्श गुरु हैं। जिस तरह उन्होंने संगीत की कई विधाओं के साथ प्रयोग किया, उनके शिष्य आधारभूत प्रशिक्षण के बाद किसी भी प्रकार के संगीत में जाने के लिए स्वतंत्र हैं। आज दुनिया भर में उनके विद्यार्थी असली भारतीय शास्त्रीय संगीत से लेकर फ्यूजन, फिल्म और लाउंज संगीत तक सबकुछ करते हैं।

इन सभी वर्षों में उनके किसी भी विद्यार्थी ने उन्हें क्रोधित नहीं देखा। हरिप्रसाद को सिर्फ एक बार सन् 1992 में वाशिंगटन में विश्व हिंदू परिषद् द्वारा आयोजित विजन 2000 कार्यक्रम में अनपेक्षित रूप से आक्रामक देखा गया। मुरली मनोहर जोशी, उमा भारती और विहिप सुप्रीमो अशोक सिंघल को इस शो में शामिल होना था। हरिप्रसाद अपने तीन साथियों के साथ होटल पहुँचे तो देखा कि चार कमरों, जिनका वायदा किया गया था, की बजाय सिर्फ दो कमरे थे। उनका स्वागत करने का काम जिस व्यक्ति को सौंपा गया था, उसने अन्य दो कमरों की उपलब्धता के बारे में पूछे जाने पर काफी रूखा जवाब दिया। हरिप्रसाद ने कुछ और कहे बिना अपना बोरिया-बिस्तर उठाया और दूसरों को भी ऐसा ही करने को कहा, फिर इस घोषणा के साथ विहिप प्रतिनिधि को हक्का-बक्का कर दिया, ''हम अभी हवाई अड्डे वापस जाकर भारत की अगली फ्लाइट ले रहे हैं। हम इन लोगों के लिए प्रदर्शन नहीं कर सकते।'' आखिरकार पीयूष सिंघल (अशोक सिंघल के भाई) के हस्तक्षेप पर हरिप्रसाद वहाँ रुके और परफॉर्म किया।

लंबे समय तक रियाज एक अनिवार्यता है। हरिप्रसाद स्वयं अब तक रियाज करते हैं, कई बार लगातार कई घंटों तक पुरानी धुनों पर या अपने विद्यार्थियों और श्रोताओं के लिए नई धुनें तैयार करते हुए।

बड़ी और पूरी दुनिया के लिए उन्हें तैयार करने के उद्देश्य से हरिप्रसाद अपने विद्यार्थियों को अपने साथ टूर पर ले जाते हैं, जब वे लगभग प्रशिक्षित होते हैं। वे राग के मूल स्वरों को बजाते हुए शुरुआत करते हैं और लंबे स्वरों तक जाते हैं। अंत में उनके वादन के बीच वे अपनी सोलो प्रस्तुति करते हैं। अधिकांश विद्यार्थियों के लिए गुरुजी के साथ टूर सिर्फ मंच-भय पर काबू पाने से कहीं अधिक है, यह मंच पर और उसके पीछे के व्यवहार का क्रैश कोर्स होता है। उनके भतीजे और पाँच साल की उम्र से उनके विद्यार्थी राकेश चौरसिया को सन् 1987 में मास्को में हरिप्रसाद के साथ टूर पर जाने का अवसर मिला। वह उनका मंच पर पहला प्रदर्शन था और वह भी विदेशी धरती पर विदेशी दर्शकों के सामने। वह ढाई महीने का टूर था, जिसके समाप्त होने पर मंच का भय एक अतीत की चीज

बन चुकी थी। उन्होंने बाबूजी, जो वह हरिप्रसाद को कहते हैं, से बहुत कुछ सीखा। किसी परफॉर्मेंस के बाद जब दूसरे संगीतकार होटल की लॉबी में बैठकर गप मारते थे, उन्हें अपने कमरे में जाकर आराम करने या अगले दिन के कॉन्सर्ट की तैयारी करने या समाप्त हुए कॉन्सर्ट पर विचार करने तथा सही-गलत का विश्लेषण करने और भविष्य के प्रदर्शनों को सुधारने के तरीके सोचने को कहा जाता।

''अपनी ऊर्जा को बचाकर रखो, छोटी-मोटी चीजों पर अपना समय बरबाद मत करो और हमेशा सकारात्मक सोच रखो।'' ये हरिप्रसाद द्वारा उन्हें दिए गए कुछ निर्देश थे।

उनके अंदर का कुश्तीबाज अब भी फिट रहना चाहता है, इसलिए चाहे कोई भी जगह हो, वह पैदल चलना पसंद करते हैं। इसके कारण उनके साथ टूर पर गए विद्यार्थियों को जॉगिंग पर जाने के लिए प्रेरित किया जाता है। रात को बिस्तर पर जाने से पहले हरिप्रसादजी का नियम है कि वह दूसरे संगीतकारों को सूचित करते हैं कि कॉन्सर्ट स्थल पर जाने के लिए होटल लॉबी में कब एकत्र होना है। चाहे उनके साथी कितने भी समय के पाबंद हों, किसी-न-किसी तरह हरिप्रसाद हमेशा पहले से लॉबी में उनका इंतजार कर रहे होते हैं।

हरिप्रसाद के बारे में आप जिस चीज पर सबसे पहले गौर करते हैं, वह है उनके हाथों का आकार। वे बहुत बड़े हैं, जैसा कि बाँसुरीवादक के होना चाहिए। उँगलियाँ उल्लेखनीय रूप से कोमल लगती हैं। उम्र के साथ आनेवाली उँगलियों की मोटाई या जोड़ों का जुड़ना उनके साथ नहीं है। उन्हें गुरुकुल में टहलते देखिए और आप उनकी चाल की सराहना किए बिना नहीं रह पाएँगे। अपनी रीढ़ से लेकर अपने सिर तक वह बिलकुल सीधे हैं। सत्तर की उम्र में पहुँच रहे व्यक्ति की तरह उनके कंधे झुके हुए नहीं हैं। उनके चेहरे पर ध्यान से देखिए और आपको दिखेगा कि उनके ऊपरी होंठ के दाहिने अर्धांग में एक स्थायी घुमाव है, जो बरसों से बाँसुरी बजाने के लिए जरूरी मुद्रा बनाने से आया है। नई उम्र के विचारक उसे 'अल्फा लेवल' कहेंगे, योगी उसे बैराग कहेंगे और आप जो चाहें कह सकते हैं, लेकिन विराग का आभामंडल देखना बहुत आसान है, फिर भी वह सबकुछ देखते और याद रखते हैं, गुरुकुल में टपकते हुए नलके से लेकर छह माह पहले पेरिस में अपने छात्र को सिखाए राग तक।

हरिप्रसाद में ऐसे गुण हैं, जो लगभग मानवेतर हैं। समय की उनकी समझ, पीड़ा और थकान सहने की उनकी क्षमता और अपनी भावनाओं पर नियंत्रण बहुत अधिक है। उन्हें टेलीफोन नंबर तसवीरनुमा स्मरण होते हैं और वह कोई भी फोन करने से पहले अपनी डायरी नहीं देखते। कभी अलार्म घड़ी का इस्तेमाल न करने के बावजूद उन्होंने अपने जीवन में कभी कोई फ्लाइट नहीं छोड़ी या कभी किसी निर्धारित काम के लिए देर से नहीं पहुँचे। असंख्य अवसरों पर जब फ्लाइट विलंबित हो जाती है तो वह हवाई अड्डे से सीधे मंच पर पहुँचे हैं, दो घंटे तक बाँसुरी-वादन किया है और फिर दूसरी फ्लाइट ली है। कई अवसरों पर विद्यार्थियों ने गुरुजी को एक लंबे टूर से या रात भर के रिकॉर्डिंग सत्र से लौटकर नहाए या झपकी लिये बिना गुरुकुल में कक्षा लेते देखा है। उस छात्र की खैर नहीं जो सुझाता है कि उन्हें थोड़ा आराम करके पढ़ाना चाहिए। कई बार वह रिकॉर्डिंग स्टुडियो से हवाई अड्डे गए हैं, विदेश की फ्लाइट लेकर वहाँ परफॉर्म करके वापस आए हैं और सीधे स्टुडियो जाकर वहीं से शुरू किया है, जहाँ छोड़ा था। रूपक कुलकर्णी याद करते हैं, जब वे लोग सिडनी में थे और हरिप्रसाद अपने पान में रखने के लिए सरौते से सुपारी काट रहे थे। दुर्घटनावश उनकी उँगली कट गई। उन्होंने खून रोकने के लिए थोड़ी सी दवा लगाई और मंच पर चले गए। बाँसुरी बजाने के लिए आवश्यक उँगलियों की तेज गति के साथ खून फिर बहना शुरू हो गया। हरिप्रसाद अपने संगीत में इतने डूबे हुए थे कि उन्हें न तो दर्द का पता चला, न ही खून पर ध्यान दिया। बाँसुरी-वादन समाप्त कर चुकने के बाद और अपने कुरते पर दाग देखने के बाद उन्हें पता चला कि उनकी उँगली से फिर खून बह रहा है।

परिवार का ड्राइवर उन्हें हवाई अड्डे से गुरुकुल ले जाता है। हरिप्रसाद लोहे के गेट से घुसते ही 'दादाजी' की चिल्लाहट सुनते हैं। वह प्यार से मुसकराते हैं। यह खुशी की चिल्लाहट बलराम और शंबाजी के बच्चों की है, जो गुरुकुल में रहते हैं। बलराम चौरसिया परिवार में तब काम करने आए थे, जब वह आठ वर्ष के थे और अब पैंतीस वर्ष के हैं। हरिप्रसाद के गुरुकुल आ जाने के बाद वह भी सन् 2002 में गुरुकुल आ गए और उनकी हर जरूरत का खयाल रखते हैं। शंबाजी गुरुकुल की देखभाल करते हैं और उसके सहज संचालन के लिए जवाबदेह हैं। हरिप्रसाद मिठाइयाँ हाथ में निकालते हैं, जो उन्होंने फ्लाइट में उठाई थीं और सभी बच्चों को एक-एक देते हैं। वे तेजी से शुक्रिया कहकर खेलने के लिए भाग जाते हैं। फोन पर किसी को निर्देश देती पुष्पांजलि नीचे झुककर उनके पाँव छूती हैं। कुछ मिठाइयाँ अपने दुपट्टा में रखती हैं। वह उनकी पसंदीदा सदस्य हैं और जानती हैं। बलराम, शंबाजी और छात्र मुसकराते हैं। गुरुजी के लौटने पर मौन खुशी है। वह चारों ओर देखते हुए यह संतोष करते हैं कि सबकुछ वैसा ही है, जैसा कुछ दिनों पहले छोड़ गए थे।

वह सच में ऐसे गुरु हैं, जो अपने आप और दुनिया के साथ सहज हैं।

❑

जाते-जाते

रॉटरडम की एक भीगी शाम की मंद पड़ती रोशनी उस्ताद के आधे चेहरे को रोशन कर रही है। मौसम की वजह से मिजाज भी सुस्त है या इसका उलटा भी हो सकता है, बताना मुश्किल है। यह उनके साथ मेरी आखिरी बैठक है, जब वह मुंबई और मैं कोलकाता की ओर प्रस्थान करता हूँ। मेरा हार्ड ड्राइव इंटरव्यू से फुल है। कुछ ही स्पेस बाकी होने की वजह से मैं कुछ ऐसे सवाल दागने का फैसला करता हूँ, जो उम्मीद है कि इस पुस्तक का उपयुक्त समापन करने में मददगार होंगे। प्रश्नों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है, लेकिन कुछ उत्तर पूर्वानुमान से परे हैं...

पंडितजी, आपके विचार में भारतीय शास्त्रीय संगीत का भविष्य क्या है?

शास्त्रीय की परिभाषा स्थायी है। उसका आधार बहुत गहरा है। उसकी जड़ें गहरी और अंत:स्थापित हैं। जब हम भारतीय शास्त्रीय संगीत की बात करते हैं तो वह सूर्य, चंद्र, नदियों और पहाड़ों की बात करने जैसा है। वे हमेशा से थे, हमेशा हैं और हमेशा रहेंगे। यही बात शास्त्रीय संगीत के बारे में कही जा सकती है। वह थी, है और रहेगी। लोग चंद्रमा की रोशनी जैसी दिखनेवाली एक विशाल रोशनी बनाने की कोशिश कर सकते हैं या मरुस्थल में एक कृत्रिम नदी बना सकते हैं या बॉलीवुड में कोई ऐसा पहाड़ बना सकता है, जो हिमालय से ऊँचा दिखे, लेकिन कोई गंगा या यमुना जैसी नदी या सूर्य या पहाड़ नहीं बना सकता। उनकी सिर्फ नकल की जा सकती है और वे सिर्फ असली चीज के दयनीय विकल्प होंगे।

इसलिए जिस शास्त्रीय संगीत का जन्म हो चुका है, हमारी परंपरा का एक हिस्सा है। वह ईश्वर से, ब्रह्मा से जुड़ा है, जिसे हम ब्रह्म-नाद कहते हैं। यह ब्रह्मा द्वारा पूर्वनिर्धारित नाद है। संगीत का नाद, मानव ध्वनि का नाद, पक्षियों का नाद सबकुछ उसके द्वारा तय किया गया है। हमारे शास्त्रीय संगीत का नाद क्या होगा, वह आत्मा को कितना सुकून पहुँचाएगा, वह हमें कितना आनंद देगा, यह सब ब्रह्मा ने तय किया हुआ है। जिस तरह उसने आपका शरीर और प्रकृति मेरे शरीर और प्रकृति से भिन्न बनाया है, संगीत की ध्वनि पहले से निर्धारित है।

भारतीय संगीत की ध्वनि पाश्चात्य संगीत से भिन्न है। दोनों के रंग, गुण, वादन की शैली, संकल्पना और कलाकार द्वारा प्रस्तुत संगीत को समझने के तरीके भिन्न हैं। वे (पाश्चात्य संगीतकार) संगीत को कागज के टुकड़े से पढ़ते हैं, जबकि हम स्मरण से बजाते हैं—आमतौर पर बंद आँखों के साथ। यह सब ईश्वर का बनाया हुआ है। लोग हर प्रकार की इलेक्ट्रॉनिक ध्वनियाँ और रीमिक्स आदि लाने की कोशिश कर सकते हैं, इसलिए कुछ समय के लिए लगता है कि शास्त्रीय संगीत दब रहा है, लेकिन हम बार-बार उस पर लौटकर आएँगे। दूसरे संगीत रूप कुछ समय के लिए हावी होते लग सकते हैं, लेकिन यह अस्थायी है। इसके अलावा, हमारा शास्त्रीय संगीत हमारे लोक संगीत से उपजा है। हमारे पूर्वजों को रागों और रागिनियों का कोई ज्ञान नहीं था, लेकिन उन्होंने प्रारंभिक उपकरणों पर जो भी गुनगुनाया या बजाया, वह हमारे शास्त्रीय संगीत में विकसित हुआ। इसलिए यह हमारे खून और हमारे जीन में है और कहीं नहीं जा सकता।

खासकर बाँसुरी के लिए आप कैसा भविष्य देखते हैं?

पहले बाँसुरी का भविष्य कम उज्ज्वल था, लेकिन अब वह बहुत उज्ज्वल है तथा आगे और उज्ज्वल होगा। इसके कई कारण हैं। यह एक बहुत साधारण वाद्य है। यह भारत में हर कहीं उपलब्ध है, सभी मेलों और गाँव के मेलों में, सड़कों पर, हर कहीं। कोई भी उसे बजा सकता है—लड़कियाँ और बच्चे भी। यह बहुत सस्ता होता है,

इसलिए गरीब-से-गरीब लोग भी इसे खरीद सकते हैं। अगर कोई इसे सही तरीके से बजाता है तो उसे भगवान् कृष्ण का स्मरण होता है और वह कृष्ण से एक प्रकार का जुड़ाव महसूस करता है। उसका मन और हृदय तुरंत एक दिव्य-लोक में पहुँच जाता है, क्योंकि भगवान् कृष्ण का वाद्य एक दिव्य वाद्य होने के कारण इसमें सम्मोहित करने की क्षमता है। यह ईश्वर का अपना वाद्य है, क्योंकि इसमें कोई प्लास्टिक या धातु नहीं है। यह बस बाँस का एक टुकड़ा है। भगवान् कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि पर पूरी दुनिया मोहित हो गई थी।

खासकर गोपियाँ?

इसमें बहुत अतिशयोक्ति है। मैं पचास वर्षों से बाँसुरी बजा रहा हूँ, कोई मेरे पीछे दौड़ती हुई नहीं आई। क्या आपको लगता है कि उन दिनों स्त्रियाँ पागल थीं?उन्हें ध्वनि आकर्षित करती थी, वह दिव्य ध्वनि। लोग रावण को दस सिरोंवाला मानते हैं। क्या आपको लगता है कि उसके वाकई दस सिर रहे होंगे? यह बस जताने का तरीका है कि उसके पास दस लोगों का दिमाग या क्षमता थी, जिसकी वजह से देवता भी उससे डरते थे। अगर वाकई दस सिर होते तो उसके अपने बच्चे भी उससे भाग खड़े होते, लेकिन हाँ, स्त्रियों पर लौटें तो दुनिया में अब अधिक-से-अधिक महिलाएँ बाँसुरी बजा रही हैं। अगर बाँसुरी नहीं तो सिल्वर फ्लूट या पश्चिमी रिकॉर्डर। वे वह कर रही हैं, जो राधा भी नहीं कर सकी। राधा बस कृष्ण और उनकी बाँसुरी से प्रेम करती थीं, लेकिन ये महिलाएँ कृष्ण का वाद्य बजाती हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी अगर आप संगीत वाद्यों को देखें तो बाँसुरी एकमात्र ऐसा वाद्य है, जो सदियों से हर देश में और हर संस्कृति में पाया जाता है। दूसरे भारतीय उपकरण अन्य देशों के वाद्यों के समान हैं या नहीं भी हैं, लेकिन आपको एक या दूसरे रूप में बाँसुरी जरूर देखने को मिलेगी। इसलिए मुझे लगता है कि बाँसुरी का भविष्य वास्तव में बहुत उज्ज्वल है। मैं लगभग बावन वर्षों से पेशेवर रूप में उसे बजा रहा हूँ और मैंने उसे अधिक और अधिक लोकप्रिय होते देखा है। बाँसुरी का अस्तित्व तब तक रहेगा, जब तक इस दुनिया में लोग रहेंगे।

बाँसुरी के प्रोत्साहन और कंसर्टों के लिए प्रायोजक पाना क्या कठिन होता है?

मैं एक गरीब व्यक्ति हूँ और फिर भी इतना बड़ा गुरुकुल स्थापित कर पाया। यह सब प्रायोजकों की बदौलत है, जिन्होंने संगीत के लिए, बाँसुरी के लिए इतना कुछ किया है। हरिप्रसाद चौरसिया के लिए नहीं, बल्कि उनके संगीत के लिए। लोगों ने मुझे वह सबकुछ दिया है, जो मैंने चाहा है, बल्कि कुछ ज्यादा ही। मेरा मुंबई में एक गुरुकुल है, भुवनेश्वर में दो जगह जमीन है और अलबुकर्की, न्यू मेक्सिको, यू.एस.ए. में बाईस एकड़ जमीन है। पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य ने मुझे राजरहाट, कोलकाता में जमीन देने का प्रस्ताव किया है। मुझे नहीं लगता कि इस पृथ्वी पर मुझसे अधिक सौभाग्यशाली कोई संगीतकार है। मैंने जो भी चाहा है, वह हमेशा मुझे मिला है। ईश्वर, भारत सरकार, मेरे भारतीय भाई-बहन और मित्र तथा दुनिया भर के मेरे शुभचिंतकों ने मुझे बहुत कुछ दिया है। हरिप्रसाद चौरसिया के लिए नहीं, बल्कि उनकी सोच के लिए। मैंने अपने जीवन में बहुत संघर्ष किया है। मुझे कई बार भूखे रहना पड़ा। मुझे कोसा गया, मुझ पर चिल्लाया गया। मैं सोचता हूँ कि कितने लोगों ने मेरी तरह संघर्ष किया है। मैं आज भी संघर्ष कर रहा हूँ। यह वह संघर्ष है, जो जीवन में सुंदरता और खुशी लाता है। जब कोई इस बात की सराहना करता है कि मैंने अपना जीवन कैसे जिया है और कहता है, 'बताइए आप क्या चाहते हैं' तो यह असीम आनंद, अनंत सुख है।

पहले के संघर्ष और आज के संघर्ष में क्या अंतर है?

पहले का संघर्ष पैसे का, जीविका कमाने का था। पर्याप्त कॉन्सर्ट पाना, अपने परिवार का भरण-पोषण करना। आज का संघर्ष उस स्थिति को बरकरार रखने का है, जो मैंने जीवन भर के प्रयासों से प्राप्त किया है। इस समय मैं यदि ऊपर नहीं बढ़ता तो चलेगा, लेकिन मैं निश्चित रूप से नीचे नहीं जाना चाहता। मैंने लोगों के मन और हृदय में अपना जो स्थान बनाया है, उसे स्थायी रखना ही होगा। यह तभी संभव है जब मेरा संगीत और मेरी संगीत क्षमताएँ अक्षुण्ण रहें और उसके लिए मुझे रोज रियाज करना होगा। रियाज मेरी जिंदगी है। संगीत में भी हमेशा एक संघर्ष रहा है। फिल्मी दुनिया में मैंने जिन संगीत निर्देशकों के साथ काम किया, उनसे तालमेल बिठाने का संघर्ष था। हर किसी की शैली दूसरे से अलग थी। इसलिए सही मूड बनाना हमेशा एक मुश्किल काम था। जब मैंने शास्त्रीय क्षेत्र में प्रवेश किया तो संघर्ष का रूप बदल गया। बहुत से शास्त्रीय संगीतकार और बहुत से बाँसुरी-वादक थे। अपनी पहचान बनाने का संघर्ष था। उसके अलावा, बाँसुरी के लिए एक पहचान बनाने का भी मेरा संघर्ष था। उसे अत्यंत सम्मान का स्थान दिलाना, ताकि लोग बाँसुरी को श्रद्‌धा से देखें, भगवान् कृष्ण का यह वाद्य जिसके योग्य है।

यह गुरु माँ से मिलने के बाद हुआ?

हाँ, उनसे मिलने के बाद ही मुझे लंबे समय तक अभ्यास करने की बुद्‌धि आई। वह सच्चे ज्ञान का मेरा पहला अनुभव था। मैं जानता था कि आखिरकार मैं सही जगह पर हूँ और तभी संघर्ष वास्तव में शुरू हुआ। दर्शकों के सामने बाँसुरी को अलग तरीके से कैसे पेश करना है? क्या सीखना है?कैसे अभ्यास करना है?कितनी देर तक रियाज करना है? मैं चाहता था कि लोग बाँसुरी को एक असली सोलो वाद्य के रूप में देखें और उसे कभी न भूलें। यह संघर्ष अब भी जारी है।

क्या आप शास्त्रीय संगीतकारों की नई पीढ़ी से खुश हैं?

अगली पीढ़ी बहुत प्रतिभाशाली, बहुत समर्पित, बहुत मेहनती, बहुत ऊर्जावान्, बहुत परिपक्व और निश्चित रूप से पहले के संगीतकारों से बेहतर शिक्षित है, जो एक सकारात्मक बात है। जब मैंने शिवाजी पार्क में बच्चों का एक कार्यक्रम शुरू किया तो उन्होंने मेरा दिल जीत लिया। मैंने विभिन्न शहरों से युवा संगीतकारों को आमंत्रित किया था। दो सालों तक 14 नवंबर को यानी बाल दिवस के दिन यह कार्यक्रम किया। बच्चे शास्त्रीय संगीतकारों के आमंत्रित दर्शकों के सामने अपनी कला का प्रदर्शन करते। अगर कुछ सीटें बची होतीं तो मैं दूसरे संगीतकारों को आमंत्रित करता और उन्हें इन बच्चों को सुनने के लिए कहता। बच्चों को आने-जाने और रहने का खर्च, थोड़ा जेबखर्च और एक चॉकलेट का डिब्बा दिया जाता था। उनका सबसे बड़ा पुरस्कार पं. रामनारायण, पं. जसराज, उस्ताद अल्लारक्खा, नियाज अहमद खाँ, फैयाज अहमद खाँ, शमीम अहमद खाँ, लताफत हुसैन खाँ जैसे महान् उस्तादों के सामने प्रदर्शन करना था। इतने महान् उस्तादों और पंडितों को दर्शकों में देखकर बच्चों को अपना बेहतरीन प्रदर्शन करने की प्रेरणा मिलती थी। प्रदर्शन के बाद उस्ताद इन बच्चों को अपना आशीर्वाद देते।

यह सिर्फ दो वर्षों में बंद क्यों हो गया?

इसे जारी रखने की मेरी बड़ी इच्छा थी। प्रायोजकों की भी कमी नहीं थी। एकमात्र समस्या चलानेवाले लोगों की थी। मैं अपनी रिकॉर्डिंग, कॉन्सर्ट और दौरों में बहुत व्यस्त था, इसलिए अधिक समय नहीं दे सकता था। मुझे दौड़-भाग करने के लिए लोगों की जरूरत थी। हॉल की व्यवस्था करना, कलाकारों का स्वागत करना, रहने का प्रबंध

करना, चैरिटी कमिश्नर से बात करना, पास प्रिंट करवाना, प्रचार आदि देखना। यह एक बड़ा सिर-दर्द था और निश्चित रूप से एक व्यक्ति के बस की बात नहीं थी।

शास्त्रीय संगीतकारों की अगली पीढ़ी को आप क्या सलाह देना चाहेंगे?

यदि आप भारतीय शास्त्रीय संगीत के पथ पर चलना चाहते हैं तो आप में पूरी भक्ति-भावना होना चाहिए। संगीत और अपने गुरु की ओर संपूर्ण भक्ति। इस क्षेत्र में सफल होने के लिए यह सबसे जरूरी है। दूसरे, यह अनवरत चलनेवाला काम है, एक या दो घंटे पर्याप्त नहीं हैं। मेरा मतलब यह नहीं है कि आपको दिन के चौबीस घंटे रियाज करना होगा, लेकिन आपको संगीत में पूरी तरह समाना होगा। अपने गुरु से बात करें, अगर उनके पास आपके लिए कोई सुझाव हैं तो वह करें। हर दिन कुछ घंटे बजाते हुए अपने वाद्य को ठीक-ठाक रखें। अलग-अलग वाद्य बजानेवाले विभिन्न घरानों के दूसरे महान् संगीतकारों को सुनना भी बहुत जरूरी है। परखिए कि वे अपने संगीत के माध्यम से क्या कहने का प्रयास कर रहे हैं। उनकी विचार प्रक्रिया, उनका व्याकरण, उनकी शब्दावली क्या है? जब आप स्वयं रियाज करने बैठें तो आपने जो सुना है, उसे अपने गायन या वादन में लाने की कोशिश करें। यह सोचिए कि आप किस तरह उनकी भाषा का इस्तेमाल करते हुए भी उसे अपना विशिष्ट स्पर्श दे सकते हैं। अगर आपकी यमन ध्वनियाँ किसी उस्ताद की तरह हैं तो कोई आपको क्यों सुनेगा? उसके पास पहले से ही उस उस्ताद के यमन की सी.डी. होगी। सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि आपके पास एक अच्छा गुरु होना चाहिए। अच्छे गुरु के बिना ज्ञान नहीं मिलता। एक अच्छे गुरु के बिना आप कुछ भी नहीं प्राप्त कर पाएँगे। एक अच्छे गुरु के अभाव में कुछ समय के बाद आपको संगीत से भी अरुचि हो जाएगी और तंग आकर आप उसे छोड़ देंगे। एक गुरु आपका मार्गदर्शन करता है। हाँ, आपको उस मार्ग पर स्वयं चलना है, लेकिन गुरु आपको पथ दिखाता है और आपको उस रास्ते पर आनेवाली कठिनाइयों से परिचित कराता है। आपको अपने समय के सभी महान् संगीतकारों को भी गुरु के रूप में देखना चाहिए और उनसे सीखना चाहिए। उन सबके पास आपको देने के लिए, आपसे कहने के लिए कुछ है।

मैं आज के युवाओं को यह भी कहना चाहूँगा कि पैसे के पीछे न दौड़ें। अपनी कला को माँजें और पैसा पीछे-पीछे आएगा। यह दुर्भाग्य है कि बहुत से युवा पर्याप्त प्रशिक्षण और पर्याप्त परिपक्वता प्राप्त किए बिना मंच पर प्रदर्शन करने में अधिक दिलचस्पी रखते हैं। वे कुछ समय सीखते हैं और पूरी तरह तैयार हुए बिना प्रदर्शन करना शुरू कर देते हैं, जिसका नतीजा आधा-अधूरा प्रदर्शन होता है। अपने संगीत के बारे में सोचिए, राग को उसकी संपूर्णता में देखिए। आप उसे खूबसूरत कैसे बना सकते हैं? जिस तरह आप दर्पण में अपने आपको देखते हैं और पाउडर, लिपस्टिक व दूसरा मेकअप का सामान इस्तेमाल करते हैं, उसी तरह अपने संगीत को देखिए, उसे विभिन्न सजावटों और अलंकरणों से सजाने की कोशिश कीजिए। पूरी तरह से डूब जाइए। इस सबके लिए आपको वह चाहिए, जो मैंने शुरू में कहा, भक्ति।

एक बाँसुरी-वादक के रूप में इन पचास वर्षों में आप अपनी सबसे बड़ी उपलब्धि किसे मानेंगे?

कुछ भी नहीं। आज भी जब मैं मंच पर बाँसुरी बजाता हूँ तो उसे अपना पहला और आखिरी परफॉर्मेंस मानता हूँ। उसके बारे में काफी सोचता हूँ। उसे दूसरे परफॉर्मेंसों से अलग कैसे बनाऊँ?दर्शक कैसे होंगे?कौन सा राग सही रहेगा?कॉन्सर्ट के प्रति कुल मिलाकर क्या रवैया होना चाहिए? एक गुरु होना आसान है, लेकिन अपनी पूरी जिंदगी

एक छात्र के रूप में बिताना बहुत कठिन है। आज भी, जब मैं अपनी गुरु माँ के पास जाता हूँ, वही राग यमन सीखना मुझे बहुत आनंददायक लगता है, जिससे मैंने शुरुआत की थी। लोग चकित होते हैं। वे कहते हैं, ''आप एक उस्ताद हैं, अब आपको गुरु के पास जाने की क्या आवश्यकता है?'' मैं उन्हें बताता हूँ कि मेरे लिए अब भी यह एक शुरुआत है। मैं बहुत सौभाग्यशाली हूँ कि मेरी गुरु माँ अब भी सक्षम हैं और मुझे सिखाने के लिए इच्छुक हैं। मुझे अब भी बहुत कुछ सीखना है। मैं अब भी एक विद्यार्थी हूँ। लोग मुझे बताते हैं कि मैंने बहुत महारत हासिल कर ली है, लेकिन मुझे लगता है कि संगीत के अर्थों में मैंने कोई भी उपलब्धि हासिल नहीं की है। मैं कुछ महान् करना चाहता हूँ, ताकि लोग मुझे उस तरह याद करें, जिस तरह वे भगवान् कृष्ण को याद करते हैं, लेकिन मैं उसके कहीं आस-पास भी नहीं हूँ। मैं अब भी एक बच्चा हूँ, इसलिए स्पष्ट है कि मुझमें कुछ कमी है।

आपको सबसे अधिक अफसोस किस बात का है?

एक दिन में मैं आठ घंटे सोकर बिताता हूँ। खाने, नहाने, पूजा आदि में और तीन घंटे लग जाते हैं। अब मुझे सबसे अधिक पछतावा इस बात का होता है कि ईश्वर ने मुझे इतनी ऊर्जा नहीं दी कि मैं अपने इस 50 फीसदी समय को भी संगीत की बारीकियाँ सीखने में लगा सकूँ। मुझे वास्तव में इस बात का दु:ख है। अगर ईश्वर ने हमें एक पेट न दिया होता, जिसे समय-समय पर भरना जरूरी है, अगर ईश्वर ने हमें दिखावा न दिया होता और हमें तैयार होना और अच्छे दिखने की कोशिश न करनी होती और इन सब पर समय बरबाद न करना होता तो मैं अपना सारा समय संगीत पर लगा पाता। इसलिए मुझे लगता है कि सबसे बड़ा दु:ख सांसारिक चीजों से अधिक समय न निकाल पाने या खुद को उनसे बाहर न निकाल पाने का है।

अगर आपको हरिप्रसाद चौरसिया के रूप में फिर से एक जीवन जीना पड़े तो कौन सी चीज आप अलग तरीके से करेंगे?

सबसे पहले मैं ईश्वर को मुझे एक मनुष्य का रूप देने के लिए धन्यवाद दूँगा, फिर मैं ईश्वर को मुझे फिर से हरिप्रसाद चौरसिया बनाने के लिए धन्यवाद दूँगा और फिर मैं उन्हें मेरे हाथों में बाँसुरी पकड़ाने और एक पुलिसवाला या व्यवसायी बनाने की बजाय एक संगीतकार का जीवन देने के लिए धन्यवाद दूँगा। मैंने जहाँ पर छोड़ा था, वहीं से फिर शुरू करने का अवसर देने के लिए ईश्वर को धन्यवाद दूँगा। मैं ईश्वर से कहूँगा कि वह मुझे हर जीवन में हरिप्रसाद चौरसिया बनाएँ। एकमात्र चीज जो मैं करूँगा, वह है भगवान् कृष्ण के थोड़ा नजदीक जाने की कोशिश। मैं जानता हूँ कि यह असंभव है। अगर मुझे हरिप्रसाद चौरसिया के रूप में सैंकड़ों जीवन भी मिलें तो मैं भगवान् कृष्ण की तरह नहीं हो सकता। हर जीवन में मैं इस कार्य की असंभव प्रकृति के बावजूद प्रयास करना जारी रखूँगा। मैं कुछ महान् करना चाहूँगा, ताकि कोई मेरे बारे में एक 'गीता' लिखे, एक भिन्न 'गीता'। हो सकता है, वह 'संगीता' हो। यह असंभव है, लेकिन मैं फिर भी प्रयास करूँगा। कोशिश करने में कोई हर्ज नहीं है। जब भी मैं किसी मंदिर या मसजिद या चर्च में जाता हूँ, मैं हमेशा ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे हर जीवन में संगीतकार बनाए। मुझे सिर्फ इसीलिए जीना सार्थक लगता है।

अगर आपको भारतीय संस्कृति विभाग का प्रमुख बनाया जाए तो आप कौन से बदलाव करने चाहेंगे?

मैं संगीत को हर किसी के लिए एक अनिवार्य विषय बना दूँगा, नर्सरी या किंडरगार्टन स्तर से ही। उसे सभी स्कूलों में दिनचर्या का एक हिस्सा होना चाहिए। यह सभी लोगों का संपूर्ण दृष्टिकोण ही बदल देगा। यह हमारे सोचने के तरीके को बदल देगा। अगर किसी को शैशव काल से ही संगीत पढ़ाया जाए तो वह कभी आतंकवादी नहीं बन सकता। जब आपके भीतर संगीत होगा तो आपके भीतर देवी सरस्वती होंगी। आप कुछ गलत करने के बारे में नहीं सोच सकते। ये जितनी लड़ाइयाँ लड़ी जा रही हैं, ये जो इमारतें ध्वस्त की जा रही हैं, सब मनुष्य के जीवन की बेकार बरबादी है। यह बंद हो जाएगा। जब आपके हृदय में संगीत होगा, ईश्वर आपको सोचने और चीजों को देखने का एक नया नजरिया देते हैं। आपकी सूझ-बूझ भिन्न हो जाती है, क्योंकि आप सरस्वती के भक्त हैं। अगर आप कोई असाधारण अच्छा काम नहीं कर सकते तो कम-से-कम आप बहुत बुरा कुछ नहीं करेंगे।

दूसरे, हर राज्य में ग्रामीण स्तर से ही मैं हर महीने एक महोत्सव, एक सांस्कृतिक उत्सव के आयोजन पर जोर दूँगा, जिसमें सभी लोगों को शिरकत करनी होगी। बच्चे, उनके शिक्षक, उनके माता-पिता, हर किसी को। इससे लोगों के बीच सद्भावना बनेगी।

यह दुर्भाग्य की बात है कि आज की दुनिया में संगीत स्कूलों और नृत्य स्कूलों जैसे संस्थानों के प्रभारी लोग कला के उस रूप के बारे में मूलभूत चीजें भी नहीं जानते। इसीलिए अब तक कोई सरकारी संगीत विद्यालय एक रवि शंकर या एक लता मंगेशकर पैदा करने में सक्षम नहीं हो पाया है। सरकारी विद्यालयों से निकले विद्यार्थियों के प्रदर्शन के मुकाबले देखने पर सरकार द्वारा खर्च किया जा रहा समय, पैसा और प्रयास सबकी बरबादी लगती है। अगर लोगों को शुरू से ही संगीत और कला की शिक्षा मिले, स्कूल के स्तर से ही, तो उस नौकरी के लिए अनुपयुक्त लोग नहीं मिलेंगे।

वह मुसकराए, मैं मुसकराया और इन सकारात्मक विचारों के साथ हमने यह पुस्तक समाप्त करने का फैसला किया। मुझे विश्वास है कि आपने इसे पढ़ते हुए उतना ही आनंद उठाया होगा, जितना मुझे इसे लिखते समय आया।

❑❑❑